ॐ

सर्वज्ञ वीतरागाय नमः

गुरु कहान : दृष्टि महान

(भाग-6)

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
द्रव्यदृष्टि प्रधान आध्यात्मिक प्रवचन

: गुजराती संकलन :

जीतुभाई नागरदास मोदी

प्रशम जीतुभाई मोदी

सोनगढ़

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान मोक्षार्थी परिवार

सोनगढ़, जिला-भावनगर (गुजरात)

मोबा. 09722833143

प्रथम आवृत्ति : प्रति 1000
(विक्रम संवत् 2072, वीर संवत् 2542, ईस्वी सन् 2015)

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
2. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.) फोन : 09997996346, 2410010/11
3. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
4. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
5. **चिन्तन जीतुभाई मोदी,** क्रमबद्ध निवास, 45 कहान नगर सोसाइटी, सोनगढ़ - 364250 (सौराष्ट्र)
   मोबा : 09662524460
6. **पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन**
   द्वारा मुकेश आयरन स्टोर, गुरु कहान मार्केट, बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)
   मोबा : 09461768086
7. **श्री प्रदीप मानोरिया,** मिल रोड, अशोकनगर, (म.प्र.), मोबा : 09425132060
8. **श्री दिगम्बर जैन कुन्दकुन्द परमागम ट्रस्ट,**
   पंच बालयति जिनालय, एरोड्रम रोड, साधनानगर, इन्दौर (म.प्र.)
9. **श्री अश्विनभाई ए. शाह,**
   बी-21, रुस्तमजी आदर्श हेरीटेज ऑफ मार्वे रोड,
   आदर्श काम्पलेक्स विहार, मलाड (वेस्ट) मुम्बई-64 , मोबा : 09820124378

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

प्रकाशकीय

तीर्थंकरदेव का जन्म जगत के कल्याण के लिये होता है, इसी प्रकार अनन्त-अनन्त उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का जन्म, इस निकृष्ट काल में यहाँ जन्मे हुए और भविष्य में भी यहाँ जन्म लेनेवाले अल्प संसारी जीवों को भाग्यशाली बनाने के लिये तथा उन्हें संसार-समुद्र से पार उतारने के लिये हुआ था। अन्तिम सैंकड़ों वर्षों का जैन इतिहास कहता है कि भव्य जीवों के तारणहार ऐसे महान सन्त यदि कोई हुए हों तो उनमें कृपासिन्धु पूज्य गुरुदेवश्री ही प्रधान पुरुष हैं। उन्होंने इस भौतिक युग को अध्यात्मयुग में परिवर्तित करके पंचम काल के अन्त तक टिका रहे - ऐसा अध्यात्मयुग सृजित किया है।

ऐसे अध्यात्मयुगसृष्टा, अध्यात्म क्रान्तिवीर पूज्य गुरुदेवश्री की 45-45 वर्ष प्रवाहित अध्यात्म गंगा का अमृतपान करनेवाले महान भाग्यशाली भव्य मुमुक्षुओं को तो उनके द्वारा प्ररूपित तत्त्वज्ञान के अभ्यास द्वारा आज भी पूज्य गुरुदेवश्री साक्षात्रूप से अनुभव में आ रहे हैं, परन्तु उनके दर्शन-श्रवण और सत्संग का जिन्हें साक्षात् लाभ प्राप्त नहीं हुआ, ऐसे भव्य जीवों को, इन महापुरुष ने जो द्रव्यदृष्टि प्रधान दिव्यदेशना का प्रपात बहाया, उसका साक्षात्वत् लाभ मिले, वह इस **गुरु कहान : दृष्टि महान** के प्रकाशन का हेतु है।

यह जीव अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक तक जा आया, अनन्त बार नग्न दिगम्बर द्रव्यलिंग धारण किया, अनन्त बार समवसरण में जा आया, तथापि कोरा रह गया, उसका मुख्य कारण यदि कोई हो तो वह एक ही है कि द्रव्यदृष्टि प्रधान देशना को इस जीव ने कभी ग्रहण नहीं किया—ऐसा पूज्य गुरुदेवश्री करुणा से बारम्बार कहते थे और इसीलिए उस द्रव्यदृष्टि प्रधान देशना का उन्होंने जीवनपर्यन्त प्रपात बहाया है। पूज्य बहिनश्री भी कहती थीं कि 'मानो कोई बड़े आचार्य उपदेश देते हों, वैसे दृष्टि के विषय का अपूर्व स्पष्टीकरण होता था' ....'दृष्टि का विषय आवे, तब उछल जाते थे।' यद्यपि उनकी सर्वांगी उपदेश गंगा में न्यूनाधिक योग्यतावाले सर्व जीवों को आत्म-लाभ हो, ऐसा निश्चय-व्यवहार का सम्पूर्ण उपदेश बोध बहा है। मुमुक्षु की पात्रता कैसी हो, अशुभ से बचने को शुभ में जुड़ान कैसा हो, इत्यादि उपदेश देने पर भी कहीं किसी को मुख्यता न हो जाये तथा उसमें जोर दिये बिना उस व्यवहारमार्ग प्रकाशन के साथ मुख्यरूप से तो द्रव्यदृष्टि मार्ग प्रकाशक निश्चय की ही मूसलाधार वर्षा की है। जिससे भद्र जीव अनादि के संस्कारवश मन्दकषाय आदि व्यवहारमार्ग में न अटककर, निश्चयमोक्षमार्ग को यथार्थ समझकर उसका ही ग्रहण करके यह भव सफल करने के लिये स्वानुभूति का सत्पुरुषार्थ अपनायें।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अध्यात्मयुग का सृजन किया ही है परन्तु बहुत स्पष्ट कहें तो वस्तुतः वे

द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जक हैं क्योंकि जिस द्रव्यदृष्टि प्रधान निश्चय के बोध से जीव निश्चयाभास के डर से भयभीत होते थे, उसके बदले आपश्री के प्रताप से भव्यजीव दिन-रात उस निश्चय का घोलन, चिन्तन श्रवण करने में ही जीवन की धन्यता अनुभव करते हैं।

द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जक पूज्य गुरुदेवश्री की उपदेश अमृत वाणी को श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट के तत्कालीन प्रमुख श्री नवनीतभाई झवेरी की दीर्घदृष्टि से टेप में संगृहित करके चिरकालपर्यन्त सुरक्षित बनायी तथा लगभग 9000 घण्टे की इस गुरुवाणी को स्वर्गीय श्री शान्तिलाल रतिलाल शाह परिवार ने अद्यतन टेक्नोलॉजी द्वारा मात्र 16 डीवीडी में तथा तीन वीडी (Blueray Disk) में (जनवरी 2010 तक में) प्रसिद्ध करके मुमुक्षु जगत पर परम उपकार किया है, जिस कारण भावी के भव्य जीव भी आत्महित के मार्ग में सरलरूप से प्रयाण कर सकेंगे। ऐसे होने पर भी, पंचम काल के प्रभाववश कितने ही तत्त्व के अभ्यासियों द्वारा द्रव्यदृष्टि प्रधान तत्त्वज्ञान के पुरुषार्थ में भय प्रकाशन करते देखकर पूज्य गुरुदेवश्री के 9000 टेप प्रवचनों में से द्रव्यदृष्टि प्रधान विशेष पुरुषार्थ प्रेरणादायक प्रवचन चुन-चुनकर **गुरु कहान : दृष्टि महान** रूप से सीडी प्रवचन मुमुक्षु समाज को उपलब्ध कराने की हमें भावना जागृत होने से हमने भाग 1 से 9 तक प्रसिद्ध किया, जिसका श्रवणपान करते हुए गुरु-भक्तों का ध्यान गया कि सीडी प्रवचन का श्रवण करते समय हाथ में अक्षरश: गुरुवाणी की पुस्तक हो तो प्रवचन का भाव विशेषरूप से समझना सरल बने। इसलिए गुरु भक्तों की भावना को साकार करने का निर्णय किया और हिन्दी भाषी समाज भी इन प्रवचनों का लाभ ले इस भावना से एक मुमुक्षु परिवार द्वारा इस प्रकल्प की छठवीं पुस्तक प्रकाशित हो रही है। मुमुक्षु परिवार की अनिच्छा के कारण उनका नाम प्रसिद्ध नहीं किया जा रहा है।

इस पुस्तक प्रकाशन के दो मुख्य प्रयोजन हैं - (1) जिन्हें करुणासागर गुरुदेवश्री के प्रत्यक्ष दर्शन-श्रवण का लाभ नहीं मिला, ऐसे भव्य जीवों को गुरुदेवश्री के द्रव्यदृष्टि प्रधान अन्त:करण समझने का सौभाग्य प्राप्त हो तथा (2) पंचम काल के प्रभाव में आकर प्रमाण के लोभ में अटककर द्रव्यदृष्टि के मार्ग में नि:शंकरूप से प्रयाण करने में हिचकिचाहट न हो, इस प्रकार पूज्य गुरुदेवश्री की भव्य जीवों को संसार-समुद्र से उभर लेने की करुणा सफलता को प्राप्त हो।

अन्त में, पूज्य गुरुदेवश्री 91 वर्ष की उम्र में भी जिस द्रव्यदृष्टि की प्ररूपणा करते हुए अन्दर से उछल पड़ते थे उस द्रव्यदृष्टि प्रधान उपदेश को **गुरु कहान : दृष्टि महान** के माध्यम से शीघ्र ग्रहण करके भावी अनन्त काल गुरु के सान्निध्य को प्राप्त करे - ऐसी भावना के साथ....

संकलनकार / अनुवादक

अर्पण

जो वर्तमान युग में क्रमबद्धपर्याय का शंखनाद करनेवाले के रूप में जैन जगत् में प्रसिद्ध हैं; जो जैन जगत् में समयसार के प्रखर प्रचारक के रूप में मशहूर हैं; जो द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जनहार हैं; जिन्होंने शास्त्रों के शब्दों में छिपे हुए आचार्यों के गूढ़ भावों को खोलने की अद्‌भुत शक्ति द्वारा भव्य जीवों पर वचनातीत परम उपकार किया है; जिनकी शीतल छत्रछाया में जीवन व्यतीत करने का परम सौभाग्य हमारे पिताश्री को प्राप्त हुआ था, उन असीम करुणासागर, पुरुषार्थप्रेरणामूर्ति धर्मपिता पूज्य गुरुदेवश्री को, उनके ही द्रव्यदृष्टि प्रधान आध्यात्मिक प्रवचनों के अमूल्य खजाने में से चुने हुए 17 प्रवचनों के संकलनरूप यह **'गुरु कहान : दृष्टि महान'** भाग-6 अर्पण करते हुए हम जीवन की धन्यता अनुभव कर रहे हैं।

- संकलनकार

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्म युगस्त्रष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(सम्पूर्ण जीवनदर्शन, संक्षिप्त में)

ऐवा ए कलिकालमां जगतनां कंई पुण्य बाकी हतां,
जिज्ञासु हृदयो हतां तलसतां सद्वस्तुने भेटवा;
ऐवा कंईक प्रभावथी गगनथी ओ क्हान! तुं ऊतरे,
अंधारे डूबतां अखंड सत्ने तुं प्राणवंतुं करे।

वर्तमान चौबीसी के प्रथम तीर्थंकरदेव के पूर्व के भोगभूमि के एक भव में, सम्यक्त्वप्राप्ति की इनकी काललब्धि पकने पर आकाश में से दो-दो मुनिराज उतरते हैं। अन्तिम तीर्थंकरदेव के पूर्व के सिंह के भव में, सम्यक्त्वप्राप्ति की उनकी काललब्धि पकने पर, आकाश में से दो-दो मुनिराज घोर जंगल में उतरते हैं। उपादान तैयार होने पर मानो कि निमित्त को स्वयं उपस्थित होना पड़ता है-इस न्याय से, लाखों भव्य जीवों की तत्त्वजिज्ञासा-तृप्ति का काल पकने पर, सीमन्धर सभा में देशना का श्रवण-पान करके स्वर्ग जाने को सक्षम ऐसे राजकुमार का जीव, मानो कि भवीजन भाग्यवश अपना मार्ग बदलकर गगन में से यहाँ भरतभूमि में उतरा!

भगवान श्री महावीरस्वामी द्वारा समुपदिष्ठ तथा आचार्य शिरोमणि श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव तथा श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव आदि निर्ग्रन्थ दिगम्बर सन्तों द्वारा शास्त्र में सुरक्षित वीतरागमार्ग जब रूढ़िगत साम्प्रदायिकता की देहाश्रित बाह्यक्रिया और अध्यात्म तत्त्वज्ञान शून्य भक्तिमार्ग के अन्धकार में डूब रहा था, ऐसे इस कलिकाल में वीतरागमार्ग के अखण्ड सत् को प्रवर्तन करने के लिये भारतदेश के गुजरात राज्य में भावनगर जिला के उमराला गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा के गर्भ से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज दिनांक 21-04-1890, रविवार को प्रातः सबेरे तेजस्वी कहान सूर्य का उदय हुआ।

सात वर्ष की उम्र में पाठशाला में लौकिक शिक्षा ग्रहण करना शुरु किया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि प्रतिभा, मधुर भाषीपना, शान्तस्वभाव, गम्भीर मुखमुद्रा तथा स्वयं करने का स्वभाव होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों में तथा विद्यार्थियों में प्रिय हो गये। विद्यालय में तथा जैन पाठशाला के अभ्यास में प्रायः प्रथम नम्बर आता था परन्तु विद्यालय के लौकिक अभ्यास से उन्हें सन्तोष नहीं हुआ और गहरे-गहरे ऐसा लगता था कि मैं जिसकी शोध में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में मातुश्री के अवसान से पिताजी के साथ पालेज जाना हुआ। चार वर्ष पश्चात् पिताजी का स्वर्गवास होने पर सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यापार में संलग्न हुए।

व्यापार की प्रवृत्ति के समय भी वे किंचित् भी अप्रमाणिकता चला नहीं लेते थे। सत्यनिष्ठ, नीतिमत्ता, निखालिसता, और निर्दोषता से उनका व्यवहारिक जीवन सुगन्धित था; इसके साथ ही

उनका आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध की ओर ही था। दुकान में भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते। वैरागीचित्तवाले कहान कुँवर रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते, तब उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते, जिसके फलस्वरूप सत्रह वर्ष की उम्र में उज्ज्वल भविष्य की सूचना करता बारह लाईन का काव्य — 'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव' की रचना की थी।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि के आहार-पानी तथा अथाणा (अचार) का त्याग किया था। सत्य की शोध के लिये दीक्षा लेने के भाव से बाईस वर्ष की युवावय से दुकान का परित्याग किया और गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया था। पश्चात् चौबीस वर्ष की उम्र में (विक्रम संवत् 1970) जन्मनगरी उमराला में लगभग 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय के वैरागी साधु हीराजी महाराज के समीप दीक्षा अंगीकार की थी। दीक्षा के समय हाथी पर बैठने जाते हुए धोती फटने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक गुरुवर को शंका हो जाती है कि कुछ गलत हो रहा है।

दीक्षा लेने के पश्चात् सत्य के शोधक इस महात्मा ने स्थानकवासी तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में ही पूरा किया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चाएँ चलीं—कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र तो प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व के संस्कार के बल से उन्होंने दृढ़तापूर्वक सिंह-गर्जना की कि 'जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म और पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुलटे पुरुषार्थ से नाश करता है।'

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन उद्धार का और लाखों मुमुक्षुओं के महान् पुण्योदय सूचक एक मंगलकारी पवित्र प्रसंग बना :

बत्तीस वर्ष की उम्र में विधि की किसी धन्य पल में दामनगर में दामोदर सेठ द्वारा श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित समयसार नामक महान परमागम, गुरुदेवश्री के कर-कमल में आया और उसका अध्ययन तथा चिन्तवन करते-करते पूर्व के संस्कार के बल से अन्तर में आनन्द और उल्लास उमड़ने से इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — 'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।' इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी हुई परिणति ने निज घर देखा अर्थात् आपश्री को वैशाख कृष्ण आठ के दिन सम्यग्दर्शन हुआ।

विक्रम संवत् 1982 के चातुर्मास से पूर्व राजकोट में श्री दामोदरभाई लाखाणी ने मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री को प्रदान किया। जिसे पढ़ने से स्वयं के हृदय की अनेक बातों का समर्थन इस ग्रन्थ में से प्राप्त हो जाने से वे उसके वाँचन में इतने ओतप्रोत हो जाते थे कि उस समय उन्हें खाना-पीना और सोना भी नहीं रुचता था। तत्पश्चात् अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेश कुछ ऐसी स्थिति उन्हें असह्य हो गयी; इसलिए अन्तर में बहुत मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय छोड़ने का निर्णय किया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थल की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में 1991 के फाल्गुन कृष्ण पंचमी के दिन निवास किया और महावीर

जन्मकल्याणक के दिन (विक्रम संवत् 1991, चैत्र शुक्ल तेरह) दोपहर सवा बजे भगवान पार्श्वनाथ के फोटो के समक्ष सम्प्रदाय के चिह्न मुँहपत्ती का त्याग किया और घोषित किया कि — 'अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं, मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।' सिंह समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने, पैंतालीस वर्ष की उम्र में अन्तर में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

'स्टार ऑफ इण्डिया' में सवा तीन वर्ष दौरान जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान अत्यन्त छोटा पड़ने लगा; इसलिए भक्तों ने इन परम प्रतापी सत्पुरुष के लिये निवास और प्रवचन का मकान 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने विक्रम संवत् 1994 के वैशाख कृष्ण आठ के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह 'स्वाध्यायमन्दिर' जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीर शासन की प्रभावना का केन्द्र बना रहा।

यहाँ दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे-बड़े लगभग 183 ग्रन्थों का गहराई से अभ्यास किया। उनमें से 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये; जिसमें समयसार पर तो 19 बार अध्यात्म वर्षा की थी। प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय संग्रह, अष्टपाहुड, परमात्मप्रकाश, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी अनेक बार प्रवचन किये।

विक्रम संवत् 1981 में गडढ़ा में पन्द्रह वर्ष की उम्र में पूज्य शान्ताबेन को पूज्य गुरुदेवश्री के प्रथम दर्शन और प्रवचन श्रवण का लाभ प्राप्त हुआ। विक्रम संवत् 1985 में वढ़वाण में पन्द्रह वर्ष की उम्र में पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन को पूज्य गुरुदेवश्री के प्रथम दर्शन और प्रवचन श्रवण का लाभ प्राप्त हुआ। विक्रम संवत् 1986 में वींछिया में पूज्य गुरुदेवश्री के दर्शन और प्रवचन श्रवण के लिये दोनों बहिनों को जाना होने पर वहाँ प्रथम बार दोनों बहिनों का परिचय हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री ने परिवर्तन करने के पश्चात् सोनगढ़ में दोनों बहिनों ने साथ में रहना शुरु करके जीवनपर्यन्त साथ रहकर पूज्य गुरुदेवश्री की देशना द्वारा अपनी-अपनी आत्मसाधना करते रहकर शासन की अत्यन्त भक्तिपूर्वक सेवा की थी। गुरुशासन-प्रभावना में दोनों बहिनों का उल्लेखनीय विशेष योगदान रहा था।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 के फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन श्री नानालालभाई इत्यादि जसाणी भाईयों के योगदान द्वारा नवनिर्मित श्री दिगम्बर जिन मन्दिर में कहानगुरु के मंगल हस्त से श्री सीमन्धरादि भगवन्तों की पंचकल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर जिन मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही देखने को मिलते थे। ऐसे क्षेत्र में गुरुदेवश्री की पावन प्रेरणा से प्रथम जिन मन्दिर निर्मित हुआ। प्रतिदिन दोपहर प्रवचन के पश्चात् जिन मन्दिर में आधे घण्टे भक्ति में जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे। बहुत बार आपश्री अति भाववाही भक्तिपान कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धिपूर्वक का था।

विक्रम संवत् 1997 में दिगम्बर जैन समाज के तत्कालीन प्रमुख दिगम्बर जैनाचार्य श्री

शान्तिसागरजी महाराज, श्री शत्रुंजय सिद्धक्षेत्र की यात्रा करके सोनगढ़ पधारे; पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन सुनकर तथा तत्त्वचर्चा करके इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने गुरुदेवश्री को लक्ष्य करके कहा कि — 'तीर्थंकर अकेले मोक्ष नहीं जाते; यहाँ कुछ ऐसा योग है-ऐसा हमें लगता है।'—अर्थात् पूज्य गुरुदेवश्री भविष्य में तीर्थंकर होंगे—ऐसा दिगम्बर जैन समाज के प्रमुख आचार्य को लगा था।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों-मुनिवरों तथा आत्मानुभवी पण्डितवर्यों के ग्रन्थों, पण्डित श्री हिम्मतभाई जे. शाह के गुजराती में अनुवादित श्री समयसारादि परमागम और पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर प्रवचनों की पुस्तकें प्रकाशित करने का कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943) से शुरु हुआ। उस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहरा रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने हम सब पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश देश-विदेश के समस्त मुमुक्षुओं को नियमित प्राप्त होता रहे, इस हेतु से सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के मगसर (दिसम्बर 1943) महीने से 'आत्मधर्म' नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट के स्थापक आध्यप्रमुख मुरब्बी श्री रामजीभाई माणेकचन्द दोशी के सम्पादन तले प्रारम्भ हुआ। आज भी आत्मधर्म गुजराती तथा हिन्दी भाषा में नियमितरूप से प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्ध करता हुआ 'श्री सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' सितम्बर 1950 से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभूतिविभूषित इन चैतन्य विहारी महापुरुष की मंगल वाणी पढ़कर तथा सुनकर हजारों स्थानकवासी, श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैन धर्म के अनुयायी हुए। अरे... मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का सिंचन हो इस हेतु से सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वी सन् 1941) के मई महीने से गर्मी का बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षणवर्ग शुरु हुआ। बड़ों के लिये प्रौढ़ शिक्षणवर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने में प्रारम्भ किया गया था।

पूज्य गुरुदेवश्री की देशना का सामर्थ्य प्रसिद्ध करता एक प्रसंग ईस्वी सन् 1946 में बना। अजमेर निवासी श्री निहालचन्द्रभाई सोगानी सोनगढ़ आये और प्रथम बार ही पूज्य गुरुदेवश्री के दर्शन का लाभ सम्प्राप्त हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री का एक ही प्रवचन सुनकर रात भर आत्म मन्थन करते-करते प्रात: काल अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव प्राप्त करके जैन जगत को प्रतीति करायी कि यदि तुम्हारा पुरुषार्थ और गुरु के प्रति अर्पणता गाढ़ हो तो इन महापुरुष की देशना इतनी प्रखर है कि इनका एक ही प्रवचन-श्रवण भव्यजीवों के भवान्त का प्रबल निमित्त बनने की सामर्थ्य रखता है।

विक्रम संवत् 2003 में निर्मित भगवान श्री कुन्दकुन्द प्रवचनमण्डप के शिलान्यास प्रसंग पर इन्दौर के सर सेठ हुकमचन्दजी, पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति अत्यन्त अहोभाव से बोले थे कि 'आपके पास मोक्ष जाने का सीधा रास्ता है।'

विक्रम संवत् 2003 में पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल छत्रछाया में 'भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद' का तीसरा अधिवेशन पण्डित श्री कैलाशचन्द्रजी (बनारस) की अध्यक्षता में आयोजित किया गया था, जिसमें दिगम्बर जैन समाज के सुप्रसिद्ध बत्तीस विद्वानों ने लाभ लिया था। पूज्य गुरुदेवश्री की देशना से प्रभावित होकर उन्होंने सर्व सम्मति से एक विशाल प्रस्ताव पारित किया था जिसमें स्पष्टरूप से उल्लेख किया गया कि '....भगवान कुन्दकुन्द की वाणी समझकर महाराजश्री ने मात्र स्वयं को ही पहचान है—ऐसा नहीं परन्तु हजारों-लाखों मनुष्यों को एक जीवन उद्धार के सत्यमार्ग पर चलने का उपाय दर्शा दिया है.....'

दिगम्बर जैन समाज के मूर्धन्य पण्डितश्री कैलाशचन्द्रजी ने अपनी पत्रिका के सम्पादकीय लेख में पूज्य गुरुदेवश्री की विशेषता दर्शाते हुए लिखा कि यदि कानजीस्वामी इस युग में न हुए होते तो हमारे लिये समयसार ग्रन्थ मात्र दर्शनीय रह जाता अर्थात् पूज्य गुरुदेवश्री के कारण समयसार जैसे ग्रन्थ का स्वयं को अभ्यास करने का सुयोग प्राप्त हुआ था। फिर से उसी पत्रिका के सम्पादकीय लेख में पूज्य गुरुदेवश्री का दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा कि कानजीस्वामी निमित्त को नहीं मानते, ऐसा नहीं है लेकिन वे निमित्त से कुछ नहीं होता है - ऐसा मानते हैं। इस प्रकार मूल दिगम्बर सम्प्रदाय में भी समयसार स्वाध्याय युग सृजक पूज्य गुरुदेवश्री की प्रतिभा प्रसिद्धि को प्राप्त हुई थी।

लाडनूँ निवासी श्री रतनलाल गंगवाल के पिताश्री बच्छराजजी, पूज्य गुरुदेवश्री की महिमा सुनकर सोनगढ़ आये; अत्यन्त प्रभावित होकर उन्होंने पूज्य बहिनश्री बेन की छत्रछाया में बालब्रह्मचारी बहिनों के आवास के लिये 'श्री गोगीदेवी दिगम्बर जैन श्राविका ब्रह्मचर्याश्रम' का विक्रम संवत् 2008 में निर्माण किया।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित श्री समयसारादि पाँचों परमागम संगमरमर में उत्कीर्ण करके 'श्री महावीर कुन्दकुन्द परमागममन्दिर' का उद्घाटन विक्रम संवत् 2030 में सोनगढ़ में छब्बीस हजार भक्तों की उपस्थिति में श्री साहू शान्तिप्रसादजी के हस्त से हुआ था।

ट्रस्टी श्री नेमिचन्दजी पाटनी (आगरा) के सफल संचालन में श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त विक्रम संवत् 2013 (ईस्वी सन् 1957) तथा विक्रम संवत् 2023 (ईस्वी सन् 1967) में — इस तरह दो बार समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मंगल विहार हुआ था। इसी प्रकार विक्रम संवत् 2015 (ईस्वी सन् 1959) और विक्रम संवत् 2020 (ईस्वी सन् 1964) में — इस तरह दो बार दक्षिण और मध्य भारत में मंगल विहार हुआ था। इस मंगल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासु जीवों ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये और आपश्री की भवान्तकारी अमृतमयी वाणी सुनकर अनेक भव्यजीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। फलस्वरूप भारत भर में महती धर्म प्रभावना हुई और सोनगढ़ के इन सन्त के प्रति लोगों में श्रद्धाभक्ति का उत्साह जागृत हो उठा। यात्रा के दौरान अनेक स्थानों से लगभग 80 अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये।

पौने छह महीने की 800 मुमुक्षु यात्रियों के साथ निकली हुई विक्रम संवत् 2013 की श्री सम्मेदशिखरजी की प्रथम यात्रा के समय ईसरी आश्रम में दिगम्बर जैन समाज के अनेक प्रसिद्ध

विद्वानों की उपस्थिति में क्षुल्लक श्री गणेशप्रसादजी वर्णीजी के साथ पूज्य गुरुदेवश्री की वात्सल्यता भरी बातचीत हुई; तब वर्णीजी ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि 'स्वामीजी की प्रसन्न मुद्रा मुझे बहुत पसन्द आयी और मुझे ऐसा लगा कि इस आत्मा के द्वारा समाज का कल्याण होगा।' तत्पश्चात् मधुवन (शिखरजी) में अनेक दिगम्बर मुनियों, विद्वानों, वर्णीजी सहित अनेक त्यागियों और पाँच हजार से अधिक श्रोतागण के समक्ष पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन श्रवण से प्रभावित होकर सैकड़ों पण्डितों के विद्यापति पण्डित बंशीधरजी (इन्दौर) ने हिम्मतपूर्वक स्पष्ट प्रसिद्ध किया कि '.....आपकी वाणी में तीर्थंकरों का और कुन्दकुन्दस्वामी का ही हृदय है।' भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के अध्यक्ष पण्डित फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री, पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन-सत्समागम से इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे अपनी रूढ़िगत मान्यता छोड़कर पूज्य गुरुदेवश्री के अनुयायी बन गये।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले तथा कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों का रहस्योद्घाटन करनेवाले इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को श्री नवनीतभाई झबेरी की दीर्घ दृष्टि के कारण श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट द्वारा ईस्वी सन् 1959 से नवम्बर 1980 तक टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षितरूप से उपलब्ध हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल उपस्थिति में ही भारत भर में-विशेषरूप से हिन्दी समाज में तथा नैरोबी, लन्दन, स्वीटजरलैण्ड, हांगकांग, अमेरिका, केनाड़ा आदि विदेशों में अगणित संख्या में टेप रील तथा कैसेटों से ट्रस्ट के कैसेट विभाग द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों का मुमुक्षुओं ने लाभ प्राप्त किया था। हाल में सी.डी. युग शुरु होने पर स्वर्गीय शान्तिलाल रतिलाल शाह के परिवार द्वारा यह मंगलवाणी देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है, यह ऐसा प्रसिद्ध करती है कि भरतक्षेत्र के भव्य जीवों को पंचम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

दशलक्षण पर्यूषण पर्व के दौरान भारतभर में अनेक स्थलों से पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्ररूपित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिये प्रवचनकार भेजे जाते हैं। पर्यूषण में सर्व प्रथम बाहर गाँव-राजधानी दिल्ली में-वाँचन करने के लिये सोनगढ़ से खीमचन्दभाई सेठ गये थे। वे तथा श्री लालचन्दभाई मोदी (राजकोट) और श्री जुगलकिशोरजी 'युगल' (कोटा), पूज्य गुरुदेवश्री की सूक्ष्म तत्त्व प्ररूपणा का प्रचार करनेवाले अग्रेसर वक्ताओं में थे / हैं। प्रवचनकारों को भेजने की इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में जागृति आयी थी और आज भी देश-विदेश में पर्यूषण पर्व में सैंकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतराग वाणी का डंका बजाते हैं। डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के निर्देशन में नये-नये विद्वान तैयार करने के लिये श्री पूरणचन्दजी गोदिका द्वारा आचार्यकल्प पण्डित श्री टोडरमलजी की स्मृतिरूप से जयपुर में श्री टोडरमल स्मारक भवन का ईस्वी सन् 1967 में निर्माण हुआ, जिसका उद्घाटन पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल उपस्थिति में आपश्री के आशीर्वाद से हुआ था। नये प्रवचनकार विद्वानों को प्रवचन पद्धति के लिये प्रशिक्षित करने के लिये प्रतिवर्ष प्रशिक्षण वर्ग जयपुर से प्रारम्भ

किया गया था। उत्तर गुजरात तथा हिन्दी प्रान्त में पूज्य गुरुदेवश्री ने प्ररूपित तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में पण्डित श्री बाबूभाई फतेपुरवाले का विशेष योगदान रहा था।

भगवान श्री महावीरस्वामी के पश्चात् इस युग में जब बौद्ध सम्प्रदाय का बहुत प्रभाव था, तब समर्थ आचार्यश्री अकलंकदेव ने तत्कालीन प्रमुख बौद्ध आचार्य के साथ वाद-विवाद करके उनकी पराजय करने से जैन समाज में जय-जयकार हुआ था; इसी प्रकार अक्टूबर 1963 में खानियां (जयपुर) में दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के प्रखर पण्डितों और कानजीस्वामी के अनुयायीरूप से प्रसिद्ध पण्डित श्री फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री के बीच कितने ही दिनों तक लिखित प्रश्नोत्तर द्वारा तत्त्वचर्चा होने पर, पण्डित श्री फूलचन्दजी द्वारा उन पण्डितों की रूढ़िगत मान्यताओं का शास्त्रों के आधार द्वारा पराजय होने से पूज्य गुरुदेवश्री ने अत्यन्त भावविभोर होकर जैनदर्शन के सत्यमार्ग की विजय सम्बन्धी पण्डित फूलचन्दजी के लिये अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा था कि — पण्डित फूलचन्दजी ने बहुत काम किया है, बहुत मेहनत की है। शास्त्र से आधार देकर बराबर सच्ची श्रद्धा को टिका रखा है। ऐसा यह एक पण्डित निकला! शास्त्र के पण्डितरूप से पढ़कर स्व-आश्रय और पर-आश्रय इस बोल को टिका रखा; बहुत जोरदार बात है। हजारों बोल ओहो...हो...! बहुत ज्ञान है। अभी चलता यह पन्थ-विपन्थ, उसमें यह बात बाहर रखना! बहुत हिम्मत की है। इस ऐतिहासिक प्रसंग में पूज्य गुरुदेवश्री की अत्यन्त भावविभोर प्रसन्न मुखमुद्रा देखकर भक्त रोमांचित हो गये थे।

जन्म-मरण से रहित होने के सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्य विहारी पुरुष के मंगलकारी जन्मोत्सव मनाने की शुरुआत 59 वें वर्ष से हुई। 75 वीं हीरक जयन्ती के प्रसंग पर समस्त भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित 800 पृष्ठ का एक सजिल्द अभिनन्दन ग्रन्थ इन भावी तीर्थाधिनाथ को भारत सरकार के तत्कालीन मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में मुम्बई में अर्पण हुआ था। योगानुयोग थोड़े ही दिनों में वे भारत के प्रधानमन्त्री बने थे।

विक्रम संवत् 2037 के कार्तिक कृष्ण सात, दिनांक 28-11-1980, शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष देहादि का लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तर्ध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज ज्ञायक में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने भरतक्षेत्र में से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। जैसे नव पल्लवित वटवृक्ष शुरुआत में स्वयं अपनी विशालता को समृद्ध करता हुआ विशालकाय बन जाने के बाद, उसमें से अनेक वटवृक्षों का नवसृजन करता है, इसी प्रकार सोनगढ़ के इन सन्त ने शुरुआत में स्वयंभूरूप से अध्यात्मयुग का नवसृजन किया और उनकी विशाल प्रभावना छाया में देश-विदेश में—जयपुर, देवलाली, अलीगढ़, दिल्ली, गाँधीनगर, सोनागिर, बांसवाड़ा, इन्दौर, द्रोणागिर, नागपुर, गजपंथा, कोटा इत्यादि तथा नैरोबी, लन्दन, अमेरिका इत्यादि क्षेत्रों में-स्थापित संस्थाओं द्वारा आपश्री ने प्ररूपित तत्त्वज्ञान के प्रचार द्वारा आपश्री द्वारा नवसृजित अध्यात्मयुग को युग के अन्त तक टिका रखने का भी आपके पुण्य प्रताप से बना है। इस प्रकार आपश्री वीतरागी शासन को प्राणवन्त करते गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग के एक महान और असाधारण व्यक्ति थे। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से बहुत दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से आत्मसात भी किया।

श्री वीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् इन धारावाही 45 वर्षों का समय (वीर संवत् 2061 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980।) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्ण काल था। जो कोई मुमुक्षु अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी जाते थे, उन्हें तो वहाँ चतुर्थकाल का ही अनुभव होता था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वी सन् 1980 दौरान पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के निर्देशन में तथा पूज्य शान्ताबेन के भक्ति उल्लासपूर्ण संचालन में सौराष्ट्र-गुजरात उपरान्त भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में-इस प्रकार कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मंगल प्रतिष्ठा इन धर्मयुगस्रष्टा सत्पुरुष के करकमल द्वारा हुई थी।

आपश्री की अध्यात्मदेशना के प्रभाव से श्री सीमन्धरस्वामी दिगम्बर जिनमन्दिर, श्री समवसरण मन्दिर, श्री मानस्तम्भजी, श्री महावीर कुन्दकुन्द परमागममन्दिर, श्री पंचमेरु-नन्दिश्वर जिनालय जैसे जिनायतनों के निर्माण से आज स्वर्णपुरी जैनजगत में आत्मसाधना का तीर्थधाम बन गया है और निकट भविष्य में 41 फीट की भगवान श्री बाहुबली के खड्गासन जिनबिम्ब की तथा जम्बूद्वीप के अनेक जिनबिम्बों की स्थापना होने पर पूज्य गुरुदेवश्री की साधनाभूमि स्वर्णपुरी आकर्षक अजायबीरूप से विश्व के नक्शे में स्थान प्राप्त करेगी।

इन विदेहदशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्जवल था, उतना बाह्य जीवन भी पवित्र था। पवित्रता और पुण्य का सहजयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही देखने को मिलता है। उनकी अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत सम्भाषण, करुण और सुकोमल हृदय उनके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव थे। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तन और स्वाध्याय, यही उनका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति वे हमेशा सतर्क और सावधान थे। वे जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित, मात्र अपनी ही साधना में तत्पर रहे। भावलिंगी मुनियों के वे परम उपासक थे।

स्वयं चतुर्थ गुणस्थानवर्ती साधक होने पर भी उनका जीवन-व्यवहार और परिणाम की स्थिति अत्यन्त उच्चकोटि की थी। तीर्थंकर का द्रव्य होने से जगत के जीव आत्मकल्याण को प्राप्त करें-ऐसी करुणा वर्तती होने से 91 वें वर्ष में भी गाँव-गाँव में विहार करके भव्यजीवों की तत्त्व जिज्ञासा शान्त करते थे, तथापि वे इतने निस्पृही थे कि उन्होंने कभी भी किसी को भी जिनमन्दिर बनाओ या स्वाध्यायमन्दिर बनाओ, ऐसा कहना तो दूर रहा, संकेत तक नहीं किया था।

जीवों के आत्मकल्याण की करुणा होने पर भी इतने निर्ममत्वी थे कि कभी किसी को भी पूछा नहीं था कि तुम रोज स्वाध्याय करते हो न?

कोई व्यक्ति जीवनपर्यन्त तत्त्वज्ञान न समझने से पूज्य गुरुदेवश्री का विरोध करता हो और उस

व्यक्ति को अपने अज्ञान के लिये पश्चाताप होने पर पूज्य गुरुदेवश्री से क्षमा याचना करता हो, तब पूज्य गुरुदेवश्री को शर्म... शर्म... अनुभव में आती थी और कहते थे कि भूल जाओ... भूल जाओ... भगवान ने भी अपने भूतकाल में भूल करने में कुछ बाकी नहीं रखा था। तुम भगवान हो–ऐसा हम देखते हैं और तुम भगवानरूप से देखो–ऐसी तो निर्मानता थी।

तत्त्वविरोध के कारण दैनिक पत्र में और पत्रिका में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति अनुचित लेख छपें तो भक्त उनका विरोध करनेवाले हों तो आपश्री कहते है कि भाई! हमारा कोई विरोधी नहीं है। कोई हमारा विरोध नहीं करता, हम किसी को विरोधी नहीं देखते, हम तो सबको भगवानरूप से देखते हैं। चाहे जैसा लेख लिखकर विरोध करनेवाला भी यदि प्रवचन सुनने आता हो तो उसे सभा में आगे बैठने बुलाते और प्रवचन में वात्सल्यभाव से उसे सम्बोधित करते। पूरे जीवन दौरान किसी भी व्यक्ति ने कैसा भी विरोध किया हो, वह भी यदि एक बार पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्यक्ष दर्शन–सत्समागम में आता तो वह जीवन भर उनका अनुयायी बन जाता। क्षमावाणी के दिन प्रवचन सभा में प्रसिद्धरूप से कहते कि किसी जीव को हमारे द्वारा पर्यायदृष्टि से देख लिया गया हो तो हम क्षमा चाहते हैं। सब जीव भगवान हैं – ऐसी तो उनकी करुणामय क्षमा भावना थी।

जीवन में निस्परिग्रही तो ऐसे कि पैंतालीस–पैंतालीस वर्षों तक स्वाध्यायमन्दिर के एक ही कमरे में रहे कि जहाँ जिनवाणी–स्वाध्याय के लिये एक बैठक, सोने के लिये एक गद्देवाली बैंच और त्यागी को योग्य मात्र चार जोड़ी कपड़े! और स्वाध्याय के लिये सैकड़ों शास्त्रों से भरी हुई अलमारियाँ!!

देश और दुनिया में क्या हो रहा है, यह जानने का कौतुहल नहीं होने से कभी भी न्यूज पेपर तक पढ़ा नहीं था।

रसना के अलोलुपी–नि:स्वादी तो इतने कि जीवनभर कभी भी दो–तीन सब्जी के अतिरिक्त न तो कोई सब्जी चखी थी, मूँग की दाल के सिवाय न तो कोई दाल या कढ़ी चखी थी, न तो कोई चटनी, मिर्च चखी थी, न तो कोई मिठाई या फरसाण अथवा मुखवास चखा था। मानो कि कोई त्यागी–व्रती हो, वैसा उनका जीवन था।

करुणाशीलता का सागर होने पर भी, तत्त्व में इतने निर्भीक और सत्यमार्ग प्रवक्ता थे कि किसी भी लौकिक महानुभाव का उन पर प्रभाव नहीं पड़ता था। एक प्रतिष्ठित श्रेष्ठी तथा एक त्यागी व्रती द्वारा उद्दिष्ठ भोजन सम्बन्धी कुछ स्वयं कहने सम्बन्धी पूज्य गुरुदेवश्री को संकेत किया जाने पर आपश्री ने बहुत स्पष्टरूप से कहा कि अपने लिये बनाया हुआ आहार—उद्दिष्ट भोजन—प्राण जाये तो भी मुनिराज नहीं लेते। देशकाल के नाम से सर्वज्ञ कथित शुद्ध आम्नाय का उल्लंघन कैसे किया जाये? विक्रम संवत् 1994 में स्वाध्यायमन्दिर के उद्घाटन प्रसंग पर भावनगर के महाराजा श्री कृष्णकुमारसिंहजी (देश के प्रथम राज्यपाल–मद्रास के) सोनगढ़ आये; उन्हें आपश्री ने प्रवचन में कहा कि थोड़ा माँगे वह छोटा भिखारी, बड़ा माँगे वह बड़ा भिखारी–वर्ष में पाँच हजार चाहिए हो, वह छोटा भिखारी और पाँच लाख चाहिए हो, वह बड़ा भिखारी! श्रीमद् राजचन्द्रजी को अपने धर्मगुरु माननेवाले राष्ट्रपिता गाँधीजी

विक्रम संवत् 1995 में राजकोट में प्रवचन में आये। पूज्य गुरुदेवश्री ने अपनी तत्त्व की मस्ती में कहा कि मैं दूसरे की सेवा कर सकता हूँ - ऐसा माननेवाला मूढ़ है। यह बात गाँधीजी को इतनी अधिक स्पर्श कर गयी कि कितने ही वर्षों के बाद उन्होंने किसी से पूछा कि मुझे मूढ़ कहनेवाले महाराज अभी कहाँ विचरते हैं ?

गुण प्रशंसक तो इतने कि किसी ने भी शासन सम्बन्धी प्रशंसनीय कार्य किया हो - चाहे वह अपना शिष्य भले हो तो भी उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे।

- ऐसी अनेक उच्चकोटि की परिणति और अध्यात्म तत्त्वज्ञान से भरपूर उपदेश के सुसंगम के कारण प्रथम परिचय में ही श्रोता उनके प्रति भावविभोर बनकर उनके अनुयायी बन जाते थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन अनुभूति विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से, सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा, युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से समझाया था। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान का स्वपरप्रकाशकपना इत्यादि समस्त आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से बाहर आये थे। 'सैंकड़ों शास्त्रों के हमारे मन्थन का यह सार अन्दर से आया है।' — इस 'क्रमबद्धपर्याय' के शंखनाद द्वारा आपश्री ने जैन जगत को आन्दोलित किया। जैसे श्री समयसार का स्मरण करे तो कानजीस्वामी का स्मरण हुए बिना नहीं रहता; इसी प्रकार क्रमबद्धपर्याय शब्द कान में पड़े तो कानजीस्वामी का स्मरण हुए बिना रहना असम्भव है। आज देश-विदेश में लाखों जीव मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं, यह आपश्री का ही परम प्रताप है।

करुणासागर, पुरुषार्थप्रेरणामूर्ति, सम्यग्ज्ञानविभूषित इन महात्मा की महिमा का वर्णन शब्दातीत है; मात्र अहोभाव से अनुभवगम्य है।

'तू परमात्मा है-ऐसा निर्णय कर! तू परमात्मा है-ऐसा निर्णय कर!' — ऐसा महामन्त्र मुमुक्षुओं को देकर, भक्तों को भगवान बनने की प्रेरणा करनेवाले इन महापुरुष ने प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पन्थ जगत् में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थंकर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासनस्तम्भ श्री कहान गुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!

भवभीरु भव्यात्मा के भव का अभाव करनेवाले सत्पुरुष का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!

हे ज्ञान पोषक सुमेघ तुझे नमूँ मैं
इस दास के जीवनशिल्पी तुझे नमूँ मैं॥

- जीतूभाई नागरदास मोदी, सोनगढ़

अनुक्रमणिका

क्रम	शास्त्र	गाथा/श्लोक	तारीख	प्रवचन नं.	पृष्ठ
१.	श्री नियमसार	३, १०	०३-०१-१९७६	१४२	१
२.	श्री नियमसार	३, १०	०४-०१-१९७६	१४३	१५
३	श्री नियमसार	३	०५-०१-१९७६	१४४	२८
४	श्री नियमसार	९, १५	१३-०१-१९६६	१५१	४०
५	श्री नियमसार	९-१०, १६	१४-०१-१९७६	१५२	५३
६	श्री नियमसार	१०, १७	१५-०१-१९७६	१५३	६८
७	श्री नियमसार	११-१२	१६-०१-१९७६	१५४	८३
८	श्री नियमसार	११-१२	१८-०१-१९७६	१५५	९७
९	श्री नियमसार	१८-२०	१९-०१-१९७६	१५६	११०
१०	श्री नियमसार	१३, २१-२२	२०-०१-१९७६	१५७	१२४
११	श्री नियमसार	१३-१४, २३	२१-०१-१९७६	१५८	१३९
१२	श्री नियमसार	१५, २४-२६	२२-०१-१९७६	१५९	१५३
१३	श्री नियमसार	१५	२३-०१-१९७६	१६०	१६६
१४	श्री नियमसार	१५	२५-०१-१९७६	१६१	१८१
१५	श्री नियमसार	१५	०९-१०-१९५१	४२२	१९५
१६	श्री नियमसार	१५	१०-०१-१९५५	४१४	२१०
१७	श्री समयसार	३२०	२०-०८-१९७०	४५०	२२६

प्रवचन शुरु करने से पहले पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा किया जानेवाला

मांगलिक

॥ णमो लोए सव्व अरिहंताणम् ॥

॥ णमो लोए सव्व सिद्धाणम् ॥

॥ णमो लोए सव्व आयरियाणम् ॥

॥ णमो लोए सव्व उवज्झायाणम् ॥

॥ णमो लोए सव्व त्रिकाळवर्ती साहूणम् ॥

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावायभावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥

मङ्गलं भगवान् वीरो मङ्गलं गौतमो गणी ।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥

त्रिकाळ दिव्यध्वनि दातार.....

ॐ

श्री परमात्मने नमः

गुरु कहान : दृष्टि महान

अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के द्रव्यदृष्टिप्रधान आध्यात्मिक प्रवचन

(भाग ६)

१ श्री नियमसार, गाथा-३, श्लोक-१० प्रवचन - १४२
दिनांक - ०३-०१-१९७६

नियमसार, जीव अधिकार। दो गाथा पूरी हुई। तीसरी गाथा।

णियमेण य जं कज्जं तं णियमं णाणदंसणचरित्तं।
विवरीयपरिहरत्थं भणिदं खलु सारमिदि वयणं।।३।।

जो नियम से कर्तव्य दर्शन-ज्ञान-व्रत यह नियम है।
यह सार पद विपरीत के परिहार हित परिकथित है॥३॥

अन्वयार्थ : नियम, अर्थात् नियम से (निश्चित) जो करनेयोग्य हो वह,... आत्मा को सुख के लिये निश्चय से करनेयोग्य हो, उसे नियम कहा जाता है। सुख के लिए, हों! धर्म के लिये। संसार के लिये जो यह राग और द्वेष करता है, वह तो पाप और दुःख है। समझ में आया? संसार के लिये जो यह कमाने का, खाने का, भोगने का, विषय का, पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़, पैसे (रुपये) हों, उसका जो भाव है, वह तो पाप का भाव, दुःख का रास्ता है।

श्रोता : दो मत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई मत नहीं। अज्ञानी मानते हैं कि सुख का पंथ-मार्ग है। पैसा मिले, वह सुखी। धूल भी नहीं। दु:खी के सरदार हैं बेचारे। आहाहा! भगवानजीभाई! पैसा तो धूल, जड़, मिट्टी है। वे आत्मा के हैं - ऐसा मानना, वह भ्रमणा, और दु:ख के पंथ में जाता है। आहाहा! डाह्याभाई! तुम्हारे लड़के को पैसे हुए हैं। कहो, समझ में आया? किसी का सुना हुआ होवे कि पहले कहता कि छोड़ दो तुम नौकरी।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ऐसा नहीं। हाँ, थे न, थे की बात तो हुए हैं।

श्रोता : नहीं, अभी सब....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, यह प्रश्न नहीं। यहाँ तो पैसे है, ऐसा।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हुए हैं, इसका अर्थ है। यह कोई काला बाजार से (हुए हैं), यह कुछ प्रश्न है नहीं। यह तो तुमको कहते थे कि तुम नौकरी छोड़ दो। ऐसा सुना है। आजीविका है। तुम अब रहने दो। .... धूल में भी कहीं नहीं। ये सब करोड़पति पच्चीस करोड़ और पचास करोड़, ये सब बेचारे दु:खी हैं। भिखारी हैं, भिखारी... आहाहा! ऐसी बात है, भाई! आत्मा के अन्तर... यहाँ कहेंगे।

जो यह नियम-मोक्ष का मार्ग है, उसका कारण भगवान आत्मा नियमरूप है। आहाहा! समझ में आया? अन्दर में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति की लक्ष्मी आत्मा में पड़ी है, उसे यहाँ नियम कहेंगे। यह मोक्षमार्ग नियम, वह पर्याय है। समझ में आया? परन्तु पर्याय की उत्पत्ति का कारण है, वह त्रिकाल लक्ष्मी आत्मा में पड़ी है। आहाहा! अरे! इसे बेचारे को खबर कहाँ है? बाहर में धूल में, भोग में, विषय में सुख मानकर भ्रमणा से दु:खी हो रहा है। समझ में आया? है न?

श्रोता : समझ में आया कब कहलाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आया, तब कहलाये कि यह अन्दर आत्मा को समझे तो, तब इसे समझ में आये। आत्मा आनन्दस्वरूप और... यह मोक्ष का जो मार्ग है, वह पर्याय है-कार्य है; परन्तु उसका कारण त्रिकाली आत्मा, वह नियम है और वह कारण है। आहाहा! समझ में आया? दुनिया से अलग प्रकार है। आहाहा!

कहते हैं, **जो नियम से कर्तव्य ऐसे रत्नत्रय वह नियम है।** नाम दिये हैं न? इसमें ज्ञान

पहले दिया है। दूसरे में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—ऐसा देते हैं। इसमें पहले ज्ञान-दर्शन और चारित्र दिया है। फिर इसमें संक्षिप्त करने के लिये नीचे गुजराती में रत्नत्रय किया है। **यह सार पद विपरीत के परिहार हित परिकथित है।** यह **नियम, अर्थात् नियम से (निश्चित) जो करनेयोग्य हो वह, अर्थात् ज्ञान-दर्शन-चारित्र।** है ? निश्चय से आत्मा को शान्ति और सुख के लिए करनेयोग्य हो, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। आहाहा! समझ में आया ? आत्मा के अतिरिक्त शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार का तो आत्मा कुछ कर नहीं सकता। अज्ञानी भी कर नहीं सकता। मूढ़ होकर भले माने। समझ में आया ? परन्तु वह इस आत्मा की सत्ता के द्रव्य-गुण-पर्याय के सिवाय, पर के कोई द्रव्य-गुण-पर्याय को आत्मा कुछ कर नहीं सकता। एक बात। अज्ञानभाव से वह मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष को करे। वह कोई निश्चय करनेयोग्य कर्तव्य है - ऐसा नहीं है। वह तो दु:ख के लिए है। आहाहा! समझ में आया ? भ्रमणा कि पर में सुख है, पुण्य की क्रिया करने से धर्म होता है, दया-दान-व्रत-भक्ति करते-करते कल्याण होता है - ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह दु:ख का पंथ है। समझ में आया ? वह कहीं आत्मा का, सत्य का कर्तव्य नहीं है। वह तो अज्ञानभाव का कर्तव्य है। आहाहा! गजब बातें, भाई!

तब **नियम, अर्थात् नियम से (निश्चित) जो करनेयोग्य हो वह, अर्थात् ज्ञान-दर्शन-चारित्र।** उसके **विपरीत के परिहार हेतु से (ज्ञान-दर्शन-चारित्र से विरुद्धभावों का त्याग करने के लिए) वास्तव में 'सार' ऐसा वचन कहा है।** व्यवहाररत्नत्रय जो है—देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान और पंच महाव्रत आदि के परिणाम, वह तो राग है। इसलिए (सार शब्द) रखा है कि इनके बिना का जो कर्तव्य है, वह सार है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया ? नियमसार है न ?

यहाँ (इस गाथा में), 'नियम' शब्द को 'सार' शब्द क्यों लगाया है,... नियम-सार। **उसके प्रतिपादन द्वारा स्वभावरत्नत्रय का स्वरूप कहा है।** आहाहा! देखा ? पहले, दूसरी गाथा में शुद्धरत्नत्रय कहा था। यहाँ स्वभावरत्नत्रय कहा। अर्थात् कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह राग है, वह विभाव है। आहाहा! विकल्प से शास्त्र का पठन करना, वह भी राग है और पंच महाव्रत पालना, रखना, वह भी एक राग है, वह विभाव स्वभाव है। उसका निषेध करने को नियम-सार ऐसा शब्द लगाया है। आहाहा! समझ में आया ? भाई! यह तो दुनिया से अलग बात है। पूरी दुनिया सब बेचारे कहीं भटकने पड़े हैं। उन्हें यह तो भटकने के बन्धमार्ग को (मिटाने के) उपाय की बात है। आहाहा!

स्वभावरत्नत्रय है न ? पहले में शुद्धरत्नत्रय – ऐसा कहा था। दूसरी गाथा में, शुद्धरत्नत्रय मार्ग परम निरपेक्ष – ऐसा कहा था। वह शुद्धरत्नत्रय कहो या स्वभावरत्नत्रय कहो या निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो। समझ में आया ? आहाहा ! देखो ! आचार्य कैसी टीका करते हैं ! पहला 'नियम' शब्द पड़ा है न ? **'णियमेण य जं कज्जं'** जरा सूक्ष्म बात है। इसने अनन्त काल में चार गति के परिभ्रमण में अनन्त भव किये, परन्तु इसने कभी सम्यग्दर्शन क्या है, वह किया नहीं। राजा अनन्त बार हुआ, अरबोंपति मनुष्य अनन्त बार हुआ, भिखारी अनन्त बार हुआ, नारकी अनन्त बार हुआ, पशु-ढोर अनन्त बार हुआ है। आहाहा ! परन्तु इसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह क्या है ? वह कभी एक सेकेण्ड भी किया नहीं। आहाहा !

अब कहते हैं कि 'नियम' अर्थात् जो मोक्ष का मार्ग, उसमें व्यवहार – ऐसा जो विकल्प, उसका निषेध करके नियमसार अर्थात् स्वभावरत्नत्रय की व्याख्या करनी है। जो वास्तविक मोक्ष का कारण है। **जो सहज परम-पारिणामिकभाव से स्थित...** आहाहा ! भाषा ऐसी है जरा। आत्मा, जो ज्ञायक त्रिकाल है, वह **सहज परम-पारिणामिकभाव...** स्वाभाविकभाव, सहजभाव अनादि है। आहाहा ! **सहज परम-पारिणामिकभाव...** ऐसी वस्तु। **भाव से स्थित...** परमपारिणामिक शब्द प्रयोग किया, उसका नीचे (फुटनोट में) स्पष्टीकरण किया है।

इस परम-पारिणामिकभाव में 'पारिणामिक' शब्द होने पर भी.. पारिणामिक शब्द है न ? **उत्पाद-व्ययरूप परिणाम को सूचित करने के लिए नहीं है...** पर्याय में जो उत्पाद-व्यय होता है। मोक्ष का मार्ग होता है, उसे भी सूचित करने के लिए नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? **उत्पाद-व्ययरूप परिणाम को सूचित करने के लिए नहीं है तथा पर्यायार्थिकनय का विषय नहीं है;...** त्रिकाली पारिणामिकभाव में जो स्थित है, वह पारिणामिक पर्यायनय का विषय नहीं है, वह अवस्था को बतलानेवाला नहीं है। वह तो त्रिकाल को बतलानेवाला है। आहाहा ! **यह परम-पारिणामिकभाव तो उत्पाद-व्ययनिरपेक्ष एकरूप है...** क्या इसमें परमपारिणामिक ! कभी बाप-दादा ने सुना नहीं हो। एकेन्द्रिय की दया पालना, ... लो ! तस्स मिच्छामि दुक्कडम्। आहाहा ! क्या हो ? भाई ! यह वस्तु अन्दर ऐसी है।

परमपारिणामिकभाव, पर्यायरहित सहज शुद्धस्वरूप। वर्तमान धर्म की पर्याय या संसार की पर्याय या मोक्ष की पर्याय, उससे रहित। समझ में आया ? **यह परम-पारिणामिकभाव तो उत्पाद-व्ययनिरपेक्ष एकरूप है...** उत्पाद-व्यय तो अनेकरूप हुए न ? उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय। यह तो एकरूप त्रिकाल ध्रुवस्वरूप। **और द्रव्यार्थिकनय का विषय है।** द्रव्य

अर्थात् परमार्थ से जिसका सामान्य द्रव्यस्वभाव, उसका विषय करनेवाला द्रव्यार्थिकनय, उसका यह विषय है। **(विशेष के लिए हिन्दी समयसार, गाथा ३२०, श्री जयसेनाचार्यदेव की संस्कृत टीका और बृहद्-द्रव्यसंग्रह, गाथा १३ की टीका देखो।)** ३२० वीं गाथा अपने पढ़ी जा चुकी है। भगवान आत्मा परमस्वभाव जो नित्य ध्रुव है, वह तो मोक्ष और मोक्ष के मार्ग की क्रियारहित है। सेठ! ३२० गाथा वाँची गयी है। मोक्ष है, वह पर्याय-अवस्था है और मोक्ष का मार्ग है, वह भी पर्याय-अवस्था है; तथा संसार जो अज्ञान और मिथ्यात्व, राग-द्वेष है, वह भी विकार पर्याय है। बन्ध और मोक्ष, बन्ध और मोक्ष के कारणरूप... वस्तु, बन्ध-मोक्ष की पर्याय से रहित है और बन्ध-मोक्ष के कारणरूप मार्ग से भी रहित वस्तु है। ३२० गाथा आ गयी है। बहुत आ गया है। आत्मधर्म में तो बहुत प्रकार आये हैं।

भगवान आत्मा एक समय की... द्रव्यसंग्रह का दृष्टान्त लिया है और परमात्मप्रकाश का दृष्टान्त लिया है। जिनेश्वर ऐसा कहते हैं, जिनवरदेव तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि जीव बन्ध और मोक्ष को नहीं करता। ऐई! बन्ध और मोक्ष, वह तो पर्याय है, अवस्था है। त्रिकाली स्वभाव वह परमस्वभावभाव, वह मोक्ष और मोक्ष के कारण, बन्ध और बन्ध के कारण को वह नहीं करता। समझ में आया? मोक्ष होता है, वह पर्याय में-अवस्था में, वह अवस्था, अवस्था को करती है। द्रव्य नहीं।

श्रोता : कारण तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण वस्तु है। कारण है, वह तो कूटस्थ पड़ा है। वह कारण कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म विषय है, भाई! जिनेन्द्रदेव केवलज्ञानी भगवान परमेश्वर वीतराग तीर्थंकर का मार्ग कोई सूक्ष्म है। लोगों को बाहर की बातों के कारण यह तत्त्व हाथ नहीं आया.. आहाहा! बहुत तो दया, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा करे तो मानो धर्म हो गया। वह तो राग है परन्तु पर्याय में धर्म होता है, उसका-पर्याय का कर्ता द्रव्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ३२० गाथा का वांचन हो गया। परमपारिणामिकभाव। पर्याय को भी पारिणामिकभाव कहा जाता है। पारिणामिकभाव पर्याय को (कहा जाता है) परन्तु यह तो त्रिकाली है, वह परमपारिणामिकभाव कहलाता है। समझ में आया?

राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव को पारिणामिकभाव कहा जाता है। तथा मोक्ष का मार्ग है सम्यग्दर्शन मार्ग, उसे पारिणामिकभाव कहा जाता है। पर्याय है न? परन्तु त्रिकाली है, वह तो परमपारिणामिकभाव ध्रुव है। आहाहा! ऐसा परमपारिणामिकभाव, वह उत्पाद-व्ययरहित है। समझ में आया? उत्पाद-व्यय की पर्याय से निरपेक्ष है अर्थात् मोक्ष और मोक्ष के मार्ग की

अवस्था से वह निरपेक्ष है। आहाहा!

वह **परम-पारिणामिकभाव से स्थित स्वभाव,...** क्या? **स्वभाव, अनन्त चतुष्टयात्मक...** स्वाभाविक अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य अन्दर स्वभाव में पड़ा है। आहाहा! **स्वभाव, अनन्त चतुष्टयात्मक...** त्रिकाल की बात है, हों! परमपारिणामिकस्वभावभाव ध्रुव, नित्य, पर्यायरहित वह स्वभाव अनन्त चतुष्टयस्वरूप **शुद्धज्ञानचेतना-परिणाम,...** आहाहा! **शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम,...** स्वभाव अनन्त चतुष्टयस्वरूप **शुद्धज्ञानचेतना-परिणाम,...** यह दूसरा। **इस शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम में 'परिणाम' शब्द होने पर भी वह, उत्पाद-व्ययरूप परिणाम को सूचित करने के लिए नहीं है...** आहाहा! ऐसी बात है, भाई! **और पर्यायार्थिकनय का विषय नहीं है; यह शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम तो उत्पाद-व्ययनिरपेक्ष एकरूप है और द्रव्यार्थिकनय का विषय है।** भाषा सब अटपटी लगे। धन्धे के पाप के कारण कभी सुना न हो। पूरे दिन होली सुलगा करती है। यह पाँच-पचास मिले, धूल मिली, गयी, यह मिले। पचास लाख कमाये, पाँच लाख का खर्च किया, पैंतालीस हजार बढ़े, धूल भी नहीं, सुन न! अकेला पाप है। उसके कारण ऐसे शब्द भी इसने सुने नहीं होंगे।

यहाँ तो कहते हैं कि परमपारिणामिकस्वभावभाव जो ध्रुव, उसमें रहे हुए अनन्त चतुष्टयस्वरूप त्रिकाली शुद्धज्ञानचेतना। **शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम...** यह परिणाम, वह पर्याय नहीं है। वह परिणाम वह उत्पाद-व्यय निरपेक्ष शुद्धज्ञानचेतना ध्रुव को ज्ञानचेतना परिणाम कहते हैं। ज्ञानचेतना को परिणाम न... आहाहा! स्वभाव परमपारिणामिकभाव में रहे हुए। स्वभाव अनन्त चतुष्टयस्वरूप ज्ञान, अनन्त ज्ञान, स्वभावज्ञान, स्वभावदर्शन, स्वभाव आनन्द, स्वभाव पुरुषार्थ-वीर्य। ऐसे स्वरूप **शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम...** त्रिकाली चतुष्टयस्वभाव ऐसा शुद्ध ज्ञानचेतना का भाव, अर्थात् त्रिकाल, **सो नियम (कारणनियम) है।** यहाँ कहना है कार्यनियम का, परन्तु उस कार्यनियम को कारणनियम है, यह पहले बतलाना है। आहाहा! नियम क्या होगा? यह नियम लेना, वह होगा? यह व्रत और तप, यह कुछ नियम ले। वह नहीं, बापू! वह तो दूसरी बातें हैं, भाई! यह व्रत, तप और वह तो नियम नहीं, मोक्ष का मार्ग भी नहीं। समझ में आया? परन्तु अन्तर में त्रिकाली भगवान आत्मा के आश्रय से नियम, जो मोक्षमार्ग निश्चय आनन्द, सम्यग्दर्शन आनन्ददायक, ज्ञान आनन्ददायक, शान्ति आनन्ददायक, चारित्र आनन्ददायक - ऐसा जो नियम, वह पर्याय है। उस पर्याय का कारण त्रिकाली आत्मा

पारिणामिक में स्थित स्वभाव चतुष्टयस्वरूप शुद्ध ज्ञानचेतनापरिणाम, वह ध्रुव है। डाह्याभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! बाहर की (बातें तो) कहाँ करना?

सो नियम (कारणनियम) है। पाठ में तो कार्यनियम की व्याख्या है परन्तु कार्य में से उन्होंने कारण बतलाया। त्रिकाल वस्तु जो है, सहज परमस्वभाव। चार भाव—उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक है। इन चार को तो कर्म के निमित्त की अपेक्षा आती है। राग-द्वेष में निमित्त की अपेक्षा, उपशम-क्षयोपशम-क्षायिक में निमित्त के अभाव की अपेक्षा। इसलिए वह त्रिकाली भाव नहीं हुआ। जिसे कर्म की अपेक्षा नहीं, जिसे पर्याय की अपेक्षा नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे **शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम...** त्रिकाल ज्ञायकभाव में रहे हुए, स्व चतुष्टय—स्वभाव चतुष्टय, ऐसी इन चार स्वरूप **शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम...** शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम में अनन्त ज्ञान आया, अनन्त दर्शन आया, अनन्त आनन्द आया और अनन्त पुरुषार्थ, ऐसा जो **शुद्धज्ञानचेतनारूप...** कारण, त्रिकाल **सो नियम (कारणनियम) है।** कहो, चन्दुभाई! यह ऐसी बात है।

यहाँ मोक्षमार्ग की व्याख्या करनी है। मोक्षमार्ग है, वह निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (स्वरूप है) यहाँ ज्ञान-दर्शन-चारित्र लिया है। अन्यत्र दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। यह सम्यग्ज्ञान, आत्मा के स्वभाव को सम्यग्ज्ञान द्वारा वेदना; सम्यग्दर्शन पूर्ण आनन्दस्वरूप के सन्मुख होकर प्रतीति-सम्यग्दर्शन (होना); और दर्शन-ज्ञानसहित ऐसा जो भगवान आत्मा, उसमें लीनता (होना), आनन्दरूप से लीनता (होवे), वह चारित्र है। यह ज्ञान-दर्शन और चारित्ररूप परिणाम, वह कार्यनियमसार है। पर्याय हुई न! पर्याय अर्थात् कार्य। पर्याय अर्थात् कार्य, द्रव्य अर्थात् कारण। द्रव्य अर्थात् यह पैसा द्रव्य होगा?

नहीं कहा था? बहुत वर्ष पहले अपने यहाँ लिखा था 'द्रव्यदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि' ऐसा लिखा है, पहले सिर के ऊपर सामने लिखा था। एक मन्दिरमार्गी व्यक्ति आया। यहाँ सब पैसेवाले करोड़पति आवे न! और उसके रिश्तेदार करोड़पति नानालालभाई। यह द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि, महाराज! क्या है यह? ये पैसेवाले, वे सम्यग्दृष्टि? ऐसा है? कहो, बेचारे को कुछ खबर नहीं होती। 'थान' में पोट्री का धन्धा। पोट्री का धन्धा। पोट्री समझे? बर्तन बनाने का। बर्तन न? काँच के बर्तन। मिट्टी के भी बर्तन होते हैं। ये पाँच के बर्तन। ठीक। व्याख्यान चलता है न! उसके ऊपर लिखा था—'द्रव्यदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि' कि यह द्रव्यदृष्टि यह सब... नानालालभाई और करोड़पति यहाँ आते हैं। नानालालभाई और कालीदास सब कहते। कि

यह द्रव्यदृष्टि, वह पैसे की दृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि? ऐई! माणिकचन्दभाई ने कहा तुमको... उसका नाम माणिकचन्दभाई था।

श्रोता : खबर न हो और सुना न हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कभी सुना न हो। खबर न हो। भाई! द्रव्य, यह पैसे की यहाँ बात नहीं है। यहाँ तुम्हारे पैसे का-धूल का क्या काम है? वह तो अपने आप धूल का हुआ है। कोई कर्ता है। रामजी भाई ने किया है? वजुभाई ने किया है यह? कहाँ गये वजुभाई? ये बैठे। इस कारीगर ने किया है? वह तो बापू! वह तो रजकण की अवस्था उसके कारण बन गयी है। आहाहा! परमाणु का जन्मक्षण-उस-उस पर्याय की उत्पत्ति का काल था, उसमें यह बन गया है। अरे! यह कैसे जँचे? समझ में आया? इसलिए पैसे के बनता है, यह बात सत्य नहीं है।

श्रोता : सोनगढ़ में ऐसा बने।

पूज्य गुरुदेवश्री : सादड़ी में न चले वहाँ। मुम्बई में सादड़ी होती है न? मुम्बई में सादड़ी होती है। सुना है या नहीं? मुम्बई में मर जाने के बाद सादड़ी होती है। उसे सादड़ी कहते हैं। हमने पढ़ा है न बहुत, मर जाए, फिर सादड़ी करे अर्थात् सब लोग इकट्ठे हों। बड़ा-बड़ा है घर-घर में कहाँ जाए? इसलिए सादड़ी का दिवस रखा। उसे सादड़ी का दिवस कहते हैं। सादड़ी किसलिए कहा होगा? क्या होगा कुछ? बिछाते होंगे? आहाहा! यह तो मृत्यु होने के बाद सादड़ी बिछाये ऐसा है।

यह तो आत्मा आनन्द का नाथ भगवान, आहाहा! जिसमें ऐसी सादड़ी पसरी हुई है। अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द ऐसे तिरछे पसरे हुए हैं। भगवान आत्मा यह शरीर, वाणी, मन, जड़, मिट्टी धूल है, वह तो भिन्न चीज़ है। यह तो उनसे अन्दर भिन्न है। उसमें कर्म है, उनसे आत्मा भिन्न चीज़ है। पुण्य-पाप के, बन्ध के, दुःख के कारण-विकल्प होते हैं, उनसे वह भिन्न चीज़ है। उसकी विकारी या अविकारी वर्तमान पर्याय होती है, उससे वह भिन्न चीज़ है। वह भिन्न चीज़ कैसी है? कि जिसमें अनन्त स्वाभाविक अनन्त चतुष्टयरूप शुद्ध ज्ञानचेतना - परिणाम स्वभाव पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? स्वभाव अनन्त चतुष्टयस्वरूप, ऐसा। स्वभाव अनन्त चतुष्टयस्वरूप **शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम...** त्रिकाली ज्ञायक का चेतना, ऐसा जो स्वभावभाव, उसे कारणनियम कहा जाता है। आहाहा! गजब बात, भाई! यह नये लोगों को लगे (कि) यह क्या कहते हैं? किस प्रकार का धर्म है यह? यह जैनधर्म होगा यह? अपने

तो जैनधर्म में तो दया पालना, व्रत पालना, अपवास करना, भक्ति करना, कन्दमूल नहीं खाना। अरे! जैनधर्म किसे कहना, यह तुझे खबर नहीं है। समझ में आया?

जिसमें वीतरागता उत्पन्न हो, वह जैनधर्म और उस धर्म का कारण, वह त्रिकाली वीतरागस्वभाव नियम, वह उसका कारण है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! लो, यह कारणनियम की बात की। कहाँ गये? त्रिभुवनभाई गये? बैठे हैं। यह कारणनियम। कारणनियम होवे तो कार्य आना चाहिए। भाई ने प्रश्न किया था। बात सत्य है। परन्तु इस कारणनियम का स्वीकार करे, उसे कारणनियम है न? जो नहीं मानता, उसे कारणनियम कहाँ से आया? जिसे पर्याय में, सम्यग्दर्शन-ज्ञान में यह त्रिकाल वस्तु है, कारणनियम वस्तु है, ऐसा जिसने स्वीकार करके सत्कार किया और माना, उसे कारणनियम है। उसे कारणनियम में कार्यसम्यग्दर्शन हुए बिना नहीं रहता। आहाहा!

श्रोता : माना है, वही कार्य हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह हो गया न! कहा। वह हो गया। आहाहा! मार्ग गजब, भाई! ऐसी बातें! प्रतिक्रमण करना, सामायिक करना, प्रोषध करना, उपवास करना। लो, ऐसा तो धर्म हमने सुना था। यह किस प्रकार का धर्म? यह जैनधर्म। यह कारणनियम है। कारणनियम समझ में आया? स्वाभाविक। जिसकी उत्पत्ति नहीं और जिसका व्यय नहीं। सहज परम अर्थात् उत्कृष्ट, पारिणामिक अर्थात् सहजस्वभावभाव, उसमें रहा हुआ स्वभाव अनन्त चतुष्टयस्वरूप, स्वभाव अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त पुरुषार्थ-ऐसा स्वरूप शुद्ध ज्ञानचेतना त्रिकाल, वह **शुद्धज्ञानचेतना-परिणाम, सो नियम (कारणनियम) है।** इतने शब्द में इतना अर्थ है। आहाहा! समझ में आया? शान्तिभाई! यह कभी सुना भी नहीं होगा। धन्धे के कारण निवृत्त कब थे! बाहर की प्रवृत्ति, भाषण करना, यह करना। लो! आहाहा!

नियमसार। नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। निर्विकारी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। उसे सार क्यों कहा? - कि विभाव का रत्नत्रय है, उसके परिहार के लिए नियमसार कहा गया है। अब वह नियमसार कार्यस्वरूप नियमसार है, तो इस कार्यनियमसार का कारण कौन? आहाहा! केवलज्ञानरूपी कार्य, उसका भी कारण कौन? ऐसा कहते हैं। केवलज्ञानरूपी कार्य का कारण मोक्ष का मार्ग, ऐसा नहीं। उस कार्य का कारण कौन? - कि त्रिकाली वस्तु, कि जिसमें ऐसी अनन्त-अनन्त पर्यायों का संग्रहस्वरूप गुण जिसमें पड़ा है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे **शुद्धज्ञानचेतना..** निर्मल ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता ऐसा जो चेतनाभाव, चेतनारूप त्रिकाल भाव, वह

नियम अर्थात् कारणनियम है। कहो, समझ में आया?

अब कार्यनियम की बात चलती है। जो यह मोक्षमार्ग यहाँ अधिकार है वह। आहाहा! कारण कह दिया। अब यह नियम कार्य है, यह नियम पर्याय हुई, परन्तु उस पर्याय का पूरा तत्त्व नहीं होता, उस नियम का पूरा तत्त्व नहीं होवे तो कारण बिना कार्य आवे कहाँ से? आहाहा!

अब **नियम (कार्यनियम), अर्थात्...** अब, यह मोक्ष का मार्ग वर्तमान पर्यायरूप है वह। वर्तमान निर्मल पर्यायरूप जो मोक्ष का मार्ग है, जो सुख का पन्थ है। सुख के पन्थ में जाना, वह क्या? **(कार्यनियम), अर्थात् निश्चय से (निश्चित) जो करनेयोग्य...** आहाहा! वह करनेयोग्य नहीं, वह (कारणनियम) तो त्रिकाल है। पहला जो सहज पारिणामिकभाव है, वह तो त्रिकाल है। अब पर्याय में करनेयोग्य जो है... आहाहा! समझ में आया? **(निश्चित) जो करनेयोग्य-प्रयोजनस्वरूप हो...** लो! **णियमेण य जं कज्जं** का अर्थ किया। **करनेयोग्य-प्रयोजनस्वरूप हो वह, अर्थात् ज्ञान-दर्शन-चारित्र।** कहो, समझ में आया? नियम से करनेयोग्य प्रयोजनस्वरूप क्या? यह ज्ञान, दर्शन और चारित्र। वर्तमान सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र, वह करनेयोग्य पर्याय है। आहाहा! यह तो नया मार्ग निकाला, ऐसा लोग कहते हैं। यह पर्याय नयी नहीं? वह पुराना है त्रिकाल तत्त्व। कारणनियम है, वह तो अनादि-अनन्त पुराना ऐसा का ऐसा पड़ा है और जो कार्य होता है, वह नया है। सेठ! आहाहा!

श्रोता : धर्म भी अनादि?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्मी वस्तु अनादि की है और धर्म है, वह वर्तमान नये कार्यरूप होता है। त्रिकाली वस्तु है, वह कुछ करनेयोग्य नहीं, वह तो ऐसी की ऐसी है ही। आहाहा!

(कार्यनियम), अर्थात् निश्चय से (निश्चित) जो करनेयोग्य... निश्चित करनेयोग्य.. आहाहा! पर्याय में निश्चित करनेयोग्य... ओहोहो! **प्रयोजनस्वरूप...** वर्तमान कार्यनियम अर्थात् वर्तमान पर्याय का भाव। कार्यनियम अर्थात्? वर्तमान सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप कार्यनियम अर्थात्? वास्तव में करनेयोग्य। आहाहा! **प्रयोजनस्वरूप हो वह, अर्थात् ज्ञान-दर्शन-चारित्र।** लो, वर्तमान सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र। दर्शन और चारित्र, वह वर्तमान कार्यरूप वह पर्याय करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? संसार के कार्य करनेयोग्य नहीं, कर नहीं सकता। एक बात, कर नहीं सकता। अब पुण्य-पाप और मिथ्यात्व

का भाव कर सकता है, परन्तु वह करनेयोग्य नहीं है। समझ में आया? और करनेयोग्य है, वह कर्तव्य यह है। आहाहा!

इन तीनों में से प्रत्येक का स्वरूप कहा जाता है... पहले ज्ञान लिया है न? यहाँ ज्ञान लिया है। तत्त्वार्थसूत्र में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसा लिया है। यहाँ पर्याय का अधिकार है, इसलिए पहले जाने, उसकी प्रतीति, उसकी स्थिरता (करे), इस प्रकार से लिया है। ज्ञान-दर्शन और चारित्र, ऐसा लिया है। **इन तीनों में से...** वे तीन कौन? ज्ञान-दर्शन और चारित्र। अर्थात्? निर्विकल्प ज्ञान, निर्विकल्प दर्शन, निर्विकल्प चारित्र अर्थात् तीनों वीतरागी पर्यायें। वे तीनों करनेयोग्य हैं, क्योंकि प्रयोजनरूप हैं, इसलिए (करनेयोग्य हैं)। आहाहा! इसलिए पहले ज्ञान का स्वरूप-सम्यग्ज्ञान का स्वरूप। वर्तमान कार्यरूप सम्यग्ज्ञान, उसका स्वरूप। वर्तमान ज्ञानरूपी कार्य का स्वरूप क्या?

(१) परद्रव्य का अवलम्बन लिये बिना... आहाहा! जिसे, वीतराग की वाणी का भी अवलम्बन लिये बिना। वीतराग की प्रतिमा और मूर्ति भी परद्रव्य है। आहाहा! उसका अवलम्बन लिये बिना और परद्रव्य के अवलम्बन से होनेवाली ज्ञान की पर्याय का भी अवलम्बन लिये बिना। समझ में आया? यह तो वीतरागमार्ग है, भाई! जिनेश्वर वीतराग परमेश्वर, जिन्हें सौ इन्द्र पूजते हैं, उनका मार्ग, बापू! कोई अलौकिक है। एक अरबपति के घर जाना हो तो पद्धति अनुसार ठाट-बाट होकर जावे या साधारण ऐसे कपड़े पहनकर वहाँ जाए? यह तो तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव के मार्ग में प्रवेश करना, बापू! यह कोई अलौकिक है! आहाहा!

कहते हैं, सम्यग्ज्ञान किसे कहना? कि जो कार्यनियम है, वह मोक्ष के मार्गरूप नियम-ज्ञान है। वह ज्ञान कैसा है? कि **परद्रव्य का अवलम्बन लिये बिना...** सर्वज्ञ परमेश्वर का भी अवलम्बन लिये बिना, उनकी वाणी का भी आश्रय लिये बिना। आहाहा! इस पृष्ठ को पढ़कर हो, उसका भी अवलम्बन लिये बिना। ऐसा है। अरे! भाई! तेरा मार्ग, बापू! तू कौन है, इसकी महत्ता की इसे खबर नहीं है। आहाहा! जिसकी पर्याय को भी अक्षय-अमेय कही है। चारित्रपाहुड़ की गाथा में इस मोक्षमार्ग और सम्यग्ज्ञानपर्याय है न? उसे अमेय-अक्षय, अक्षय-अमेय (कही है)। यह सम्यग्दर्शन है, वह भी अक्षय-अमेय। क्षय न हो और मेय अर्थात् मर्यादा नहीं, ऐसी पर्याय है, बापू! आहाहा!

भगवान का स्वभाव तो त्रिकाल अमेय है। प्रभु आत्मा का स्वभाव त्रिकाल अमेय-मर्यादारहित चीज़ है। मर्यादा क्या? जिसमें अकेला स्वभाव.. स्वभाव.. स्वभाव.. परन्तु उसके अवलम्बन से हुआ सम्यग्ज्ञान भी अक्षय और अमेय है। आहाहा! अमेय समझ में

आता है ? मर्यादा नहीं। मर्यादा क्या ? ओहोहो ! जिसकी वर्तमान कार्य नियमरूपी सम्यग्ज्ञान, वह अक्षय और अमेय है। क्षय न हो। आहाहा ! और उस पर्याय की मर्यादा नहीं। इतनी अपरिमित जिसकी शक्ति है। आहाहा !

वह **परद्रव्य का अवलम्बन लिये बिना निःशेषरूप से अन्तर्मुख योगशक्ति में उपादेय...** आहाहा ! समस्तरूप से अन्तर्मुख। **(उपयोग को सम्पूर्णरूप से अन्तर्मुख करके ग्रहण करनेयोग्य)...** आहाहा ! **ऐसा जो निज परमतत्त्व का परिज्ञान...** आहाहा ! **ऐसा जो निज परमतत्त्व...** उसका ज्ञान **(जानना), सो ज्ञान है।** आहाहा !

इन बहियों का ज्ञान और तुम्हारी पढ़ाई का ज्ञान सब शून्य है, कहते हैं। इस वकालात का, डॉक्टर का, सब एम.ए. की डिग्रियाँ लगावे और एल.एल.बी.। महीने में पाँच हजार का वेतन और दस हजार का वेतन। यहाँ के बनिये का लड़का अमेरिका में जाए और...

श्रोता : ये तो महागम्भीर शब्द है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ... बनिये का लड़का जाए और महीने का दस हजार का वेतन हो। यहाँ उसके माँ-बाप को हो... आहाहा ! मेरे लड़के को महीने का दस हजार का वेतन ! अब अमेरिका के हरिजन, विष्ठा निकालनेवाले (साफ करनेवाले) को दस हजार का वेतन होता है। परन्तु वहाँ क्या है ? वह पायखाना साफ करने को मोटर में बैठकर आता है। ऐई... ! पंकजभाई ! यहाँ का लड़का अमेरिका में जाए और चार-पाँच वर्ष पढ़ा और फिर दस हजार का वेतन (होवे)। आहाहा !

श्रोता : निहाल हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : निहाल हो गये ! धूल भी नहीं। वहाँ के हरिजन... यह वह क्या कहलाता है तुम्हारे ? पायखाना। पायखाना साफ करने मोटर लेकर आवे और महीने में दस हजार का वेतन हो, परन्तु उसमें क्या है... तेरा ? समझ में आया ? और बाहरवाले को ऐसा लगे हमारे लड़के को अमेरिका में दस हजार का वेतन है। ऐसा है, वैसा है। अरे ! क्या है परन्तु अब।

यहाँ तो कहते हैं, तीन लोक का नाथ भगवान ! उसे उसका जो ज्ञान। देखा ? **निज परमतत्त्व...** अर्थात् परमात्मा वीतराग भी नहीं। वीतराग के अवलम्बन से ज्ञान हो, वह ज्ञान नहीं। आहाहा ! गजब बात, भाई ! **निज परमतत्त्व का...** वापस **परिज्ञान...** देखा ? शब्द ऐसा

प्रयोग किया है - परिज्ञान। परमतत्त्व जैसा है, वैसा **परमतत्त्व का परिज्ञान...** जैसा ज्ञायकभाव पूर्ण है, वैसा ही परिणाम—उसका समस्त प्रकार से ज्ञान, पर्याय में आया। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायक जो शुद्धचेतनापरिणामस्वरूप भाव, उसका ज्ञान, उसे परिज्ञान... आहाहा! समस्तरूप से पूरा आत्मा जैसा है वैसा, उसके अनन्त गुण का एकरूप जैसा है वैसा। आहाहा! समस्त प्रकार से पूर्ण ज्ञान की पर्याय में, पूरा भगवान कितना है, उसका यहाँ ज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्ज्ञान उसे कहते हैं, आहाहा! मोक्ष का मार्ग जो सम्यग्ज्ञान, जो कार्यनियम, उसे कहते हैं कि जो निज परमतत्त्व का पूरा ज्ञान, पूरा तत्त्व पूरा है, उसका ज्ञान, ज्ञान की पर्याय में पूरे-पूर्ण का ज्ञान। आहाहा! समझ में आया? ऐसी व्याख्या भगवानजीभाई! अफ्रीका में नहीं मिले और धूल में भी कहीं नहीं मिले। आहाहा! सम्यग्ज्ञान-मोक्ष का मार्ग, कार्यनियम सम्यग्ज्ञान उसे कहते हैं कि परद्रव्य के अवलम्बन बिना त्रिकाली परमात्मस्वरूप भगवान का समस्त ज्ञान, पर्याय में आया, पूरे द्रव्य का ज्ञान, पर्याय में आया। उस ओर का कुछ नहीं और इस ओर का पूरा। समझ में आया? आहाहा! अब इसमें कहाँ.. ? साधारण लोगों को तो पता खाये, ऐसा नहीं। ...भाई! आहाहा!

ज्ञान उसे कहते हैं कि जो मोक्ष के मार्ग का एक अवयव, एक भाग। तीन होकर मोक्ष का मार्ग है न? ज्ञान-दर्शन और चारित्र। यह कार्यनियम है। उसमें ज्ञान-सम्यग्ज्ञान का एक अंश, वह कितना है? कैसा है?-कि परद्रव्य का अवलम्बन बिल्कुल नहीं और स्वद्रव्य का ज्ञान पूरा उसमें (हो जाए)। समझ में आया? आहाहा! पूरी शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम जो नियम वस्तु, कारणनियम का पूरा ज्ञान, परिज्ञान-पूरा ज्ञान उसमें आता है। द्रव्य का कम ज्ञान, वह नहीं; पूरा ज्ञान जिसमें आता है। आहाहा! समझ में आया? उसे ज्ञान कहते हैं। चोपड़े (पुस्तकें) पढ़े और बातें करना आवे, इसलिए ज्ञान; वह ज्ञान नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

अनन्त-अनन्त.... चार बोल लिये हैं। बाकी सब तो अनन्त गुण हैं न? परन्तु यहाँ तो चार बोल खास (लिए हैं)। स्वभाव अनन्त चतुष्टयस्वरूप शुद्धज्ञानचेतनाभाव, उसका-उस निज परमात्मा का, उस **निज परमतत्त्व का परिज्ञान (जानना), सो ज्ञान है।** आहाहा! वस्तु जो पूरी... अनन्त चतुष्टय तो मुख्यरूप से लिए, परन्तु पूरा अनन्त-अनन्त शक्तिवाला तत्त्व, अनन्त गुणस्वभावरूप वस्तु, वह कारणनियम है। उसे ज्ञान की पर्याय में पर के आश्रय बिना अपना पूरा ज्ञान, ज्ञान में होवे, उसे सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! पर्याय में पूरा ज्ञान

केवलज्ञान होने पर भले हो, यह अभी यहाँ नहीं। यहाँ तो जो ज्ञान होता है, उसमें पूरा आत्मा जैसा है, उसका ज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया? उसे ज्ञान कहते हैं और उसे मोक्ष के मार्गरूपी कार्यनियम कहते हैं और उस सुख की दशासहित त्रिकाल वस्तु को पूर्ण जाने, उसके साथ आनन्द प्रगट हो, उसे ज्ञान कार्यनियम कहते हैं। आहाहा! कहो, चिमनभाई! ऐसी बात है। इसमें कुछ चोपड़े जाने और फिर यह पढ़ा। तो हो गया ज्ञान। भाई! वह ज्ञान नहीं है, बापू! आहाहा! समझ में आया?

ग्यारह अंग और बारह अंग पढ़े, तो भी कहते हैं कि स्व का ज्ञान जिसमें पूरा आवे, उसे हम ज्ञान कहते हैं। आहाहा! भले वह ज्ञान की पर्याय द्रव्य में प्रविष्ट नहीं होती। समझ में आया? द्रव्य है, वह ज्ञान और कार्यपर्याय से तो रहित है, कार्यनियम से तो रहित है, तथापि उस कार्यनियम सम्यग्ज्ञान में, वह कारणद्रव्य है, उसका पूरा ज्ञान ख्याल में आ जाता है। आहाहा! गर्व उतर जाए ऐसा है। आहाहा! वह पर्याय भी अक्षय-अमेय है न? चारित्र अधिकार की। आहाहा! पर्याय अक्षय-अमेप। ज्ञान की पर्याय, जिसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं, वह अक्षय है और मर्यादारहित है, क्योंकि उसमें पूरा आत्मा उस ज्ञानपर्याय में ज्ञात हो गया। आहाहा! समझ में आया? समझ में आया—यह विश्राम का वाक्य है। आहाहा! अरे रे! दुनिया के मजदूर, उन्हें ऐसा सुनने को मिलता नहीं। ये पैसे कमाने के मजदूर। आहाहा! बड़े मजदूर हैं। वे मजदूर हैं, वे तो ८ से १२ और २ से ६ (मजदूरी करते हैं)। ऐई! अब तो सब हरामखोरी हो गयी है। जो ८ से १२ आवे, उसमें एक बार दस्त जा आवे, एकाध-दो बार पेशाब कर आवे और कोई न हो तो जरा बीड़ी-बीड़ी पीवे और उसमें एक घण्टा निकाल डाले और ८ से १२ में तीन घण्टे काम करे तथा २ से ६ हो उसमें भी समझने जैसा (काम) करे। काल ऐसा हो गया है। नीतिपने का नियम... आहाहा! तो भी यहाँ कहते हैं कि वह आठ घण्टे काम करे, लो! और यह मजदूर तो सवेरे ६ (बजे) से उठे और रात्रि के ९-१० बजे तक (मजदूरी करे)।

एक बार मैंने कहा था। पालेज के दुकान का माल लेने गये थे। यह (संवत्) ६४-६५ का वर्ष होगा। संवत १९६४-६५ का वर्ष। हमारे गाँव का दुकान मगनलाल सेठ था। यहाँ आया था। वह हमारे यहाँ आड़तिया था। माल लेने गये थे। १९६५ के वर्ष की बात होगी। वह भोजन करने बैठा था, वहाँ हम भी बैठे थे। वहाँ बाहर टोकरी बजी।

श्रोता : टेलीफोन...

पूज्य गुरुदेवश्री : टेलीफोन कहते हैं। सुवाक्य। परन्तु कहा—यह-यह जिसके लिए कमाते हो, वह खाना तो... इसे खाने का चैन नहीं। आत्मा का तो चैन नहीं। आत्मा का तो चैन नहीं परन्तु खाने में भी चैन नहीं। टोकरी बजी बाहर। रसोई में जीमने बैठे थे। पतला शरीर था, रूपवान शरीर था। अरे रे! उसे तो कहा - यहाँ भी चैन नहीं। आहाहा! पूरे दिन होली

२

श्री नियमसार, गाथा-३, श्लोक-१० प्रवचन - १४३
दिनांक - ०४-०१-१९७६

जीव अधिकार। ३ गाथा, फिर से। सूक्ष्म है न! ये सब नये आये हैं न! .... अधिक आ गया है। हमारे शशीभाई आये हैं न!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं?

श्रोता : मेरी भावना थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कहे?

श्रोता : सुनने की बहुत भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कहे?

श्रोता : शशीभाई कलकत्तावाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं भटकने गये थे न?

नियमसार। नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग। निश्चयरत्नत्रय, स्वभावरत्नत्रय है न उसका नाम? स्वभावरत्नत्रय। है पर्याय। अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय जो विकल्प-राग है, वह कोई सच्चा रत्नत्रय नहीं है। स्वभावरत्नत्रय, त्रिकाली ज्ञायकभाव... सवेरे आया था न? परद्रव्य से भिन्न देखो। वह ज्ञायकभाव त्रिकाल स्वभाव, उसके आश्रय से हुई स्वभावरत्नत्रयदशा। है स्वभाव की पर्याय। त्रिकाल स्वभाव के आश्रय से हुई निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय, उस पर्याय को स्वभावरत्नत्रय कहते हैं। समझ में आया? अब यह विशेष कहते हैं।

जो सहज परम-पारिणामिकभाव से स्थित... कौन? **स्वभाव, अनन्त चतुष्टयात्मक शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम...** भगवान आत्मा परम पारिणामिकस्वभाव सहज, जिसे कर्म के निमित्त की अपेक्षा नहीं और निमित्त के अभाव की भी अपेक्षा नहीं। उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक—चार पर्याय भाव हैं। इन पर्यायभावों में, उदय में कर्म के निमित्त की अपेक्षा आती है। उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक में निमित्त के अभाव की अपेक्षा आती है। इसलिए वे निमित्त की अपेक्षावाले भाव (हुए)। वह यह नहीं। जिसमें निमित्त का भाव और निमित्त का

अभाव, ऐसी अपेक्षा नहीं, ऐसा **सहज परम-पारिणामिकभाव से...** परम सहज स्वभावभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, ऐसे भाव में स्थित है। क्या? अभी ध्रुव की बात चलती है। **स्वभाव, अनन्त चतुष्टयात्मक...** पर्याय में स्वभावरत्नत्रय कहना है न? तो अन्तर में स्वभाव अनन्त चतुष्टयस्वरूप ऐसा **शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम...** त्रिकाल है। **सो नियम (कारणनियम) है।** फिर से। कल थे नहीं न? ... गये थे। मैंने भाई को पूछा था, प्रवीणभाई को पूछा था, हिम्मतभाई नहीं? जाए दुकान में... जाए। क्या कहा?

जिसकी पर्याय अर्थात् अवस्था में स्वभावरत्नत्रय निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट होती है, उसका त्रिकाली स्वभाव कौन है? निश्चय निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प ज्ञान, निर्विकल्प चारित्र-स्थिरता, वह समाधि सुखरूपदशा वर्तमान प्रगट होती है। स्वाभाविक रत्नत्रय के परिणाम सुखरूप दशा, उसका कारण कौन? वह तो पर्याय है। उसका कारण त्रिकाली नियम। मोक्षमार्ग, वह वर्तमान कार्यनियम है और त्रिकाली है, वह कारणनियम है। एक पर्याय है और एक द्रव्य है। एक ध्रुव है और एक अनित्य है। एक शाश्वत् है और एक पलटती (दशा) है। समझ में आया? रसिकभाई है न? आये हैं।

जो सहज परम-पारिणामिकभाव... पाँच भाव हैं : उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक और पारिणामिक। इनमें चार भाव हैं, वे पर्यायस्वरूप है और यह एक है, वह द्रव्यस्वरूप है। द्रव्य अर्थात् सहज स्वभावभाव ध्रुव; जिसे आदि नहीं, अन्त नहीं, उत्पत्ति नहीं, नाश नहीं। पर्याय तो उत्पन्न भी होती है और दूसरे क्षण में उसका नाश होता है। चाहे तो केवलज्ञान की पर्याय हो, तो एक समय में उत्पन्न होती है, दूसरे समय में नाश होता है। यह वह नहीं है; यह तो त्रिकाली जिसकी उत्पत्ति भी नहीं और नाश भी नहीं। शाश्वत एकरूप सदृश ध्रुव सामान्य अभेद—ऐसा जो परमपारिणामिकभाव, परमपारिणामिक लिया। देखा? क्योंकि पर्याय को भी पारिणामिकभाव कहा जाता है। आहाहा! परन्तु यहाँ तो परमपारिणामिकभाव, जो ध्येय होकर उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? वीतराग-सर्वज्ञ का मार्ग, भाई! इसे अन्दर तत्त्व मिला नहीं। बहुत सूक्ष्म बातें हैं। आहाहा!

स्वाभाविक सहज, ऐसा सहज। स्वाभाविक ही जिसकी स्थिति है, ऐसा परमपारिणामिकभाव, यह इस परमपारिणामिक में पारिणामिक शब्द है, वह परिणाम को सूचित नहीं करता। समझ में आया? परिणाम है, वे तो उत्पाद-व्ययवाले हैं और यह पारिणामिकभाव है, वह उत्पाद-व्ययरहित निरपेक्ष भाव है। आहाहा!

श्रोता : यह सब समझना पड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्म इस प्रकार से होता है। त्रिकाली स्वभावस्वरूप है, उसका आश्रय लेकर दशा हो, वह धर्म होता है। क्या हो? अरे रे! अनादि से सत्य वस्तु है। सवेरे कहा था न? वस्तु है, ज्ञायकभाव है, ध्रुवभाव है। उसकी अस्ति, उसकी मौजूदगी नहीं स्वीकारकर एक समय की पर्याय या राग या पुण्य का भाव या पुण्य के भाव का फल यह बाहर पैसा और धूल, वे सब हैं - ऐसा इसने माना; यह (आत्मा) है - ऐसा नहीं माना। इससे जिसकी जीवती ज्योति ध्रुव है, उसका इसने अनादर किया, अर्थात् कि वह नहीं, अर्थात् उसकी हिंसा की और यह एक समय की पर्याय तथा राग और राग का फल, पुण्य का फल संयोगी अनुकूल, वह सब चीज़ 'वह है-ऐसा माना, परन्तु त्रिकाली ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव - वह नहीं माना। अर्थात् उसे नहीं माना अर्थात् वह नहीं। नहीं अर्थात् उसका नाम हिंसा। कि यह जीवती-ज्योति है, उसके बदले नहीं (-ऐसा माना)। आहाहा! इसने मिथ्यात्वभाव में जीव हिंसा की। पर की हिंसा तो कौन कर सकता है? पर की दया कौन पाल सकता है? आहाहा! समझ में आया?

परम-पारिणामिकभाव... उसमें उत्पाद-व्यय के परिणाम नहीं लेना। उत्पाद-व्यय है, वह पर्याय है, चाहे तो केवलज्ञान हो और क्षायिकभाव हो। वह भी उत्पन्न होती है और दूसरे समय में (नाश को प्राप्त होती है)। भले ऐसा का ऐसा हो परन्तु दूसरे समय में व्यय होता है। आहाहा! इससे कहते हैं कि परिणाम की अपेक्षारहित। **सहज परम-पारिणामिकभाव...** उसमें रहा हुआ। **स्थित...** है न स्थित? **स्वभाव, अनन्त चतुष्टयात्मक...** स्वभाव अनन्त ज्ञान। ज्ञान जिसका स्वभाव है, उसकी मर्यादा नहीं होती। स्वभाव है,वह अमर्यादित है। आहाहा! ऐसा अनन्त ज्ञानस्वभाव, अनन्त दर्शनस्वभाव त्रिकाल, अनन्त आनन्दस्वभाव त्रिकाल, अनन्त वीर्य-पुरुषार्थ स्वभाव त्रिकाल, ऐसा स्वभाव अनन्त चतुष्टयस्वरूप। **शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम...** यह पूरा होकर शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम पारिणामिकभाव से है। यह शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम, वह पर्याय नहीं है। त्रिकाल (है)। आहाहा! समझ में आया? शुद्धज्ञानचेतना, शुद्धज्ञानचेतना, शुद्धज्ञानचेतना उसके साथ अनन्त गुण इकट्ठे आ गये। शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम अर्थात् पारिणामिकभाव से है। आहाहा! ऐसा सीखना पड़ेगा। वह तो कुछ नहीं था। एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया... करके मिच्छामि दुक्कडम् धर्म हो गया, लो! सामायिक (हो गयी), नहीं? भगवान की भक्ति करके धर्म हो गया। धूल भी धर्म नहीं, सुन न! धर्म की चीज़ कहाँ से उत्पन्न होती है और वह चीज़ कैसी और कितनी है? आहाहा!

स्वभाव अनन्त चतुष्टयस्वरूप परमपारिणामिकभाव में स्थित, ऐसा शुद्धज्ञानचेतना-

परिणाम। परमभाव में स्थित शुद्धज्ञानचेतनास्वभाव, शुद्धज्ञानचेतना चेतनाभाव शुद्धज्ञानचेतना पारिणामिकभाव। आहाहा! **सो नियम (कारणनियम) है।** उसे कारणनियम कहा जाता है। यहाँ ग्रन्थकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव को बताना है तो नियमसार - मोक्ष का मार्ग / निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह कारणनियमसार बतलाना है। कार्यनियमसार, तो कार्यनियमसार बतलाने से पहले कारणनियमसार बतलाते हैं कि जिसके आश्रय से कार्य होता है। समझ में आया?

यह शुद्धज्ञानचेतना वह वर्तमान परिणाम की बात नहीं है। शुद्धज्ञानचेतनास्वरूप पारिणामिकभाव, **सो नियम है।** है न? **सो नियम (कारणनियम) है।** नीचे है। **क्योंकि वह सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूप कार्यनियम का कारण है।** मोक्ष का मार्ग जो निश्चयसम्यग्दर्शन, सत्यदर्शन, सत्यज्ञान। यहाँ ज्ञान लिया है। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र - ऐसा जो कार्यनियम। पर्याय अर्थात् कार्य, पर्याय अर्थात् कार्य और द्रव्य अर्थात् कारण। कान्तिभाई! यह बहुत सूक्ष्म है। रसिकभाई! यह ऐसी बातें हैं। सब ठीक पहुँचे हैं। सुने तो सही कि यह क्या है? आहाहा! वीतरागमार्ग...

कहते हैं कि ये तीन पर्यायें हैं, वह वीतरागी पर्याय है और वह सुखरूप पर्याय है। समझ में आया? वह पर्याय अर्थात् कार्य है। उसका कारण अनन्त आनन्दस्वरूप, अनन्त ज्ञानस्वरूप, अनन्त दर्शनस्वरूप, अनन्त वीर्यस्वरूप, ऐसे परम स्वभावभाव में यह भाव स्थित है। स्वभाव अनन्त चतुष्टय ऐसा शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम, शुद्धज्ञानचेतनारूप परिणाम अर्थात् भाव। वह त्रिकाली परिणाम में रहा हुआ है। आहाहा! उसे कारणनियम कहते हैं, क्योंकि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो नियमसार है, वह मोक्ष का मार्ग सत्य, उसका वह कारण है। समझ में आया? यह मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो नियम, उसका सार कहेंगे। व्यवहार के, भेद के परिहार के लिए (सार कहेंगे)। ऐसा जो मोक्ष का मार्ग, उसका कारण, कषाय की मन्दता, पूर्व पर्याय, वह उसका कारण नहीं। आहाहा! जो मोक्ष का मार्ग... आहाहा! आनन्ददायक मार्ग, निर्विकल्प समाधिरूप मार्ग... आहाहा! उसका कारण पूर्व की पर्याय नहीं, राग की मन्दता नहीं, देव-गुरु-शास्त्र का निमित्त भी नहीं। आहाहा! वह कार्यनियम अर्थात् पर्याय, मोक्ष का मार्ग का कारण त्रिकाली परमस्वभाव में रहा हुआ अनन्त चतुष्टयरूप शुद्धज्ञानचेतनाभाव, शुद्धज्ञानचेतनाभाव, उस कार्य का यह कारण है। उस पर्याय का द्रव्य कारण है। आहाहा! समझ में आया? यह कारणनियम कहा।

अब कार्यनियम। जिस कारण में से कार्य होता है। कारण से कार्य होता है। उस

कार्यनियम की अब बात करते हैं। जिससे होता है, उसकी पहले बात की। अब होता है, वह क्या चीज़ है? आहाहा! सम्यग्ज्ञान... ज्ञान से लिया है न? जब सम्यग्ज्ञान की पर्याय होती है, वह कार्य है। तब उसका कारण जो ज्ञानस्वरूप त्रिकाल भाव, वह कारण है। सम्यग्दर्शन निश्चयपर्याय होती है, वह मोक्ष का मार्ग, वह कार्य है। उसका कारण अन्दर त्रिकाली दृष्टि पड़ी है, सम्यक्श्रद्धास्वरूप त्रिकाल, वह उसका कारण है और समुच्चय कारण लिया। बाकी एक-एक कार्य का एक-एक कारण है। समझ में आया? और सम्यक्चारित्र वर्तमान वीतराग पर्याय, स्थिरता की पर्याय कार्यनियम, पर्यायरूप कार्य का कारण? कि आत्मा के स्वभाव में अकषायस्वभाव, चारित्रस्वभाव त्रिकाल है, वह उसका कारण है। परन्तु यहाँ समुच्चय ले लिया है। यहाँ सम्यग्ज्ञान से लिया है। सम्यग्ज्ञान-दर्शन और चारित्र, ऐसी कार्यपर्याय का कारण त्रिकाली अनन्त चतुष्टय भाव ऐसा शुद्धज्ञानचेतनास्वभाव, वह उसका कारण है। शशीभाई! ऐसी बात है। यह तो कल चला था, हों! आज फिर से लिया है। आज बहुत सब नये हैं न! आहाहा! अरे! ऐसा वीतराग का मार्ग, वह अन्यत्र कहीं है नहीं। समझ में आया? यह जैन दिगम्बर सनातन धर्म के सिवाय यह बात अन्यत्र कहीं नहीं है। भगवानजीभाई! यह श्वेताम्बर और स्थानकवासी... कठिन लगे, बापू! क्या हो? भाई! सत्य की प्रसिद्धि तो यह है। समझ में आया? सन्तों ने एक-एक पंक्ति में दिगम्बर मुनियों ने मार्ग की प्रसिद्धि की है और स्पष्ट व्यक्त प्रगट किया है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी स्थिति का वर्णन वाचक शब्द ही अन्यत्र नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

(कार्यनियम), अर्थात्... पाठ है न? **णियमेण य जं कज्जं** पाठ है न? **णियमेण य जं कज्जं** तीसरी गाथा का पहला पद है। **णियमेण य जं कज्जं** निश्चय से जो करनेयोग्य है, निश्चय से वास्तव में यथार्थरूप से करनेयोग्य है, उसे यहाँ नियमसार कहते हैं, उसे मोक्ष का मार्ग (कहते हैं)। मोक्ष का मार्ग निश्चय से करनेयोग्य है। समझ में आया? पुस्तक है, देवजीभाई? ये वहाँ 'कानातलाब' में प्रमुख है। मैंने कहा देखो! यह समझना पड़ेगा। सब समझकर इसे सब.. किया। कानातलाब में ये प्रमुख है न! आहाहा! किसानों ने इकट्ठे होकर मन्दिर बनाया है।

श्रोता : आत्मा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा है न। किसान, बनिया आत्मा कहाँ है? आत्मा तो आत्मा है। यहाँ तो आत्मा राग और पुण्य तथा दयावाला आत्मा कहाँ है! वह तो रागरहित है। आहाहा!

यह तो भगवान आत्मा तो सहज स्वभावरूप कारणप्रभु, कारण जीव, कारणनियम...

आहाहा! उसे कारणनियम कहो, कारणजीव कहो, कारणपरमात्मा कहो.. आहाहा! उसमें से कार्यपरमात्मा अर्थात् कार्यदशा (प्रगट होती है)। यहाँ अभी मोक्षमार्ग है। ऐसी जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सुखरूप, शान्तिरूप, स्वच्छतारूप, निर्मलरूप, नियमकार्य, उस त्रिकाली कारणस्वभाव में से कार्य होता है। आहाहा!

(कार्यनियम), अर्थात् निश्चय से (निश्चित) जो करनेयोग्य... पहला पद यह है। **णियमेण य जं कज्जं** भगवान कुन्दकुन्द आचार्य का पहला पद यह है। भाई! जो निश्चय से करनेयोग्य हो (तो) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र, वह (करनेयोग्य) है। आहाहा! परवस्तु का कर सके, यह तो तीन काल में नहीं है। शरीर, वाणी, पैसा, लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब का तीन काल में कुछ नहीं कर सकता। यह राग और द्वेष, पुण्य और पाप तथा मिथ्यात्व को करे, वह कहीं कर्तव्य कहलाता है? आहाहा! वह तो अनर्थ की उत्पत्ति का कारण है। उसे कर्तव्य कैसे कहना? आहाहा!

कर्तव्य तो उसे कहते हैं कि जो आनन्ददायक हो, वह तो सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र है। ज्ञान से लिया है न! सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र वह कर्तव्य है, वह करनेयोग्य है, वह सुखरूप है, वह हितरूप है। आहाहा! वह आनन्ददायक करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? हीरालालजी! ठीक सब आ गये हैं। यह कल पढ़ा गया था, हों! फिर से पढ़ा जाता है। कल सवेरे पढ़ा था। तुम सबके लिए फिर से लिया। यहाँ तो फिर से ले तो अन्दर से कुछ नया ही आता है। आहाहा!

कहते हैं, प्रभु! तुझे सुख के पंथ में जाना हो... शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति के पन्थ में जाना हो तो उस कर्तव्य में वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र है। आत्मा का कर्तव्य तो वह है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय, वह भी इसका कर्तव्य नहीं। आहाहा! ऐसा है। बहुत डाला है। दूसरा डाला। वह अमरचन्द (ऐसा कहता है) दूसरे का करे, वह ऐसे हो, दूसरे का करे ऐसे... गुरु, शिष्य को गुरु न बनावे तो वह गुरु में कमी है। अरे! भगवान! तू क्या करता है? और शिष्य यदि गुरु न बने तो शिष्य में कमी है। अब यह तो ठीक भले। परन्तु गुरु यदि शिष्य को गुरु न बनावे तो गुरु में कमी है। आहाहा! अरे! प्रभु! क्या कहता है तू? भाई! कौन किसे बनावे? आहाहा! ऐसी बात बापू! जैनधर्म के नाम से २५०० वर्ष भगवान के हुए, उनके नाम से ऐसा वीरायतन करके ऐसे सब गप्प मारते हैं। अरे रे! लोग इकट्ठे होकर करोड़ों रुपये खर्च करेंगे। वह अरबपति इकट्ठा हुआ, दुर्लभजीभाई का लड़का छेलशंकर। छेलशंकर है न दुर्लभजीभाई का? उसके पास ६०-७० करोड़ रुपये हैं। छोटे के पास चालीस करोड़। एक

बार घर ले गये थे। प्रेम तो है न और कुछ महिमा भी सही कि महाराज के चरण होवे तो... लड़का १८ वर्ष का हुआ है। उसके छोटे भाई के पास ४०-५० करोड़ होंगे। इसके पास ६०-७० करोड़। दोनों भाईयों के बीच सौ (करोड़) - अरब कहलाते हैं। यह उसमें मिला है। स्थानकवासी है न? स्थानकवासी है, भाई! जयपुर का? छेलशंकर स्थानकवासी का है। यह अमृतचन्द्र स्थानकवासी.. प्रभु! मार्ग ही... बापू! आहाहा! किसे करे, कौन करे? भाई! ऐसा कहे (कि) पारसमणि लोहे को सोना बनावे। परन्तु पारसमणि, पारसमणि न बनावे। इसी प्रकार गुरु शिष्य को अपने जैसा बनावे तो वह गुरु कहलाये। अरे! ऐसी बात कहाँ है, बापू! कौन बनावे? भाई! आहाहा!

बन्ध अधिकार में नहीं आया! भाई! कि मैं दूसरे को मोक्ष कराऊँ, प्रभु! यह क्या है? उसके वीतरागभाव बिना उसे मोक्ष होगा? तू उसे वीतरागभाव करा देगा? आता है न? वह सत्य है। स्वयं निश्चय गुरु हो, तब निमित्त के गुरु को उपचार दिया जाता है, ऐसी बात है। निहालभाई में ये शब्द हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, वह कार्यनियम है, उसका कारण कौन? कि त्रिकाली वस्तु। उसका कारण गुरु मिले और सुनने को मिला, इसलिए उसका वह कारण होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह **(कार्यनियम), अर्थात् निश्चय से (निश्चित) जो करनेयोग्य...** आहाहा! उसका शब्द **प्रयोजनस्वरूप...** दो शब्द हैं, हों! संस्कृत में हैं, संस्कृत में हैं। देखो! है? **'नियमेन च निश्चयेन यत्कार्यं प्रयोजनस्वरूपं'** संस्कृत में है। अर्थात्? सम्यक् निश्चयज्ञान, दर्शन और चारित्र। यह निश्चय से करनेयोग्य है। पर्याय है न? ध्रुव को क्या करना? ध्रुव तो त्रिकाल है। आहाहा! यह पर्याय है, वह करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? क्यों?— कि वह प्रयोजनस्वरूप है। आहाहा! क्यों... क्या हुआ? कितने बजे? बजे कितने? ऐसा है। यहाँ तो कहते हैं दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन हैं। आहाहा!

क्या कहते हैं? भाई! परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं कि जो कार्यनियम पर्याय का जो है, वह निश्चय अर्थात् सत्यज्ञान, सत्यदर्शन और सत्यचारित्र, वह निर्मल अरागी-वीतरागी कषायरहित की परिणति है। वह परिणति अर्थात् पर्याय है। वह पर्याय कर्तव्य / करनेयोग्य है। रसिकभाई! ये लड़के-बड़के को सीख देना, पढ़ाना यह करनेयोग्य है, इसका निषेध करते हैं। कर नहीं सकता, लो! रामजीभाई ने सुमनभाई को शिक्षा (देकर) बड़ा किया है न? आठ हजार का वेतन मुफ्त का हुआ? लोग ऐसा कहते हैं। कौन किसे करे? यह रसिकभाई का बड़ा लड़का वहाँ कहीं कितने पैसे लेकर

आया है ? लॉटरी में चार लाख रुपये। लॉटरी-लॉटरी थी। चार लाख कोई कहता था। हमारे चन्दुभाई कहे। अपने को कुछ खबर नहीं होती। कितने लाख ? पचास हजार डॉलर। यह कोई कहता था। अपने को कोई कहे, वह सुना हो। अपने को कुछ खबर है ? पचास हजार डॉलर, ठीक। उसके चार लाख लॉटरी में आये। फिर यहाँ एक हजार भेजे थे। वह सब लॉटरी-बॉटरी हैरान करने के...

श्रोता : फिर से दूसरी लॉटरी लगे, इसके लिए पूछते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी... वह तो कोई पूर्व का पुण्य हो, उस प्रकार का दिखाव दिखता है... दिखता है... दिखता है... धूल में है न। कर्तव्य तो यह है। आहाहा!

भाई! तुझे कर्तव्य और प्रयोजन हो, प्रयोजन जोड़ने का कार्य हो तो कर्तव्य यह एक है। सम्यक् सत्यज्ञान। वह किसे कहना, कहेंगे। सत्यदर्शन, सम्यक् और सत्चारित्र, ये तीनों करनेयोग्य प्रयोजनरूप हैं। आहाहा! समझ में आया ? लड़के का विवाह करना, ठिकाने डालना। लड़की बड़ी बीस-बीस वर्ष की सांड जैसी हो, उसे ठिकाने लगावे तो फिर... ऐसा यहाँ कुछ है नहीं, कहते हैं। ....आये हैं। कि तीन-चार लड़कियाँ, चार लड़के, एक बीस की, एक पच्चीस की, एक अट्ठाईस की, एक तीस की। ये लोग बहुत बातें करे, ऐसी पढ़ाई है और ऐसा अमुक। ठिकाने करना है, वह अपना-बाप का कर्तव्य है न! आहाहा! भाई! तेरा प्रयोजन और कर्तव्य हो तो यह है। है ? आहाहा! भाई! तेरा नाथ अन्दर पूर्ण विराजता है। उसे कारण बनाकर कार्य का प्रयोजन तो तुझे करनेयोग्य तो यह है। आहाहा! ....भाई! आहाहा!

(कार्यनियम), अर्थात् निश्चय से... वास्तव में **निश्चय से जो करनेयोग्य...** निश्चय से करनेयोग्य... आहाहा! ऐसा **प्रयोजनस्वरूप...** अपने को जुड़ान होकर करनेयोग्य तो यह पर्याय है। आहाहा! वह **ज्ञान-दर्शन-चारित्र।** यह स्पष्टीकरण किया कि क्या करनेयोग्य और प्रयोजनरूप ? ज्ञान-दर्शन और चारित्रपर्याय। अब इन **तीनों में से प्रत्येक का स्वरूप कहा जाता है...** ज्ञान किसे कहना ? दर्शन किसे कहना ? चारित्र किसे कहना ? **इन तीनों में से प्रत्येक का स्वरूप कहा जाता है...** तीन अर्थात् सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र। **तीनों में से प्रत्येक का स्वरूप कहा जाता है...**

(१) परद्रव्य का अवलम्बन लिये बिना... आहाहा! सम्यग्ज्ञान किसे कहना ? **परद्रव्य का अवलम्बन लिये बिना...** वीतराग की वाणी के भी अवलम्बन बिना। परद्रव्य है न ? आहाहा! परद्रव्य अर्थात् यह शास्त्र और शास्त्र की वाणी के अवलम्बन बिना। क्योंकि वह परद्रव्य है। आहाहा! **निःशेषरूप...** सम्पूर्णपने **योगशक्ति...** अर्थात् उपयोग में से अन्तर्मुख

होकर। आहाहा! **(उपयोग को सम्पूर्णरूप से अन्तर्मुख...)** सम्पूर्ण, यह नि:शेष में गया। यह अन्तर्मुख हुआ और उपयोग को, योगशक्ति में से लिया। उपयोगरूपी पूर्ण-शक्ति है, उसमें से **योगशक्ति में उपादेय...** आहाहा! उपयोग को, वर्तमान ज्ञान-दर्शन के परिणाम को, **(सम्पूर्णरूप से अन्तर्मुख करके...)** उपादेयरूप से **(ग्रहण करनेयोग्य) ऐसा जो निज परमतत्त्व...** आहाहा! शास्त्र पढ़े तो ज्ञान होवे, सुने तो ज्ञान होवे, यह कोई बात नहीं ली। भाई! उसे सम्यग्ज्ञान नहीं कहा जाता। आहाहा!

सम्यग्ज्ञान तो उसे कहते हैं कि जो सम्पूर्णरूप से उपयोग को अन्तर्मुख करके ग्रहणयोग्य-प्रगट करनेयोग्य, **ऐसा जो निज परमतत्त्व... (ग्रहण करनेयोग्य) ऐसा जो निज परमतत्त्व...** निज परम तत्त्व। उसका परिज्ञान। यहाँ तक कल आया था। अर्थात्? पूर्ण स्वरूप भगवान में से ग्रहण करनेयोग्य-उपादेय करनेयोग्य सम्यग्ज्ञान, परिज्ञान अर्थात्? - कि जिस ज्ञान की पर्याय में पूर्ण भगवान परमतत्त्व का ज्ञान होता है। परमतत्त्व को पर्याय स्पर्शे बिना परिणाम में पूर्ण का ज्ञान होता है। क्या कहा यह?

फिर से, भगवान जो परमतत्त्व है, ज्ञायक, परन्तु जिसे कारणनियम कहा, जिसे कारणपरमात्मा कहते हैं, जिसे कारणजीव कहते हैं, जिसे परमतत्त्व कहते हैं; उसका यहाँ ज्ञान अर्थात् ज्ञान की पर्याय में परिज्ञान। उस ज्ञान में पूरी वस्तु है, उसका ज्ञान होता है। पर्याय एक समय की, वस्तु त्रिकाल। आहाहा! जिस ज्ञान की पर्याय में त्रिकाल ज्ञान हो, त्रिकाली का ज्ञान हो, उस ज्ञान को परिज्ञान कहने में आता है। आहाहा! सेठ! पुस्तक है न? आहाहा! ...यह कानपुर में पढ़ते हैं। भाई क्या कहलाये? अमरचन्द। अमरचन्द और सब इकट्ठे होकर पढ़ते हैं। आहाहा! अरे! भाई! यह क्या चीज़ है? आहाहा!

उपयोग अन्तर्मुख में करके और अन्तरतत्त्व जो ग्रहण करनेयोग्य है, जाननेयोग्य है, उसे ज्ञान की पर्याय में परिज्ञान। जो पूर्णस्वरूप है, उसका पर्याय में ज्ञान हो गया। आहाहा! दूसरी भाषा में कहें तो आत्मज्ञान (हुआ)। समझ में आया? ज्ञान की पर्याय में आत्मा का ज्ञान। समझ में आया? शास्त्रज्ञान कम हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! जो ज्ञान की पर्याय... कार्यनियम है न? तो कार्य अर्थात् पर्याय। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र, वह पर्याय। पर्याय अर्थात् अवस्था। अवस्था अर्थात् हालत। हालत अर्थात् दशा। उस ज्ञान में परि अर्थात् पूर्ण आत्मा आना चाहिए। उस ज्ञान में परि अर्थात् समस्त-पूरा आत्मा ज्ञान में हो। आवे अर्थात्? पर्याय में द्रव्य नहीं आता। आत्मा द्रव्य है, वह पर्याय में नहीं आता परन्तु द्रव्य का पूरा ज्ञान, पर्याय में आता है। आहाहा! चिमनभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

जिसे आत्मज्ञान से बात उठायी। आहाहा! अर्थात्? सम्यग्ज्ञान जो सुखरूप ज्ञान, वह मोक्ष का मार्ग जो ज्ञान, मोक्षमार्ग का जो यह एक अवयव, वह ज्ञान उसे कहते हैं कि जिस ज्ञान में पूर्णानन्द का नाथ, प्रभु! अनन्त-अनन्त अपरिमित शक्ति का सागर, उस पर्याय में उसका ज्ञान हो। पर्याय, पर्याय में रहकर द्रव्य का पूरा ज्ञान करे, उसे सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! डाह्या तारुं डाह्यपण तब (कहलाये)... एक बार नहीं कहा था? बांकानेर के थे डाह्यभाई धोलशा। हमने नाटक देखा था। संवत् १९६४ के वर्ष की बात है।

एक साधु आया था न! हम तो स्थानकवासी थे। भरुच का स्टेशन है, उसके सामने धर्मशाला में मिले। गाँव में खोजे। फिर समय था और (साथ में) हमारे फावाभाई थे। फावाभाई हैं न? इस मनहर का पिता। फावाभाई था। दोनों गये थे। निवृत्त (होने के बाद हुआ), चलो, भाई! नाटक देखने जाएँ। डाह्याभाई धोलशा का नाटक था। मीराबाई का था परन्तु उस समय तो वैराग्य के बहुत नाटक थे। अभी तो इस फिल्म में गजब कर डाला है। आहाहा! एक स्त्री उघाड़ी खड़ी हो, चुम्बन करे और ऐसे हाथ डाले। अर..र..र! यह सज्जनता को शोभा देता है? ऐसे अनीति के लक्षण इतने बढ़ गये हैं। उस समय तो वैराग्य... वैराग्य.. उसमें वह डाह्याभाई थे। तब बारह आने की टिकिट ली थी, उस दिन, हों! वे डाह्याभाई जब मरने लगे... इतने पैसे। सप्ताह में तीन (नाटक) करते थे और एक-एक सप्ताह में पन्द्रह सौ रुपये एक-एक... लेते थे। इतने लोग, तब, हों! १९६४ के वर्ष की बात है।

वे जब मरने लगे तब ऐसा बोले, ऐ डाह्या! तेरी चतुराई जब कहें कि तू शान्ति से देह को छोड़े तो। वे नाटक-बाटक सब धूल करके तूने बताये। सप्ताह में तीन बार। तब एक रात के पन्द्रह सौ लेते थे। पन्द्रह सौ रुपये एक रात के। इतने लोग इकट्ठे हों। हम देखने गये थे, पुस्तक ली थी। मीराबाई का नाटक देखा तो वैराग्य की धुन उठे। आवे तो नींद न आवे। ऐसी वह शैली थी। मीराबाई उसके पति को कहती है 'साधुडाने संगे हुं तो घेली थई..' साधु के संग मैं तो पागल हो गयी। घेली समझते हो? पागल। अब मैं रानीरूप से नहीं हूँ। आहाहा! वैराग्य में ऐसा सब। भले बेचारे... ऐसी शैली थी। वे डाह्याभाई मरते समय बोले थे। वांकानेर के थे। तुम्हारे वैष्णव थे, डाह्या तेरी चतुराई तब कहें, भाई! तू समाधि-शान्ति से मरण होवे तो। बाकी चतुराई-वतुराई दुनिया की। लाखों-करोड़ों पैसे बहुत किये। आहाहा! १९६४ के वर्ष में इतनी आमदनी कैसी! आठ दिन में साढ़े चार हजार। ६४ के वर्ष में। यह तो कितने वर्ष हुए? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि डाह्या (चतुर) तेरा सम्यग्ज्ञान तब कहते हैं कि उस ज्ञान में भगवान

पूरा ज्ञात हो, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। आहाहा! हरिभाई! तब तेरी चतुराई-सम्यग्ज्ञान कहते हैं। आहाहा! इतनी पुस्तक लिखना आता है, ऐसा नामा लिखना आता है। मोती जैसे-दाने जैसे लिखते हैं न? नामा लिखे वह। धूल में क्या दाने (जैसे अक्षर) कौन (लिखे)? वह तो जड़ की अवस्था और बड़ा क्षयोपशम हो। यहाँ तो कहते हैं कि तेरी सम्यग्ज्ञानदशा, चतुराई उसे कहते हैं... आहाहा! कि जिस ज्ञान की पर्याय में आत्मा ज्ञान में आवे। ज्ञान में आवे, हों! आत्मा पर्याय में न आवे। आहाहा! दूसरी भाषा से आत्मज्ञान शब्द प्रयोग किया है। भाई! आत्मज्ञान। परिज्ञान का अर्थ आत्मज्ञान। भाई! आहाहा! क्या सन्तों की वाणी! संक्षिप्त शब्दों में कितना समाहित कर दिया है! आहाहा! भाई!

परद्रव्य का अवलम्बन लिये बिना... अब स्वद्रव्य का अवलम्बन लेना है न! बाकी रखे बिना अन्तर्मुख योगशक्ति में से ग्रहण **ऐसा जो निज परमतत्त्व का परिज्ञान (जानना), सो ज्ञान है।** उसे ज्ञान कहा जाता है। वह ज्ञान, मोक्ष के कारणरूप कार्य कहने में आता है। मोक्ष के कारणरूप कार्य कहने में आता है। कार्यनियम है न? आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बातें हैं, भाई! सब एम.ए. के पढ़े हुए और डॉक्टर और एल.एल.बी., वह कोई ज्ञान नहीं, कहते हैं। अरे! शास्त्र का ग्यारह अंग का ज्ञान पढ़ा हो, वह भी ज्ञान नहीं है। आहाहा! सभा को रंजन करना आता हो, वह ज्ञान नहीं है, बापू! आहाहा!

ज्ञान तो परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव, गणधर और इन्द्र, एकावतारी, एक भव में मोक्ष जानेवालों की सभा में ऐसा फरमाते थे, वह सन्त फरमाते हैं। आहाहा! भाई! कार्यनियम, कार्यज्ञान; कारणज्ञान त्रिकाल। उस कारण का पर्याय में पूरा ज्ञान आवे, उसे हम ज्ञान कहते हैं। आहाहा! डाह्याभाई! आहाहा! ऐसी बात कहाँ है, बापू! है? आहाहा! पक्षपात छोड़कर विचार करे। आहाहा! समझ में आया? है कार्यनियम, परन्तु वह मोक्ष का कारण है और उसका कारण द्रव्य है। यह आता है न, भाई! बहुत जगह आता है। मोक्ष के कारण का कारण, यह आता है। मोक्ष का कारण उपयोग और उसका कारण त्रिकाल। आहाहा!

भगवान पूरा पूर्णानन्द का नाथ, अनन्त अपरिमित शक्तियों का सागर, जिसके ज्ञान में पूरा ज्ञान, पूरे का ज्ञान पर्याय में आवे। समझ में आया? उसे सम्यग्ज्ञान, मोक्ष के कारणरूप और वर्तमान कार्यरूप सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! अब यहाँ तो थोड़ा बहुत पढ़े और वाँचन करे, वहाँ ऐसा हो जाए, ओहोहो! परन्तु अरे! सुन न, बापू! भाई! आहाहा! और व्याख्यान-व्याख्यान कहना कहीं आवे तो मानो ज्ञान हो गया। अरे भाई! वह ज्ञान नहीं, बापू! ज्ञान में भगवान आना चाहिए, ऐसा कहते हैं। ज्ञान में भगवान की प्रतिष्ठा आनी चाहिए। आहाहा! भगवान ऐसा भगवान कारणपरमात्मा, कारणजीव, परमपारिणामिकस्वभाव में स्थित

पूर्ण स्वरूप, उस ज्ञान की पर्याय में उसका ज्ञेय होकर ज्ञान आना चाहिए। आहाहा! यह सब कारखाने निकालते हैं न? होशियार मनुष्य। ज्योति गया? बस, कारखाना चलाने। कारखाना है कहीं। तुझे (सम्पादक को) कारखाना कहता था। ....उसका मामा पैसेवाला है, वहाँ। ....यह कारखाना समझने जैसा है। आहाहा! यह करनेयोग्य है, कहा, बापू!

त्रिकाली कारण परमस्वभावभाव ऐसा पारिणामिकभाव, उसमें शुद्ध चेतनाज्ञानरूप त्रिकाल भाव पड़ा है। आहाहा! ज्ञान की पर्याय में उसका ज्ञान होना... ओहोहो! एक समय की पर्याय और त्रिकाली का ज्ञान तथा वह परिणाम, परिणामी को स्पर्श किये बिना, मात्र सन्मुख हुआ। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकभाव कारणपरमात्मा ध्रुवस्वरूप, उसकी पर्याय सन्मुख हुई तो उस पर्याय में उसका पूर्ण ज्ञान आया। **अवलम्बन लिए बिना...** कहा न? **परद्रव्य का अवलम्बन लिए बिना...** आहाहा! अर्थात् परद्रव्य की सन्मुखता छोड़कर और स्वद्रव्य की सन्मुखता करके। आहाहा! समझ में आया? उसे परिज्ञान, उसे कार्यनियम, उसे कार्यज्ञान और उसे कार्यज्ञान अभी (कहते हैं), हों! वह कार्य त्रिकाली कारण और केवलज्ञान कार्य वह और बाद में। समझ में आया? इतना तो कल आया था। नहीं? कल तो यहाँ तक आया था। आज फिर से इतना आया।

अब श्रद्धा। अब सम्यग्दर्शन। पहले ज्ञान इसमें लिया। उसमें पहले सम्यग्दर्शन (लिया है)। **भगवान परमात्मा के...** आहाहा! भगवान परमात्मा स्वयं, हों! उसके **सुखाभिलाषी...** परमात्मा भगवान परमात्मा, कारणपरमात्मा, स्वयं ध्रुवस्वरूप नित्यानन्द, नित्यानन्द ऐसा जो भगवान परमात्मा के सुख का अभिलाषी। भगवान परमात्मा के आनन्द का अभिलाषी। आहाहा! समझ में आया? स्त्री का अभिलाषी, सुख का और पैसे का अभिलाषी और इन्द्रपद का अभिलाषी, राजा का और धूल का, वह सब छोड़, बापू! आहाहा! त्रिलोकनाथ, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का भरचक प्याला अन्दर भरा है। ऐसा जो भगवान परमात्मा, उसके सुख का अभिलाषी। आहाहा! भाषा तो देखो! जिसकी बुद्धि परसुख में से उड़ गयी है। इन्द्र के इन्द्रासन जो... यहाँ तो स्त्री दो दिन न खाये तो शरीर ऐं.. ऐं... हो जाए और वह तो हजारों वर्ष में आहार ले। कण्ठ में से झरे, ऐसे इन्द्राणी के सुख भी जिसे जहर जैसे दिखते हैं... आहाहा! और परम भगवान आत्मा के सुख का अभिलाषी। आहाहा! समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन की व्याख्या चलती है। आहाहा!

भगवान परमात्मा के सुखाभिलाषी जीव को शुद्ध अन्तःतत्व के विलास का... शुद्ध अन्तःतत्त्व जो, उसके **विलास=क्रीड़ा, आनन्द, मौज** का **जन्मभूमिस्थान...** उसकी उत्पत्ति

का मूल स्थान **जो निज शुद्ध जीवास्तिकाय,...** निज शुद्ध जीव अस्तिकाय। भाषा ऐसी डाली है, देखो? अकेला जीव, ऐसा नहीं लिया। यहाँ तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने असंख्य प्रदेशी जीव देखा है। वह इसमें डाला है। इसलिए जीवास्तिकाय शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! समझ में आया? श्रीमद् ने भी वहाँ यह शब्द प्रयोग किया है। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन'... वह तो चैतन्यघन में असंख्य प्रदेश समाहित किये हैं क्योंकि सर्वज्ञ ने ही यह कहा है, देखा है। अन्यत्र यह है नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

भगवान परमात्मा के सुखाभिलाषी जीव को शुद्ध अन्तःतत्व के विलास का जन्मभूमिस्थान जो निज शुद्ध जीवास्तिकाय,... निज शुद्ध जीव अस्तिकाय। असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का धाम वह जीवास्तिकाय। क्षेत्रपना बतलाया। असंख्य प्रदेश उसका देश है। सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र ऐसा कहीं नहीं है। जीव के असंख्य प्रदेश (किसी ने कहे नहीं हैं)। वेदान्त या अन्यत्र कहीं ऐसा नहीं है। वेदान्त तो सर्व व्यापक कहता है। आहाहा! अस्तिकाय और अस्तिकाय ऐसा शब्द नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान परमात्मा के सुख का अभिलाषी, ऐसे जीव को-ऐसे जीव को। जिसे अभी इन्द्र का सुख चाहिए है, भोग के सुख चाहिए है, पुण्य करना है, पुण्य से चक्रवर्ती पद मिले, ऐसे जीव को यह वस्तु नहीं हो सकती। आहाहा! समझ में आया? देवजीभाई! आहाहा! **निज शुद्ध जीवास्तिकाय,..** वापस भाषा। **शुद्ध जीवास्तिकाय,..** अकेला जीवास्तिकाय नहीं, अकेला जीव नहीं। जीव अस्ति, असंख्य प्रदेशी और शुद्ध। आहाहा! **उससे उत्पन्न होनेवाला...** ऐसे शुद्ध जीवास्तिकाय से उत्पन्न होनेवाला **जो परम श्रद्धान,...** आहाहा! त्रिकाली शुद्ध जीवास्तिकाय, उससे उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दर्शन, आहाहा! सम्यग्दर्शन कार्य है और कारण शुद्ध जीवास्तिकाय तत्त्व है। आहाहा! लो। यह गाथा आयी। कहाँ गये? ऐई! शशीभाई! आहाहा!

जो परम श्रद्धान,... उस परम सुख का, आत्मा के सुख का अभिलाषी, भगवान परमात्मतत्त्व के आनन्द का अभिलाषी। दुनिया, दुनिया जाने, उसके घर रही। दुनिया जाने तो मैं ज्ञानी हूँ, ऐसा कुछ है वहाँ?

श्रोता : दुनिया को.... उसमें खबर क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया को खबर पड़े, न पड़े, उसमें यहाँ क्या है? आहाहा!

श्रोता : .....उसमें से न्याल हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : न्याल हो। तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ साक्षात् परमात्मा, मणिरत्न के दीपक से उनकी पूजायें अनन्त बार कीं। प्रभु! वह तो शुभराग है। आहाहा! भगवान स्वयं कहते हैं कि मेरी ओर के लक्ष्य से तुझे राग होगा, भगवान! तेरे सन्मुख देख, तुझे तेरा आत्मा वहाँ ज्ञात होगा। आहाहा! ऐसी परम श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते हैं। देखो! यह सम्यग्दर्शन

३ श्री नियमसार, गाथा-३, प्रवचन - १४४
दिनांक - ०५-०१-१९७६

यह नियमसार, जीव अधिकार की ३ गाथा। फिर से (लेते हैं)। ज्ञान। ज्ञान, दर्शन और चारित्र निश्चय है, वह मोक्ष का मार्ग है। वह यह नियमसार है। अब, इसे सम्यग्ज्ञान जो कहा, उसका—सम्यग्ज्ञान का क्या स्वरूप है? तो ऐसा कहा कि **निज परमतत्त्व का परिज्ञान, सो ज्ञान है।** इसका अर्थ यह कि परिपूर्ण वस्तु जो है, ऐसा आत्मा, उस आत्मा का ज्ञान, वह ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? एक समय में परिपूर्ण वस्तु है, एक पर्यायरहित, उस पर्याय में उसका ज्ञान होना, पूरा आत्मा जो पूर्ण है, उसका ज्ञान की पर्याय में ज्ञान होना, उसका नाम सम्यग्ज्ञान है। यह तो आ गया है। अब सम्यग्दर्शन। वह भी, परिपूर्ण वस्तु जो पूरी अखण्ड है, उसकी श्रद्धा (होना), उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? क्योंकि उसके विश्वास में, प्रतीति में परिपूर्ण है – ऐसा जब तक न आवे, तब तक उसे सम्यग्दर्शन सत्य नहीं होता।

इसलिए कहा कि **भगवान परमात्मा के सुखाभिलाषी...** अर्थात् जिसे अतीन्द्रिय आनन्द की भावना है, जिसे अतीन्द्रिय आनन्द की अभिलाषा है, उस **सुखाभिलाषी जीव को शुद्ध अन्तःतत्व...** परिपूर्ण वस्तु। उसके **विलास का जन्मभूमिस्थान...** उसके आनन्द का जन्मभूमि स्थान **निज शुद्ध जीवास्तिकाय,...** यह परिपूर्ण वस्तु ली। ज्ञान में भी आत्मज्ञान अर्थात् परिपूर्ण आत्मा का ज्ञान और उसमें एकाग्र होने पर शक्ति में से पर्याय में व्यक्तता प्रगट होती है। इसलिए यह मुद्दे की रकम है। समझ में आया?

निज शुद्ध जीवास्तिकाय, उससे उत्पन्न होनेवाला... वस्तु जो जीव है, काय—असंख्य प्रदेशी और अनन्त गुण की परिपूर्ण वस्तु... आहाहा! वह आत्मज्ञान कहो तो परिपूर्ण का ज्ञान, सम्यग्दर्शन कहो तो परिपूर्ण की श्रद्धा... आहाहा! **जो परम श्रद्धान, वही दर्शन है।** आहाहा! यह अहिंसा। लोग अहिंसा कहते हैं न? भगवान की अहिंसा। गाँधीजी को अहिंसा में मिलाते हैं। आज पुस्तक आयी है, उसमें मिलाया है। एक 'माणेकचन्द कटारिया' है न कोई! महावीर की अहिंसा वह है कि जो आत्मा परिपूर्ण अखण्ड, अभेद चीज़ है, उसकी

अन्तर प्रतीति और विश्वास आना, तब उसे वह सम्यग्दर्शनरूपी अहिंसा प्रगट होती है। मिथ्यात्वभाव है, वह हिंसा है। पर को मारना, न मारना, उसका यहाँ प्रश्न है ही नहीं। पर को मार सके या जिला सके - ऐसा कोई आत्मा है ही नहीं। वह अपने ही अपने में परिपूर्ण को माने नहीं और एक समय की पर्याय को आत्मा माने तो वह मिथ्यात्वरूपी जीव की हिंसा है, क्योंकि परिपूर्ण भगवान महात्म-स्वरूप पूरा, उसकी इसे स्वीकृति, प्रतीति उसके सन्मुख होकर नहीं हुई और पर्याय के सन्मुख होकर, 'पर्याय, वह मैं'- (ऐसा माना), उसे हिंसा कहते हैं। समझ में आया? भाई! महावीर की अहिंसा और गाँधीजी की लौकिक.... विनोबा और बहुत नाम डाले हैं। कबीर और अमुक और अमुक। वह लौकिक लाईन अलग है।

यह तो अलौकिक वस्तु ही ऐसी है कि अखण्ड पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्ति... जिसे शान्ति और सुख चाहिए हो, उसे जहाँ शान्ति और सुख भरपूर पदार्थ है, उसको उसे जानना चाहिए और श्रद्धा करना चाहिए। समझ में आया? कहो, शान्तिभाई! जिसे आत्मा में सुधार करना हो, पवित्रता प्रगट करनी हो तो जहाँ पवित्रता परिपूर्ण है, उसका ज्ञान और प्रतीति पहले श्रद्धा में लेनी पड़ेगी। समझ में आया? ऐसी बात है।

अखण्ड अभेद चीज़ पूर्ण है, उसका ज्ञान और विश्वास, वह सत्य है, इससे वह सत्य ज्ञान है और वह सत्य श्रद्धा अर्थात् सम्यग्दर्शन है। डाह्याभाई! आहाहा! उसी और उसी को पर्याय जितना मानना, राग जितना मानना, वही मिथ्यात्व है, वही हिंसा है और वही सत्य से विरुद्ध का असत्य है। समझ में आया? सत्य एक समय में परिपूर्ण भण्डार-खजाना है कि जिसमें से केवलज्ञान की पर्याय निकले तो भी उसकी परिपूर्णता में कमी-खण्ड न हो। आहाहा! यह तो कोई वस्तु है! भाई! वस्तु का स्वभाव ऐसा है। इसे अन्दर में-जँचना चाहिए। समझ में आया? ऐसा (समयसार की) ६ वीं गाथा में भाषा ऐसी की - ज्ञायक, जिसमें प्रमत्त-अप्रमत्त पर्याय नहीं। गाथा ११ में ऐसा कहा, भूतार्थ-सत्यार्थ वस्तु, सत्यार्थ त्रिकाल, वह सम्यग्दर्शन का आश्रय, उससे सम्यग्दर्शन होता है। इसका अर्थ (कि) पूर्ण सत्य है, उसकी प्रतीति... समझ में आया? और पूर्ण स्वरूप है। अरे! उसका विश्वास और यह ज्ञान क्या चीज़ है? भाई! समझ में आया?

पूर्ण स्वरूप भगवान आत्मा का ज्ञान। वह तो परिपूर्ण जिसकी केवलज्ञान की पर्यायें भी जिसमें अनन्त शक्ति में पड़ी है। ऐसे दर्शन की शक्ति, ऐसे चारित्र की शक्ति, ऐसी स्वच्छता की शक्ति, वीर्यता की, कर्ता की, कर्म की... ओहोहो! जिसके गुण तो आकाश के

प्रदेशों से अनन्तगुने। उस एक-एक गुण की परिपूर्णता। आहाहा! स्वभाव है न? भाव है न? भाव में अपरिमितता ही होती है, उसे मर्यादा नहीं हो सकती। ऐसा जो आत्मा एक-एक शक्ति से अपरिमित स्वभाव से भरपूर है, उसे यहाँ पूर्ण ज्ञानघन कहकर, ज्ञान की प्रधानता से पूर्ण गुणघन है। आहाहा! समझ में आया? उसका टिकना और जीवन ही यह उसका पूर्ण स्वरूप है। यह पूर्ण जीवन ही उसका है, उसे स्वीकार करने से सत्यदर्शन और सत्यज्ञान होता है। ऐसी बातें बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा!

यह बात सर्वज्ञ के सिवाय (कहीं नहीं है), इसलिए कल समयसार में आया था न! सर्वज्ञ की वाणी में जैसा कहा है वैसा। आहाहा! अर्थात् कि उन्होंने सब पूर्ण जाना है। एक-एक आत्मा पूरा, एक-एक रजकण भी अनन्त गुण से पूरा। ऐसे अनन्त द्रव्य, वे एक-एक (प्रत्येक) सब शक्ति के सागर से पूरे हैं। जड़, जड़रूप से पूरा; चैतन्य, चैतन्य के आनन्द आदि से पूरा। समझ में आया? ऐसे पूरे द्रव्य का पूरा ज्ञान सर्वज्ञ को होता है। इसलिए सर्वज्ञ ने कहा हुआ भगवान आत्मा, वह सर्वज्ञ कथित वह आत्मा, वह परिपूर्ण वस्तु है। उसमें नहीं आया?

'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल,
निज सत्ताए शुद्ध सौ ने पेखता हो लाल।
प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता...'

सर्वज्ञ परमात्मा को भक्त कहता है - प्रभु! आप सर्वज्ञ हो। प्रभु! आप सम्पूर्ण जगत को देखते हो। आपके जानने की जो रीति है, सब जगत को देखते हो, उसमें आत्मा को-सबको देखने पर, आत्मा को ऐसा देखा। सब आत्मा, हों! अभव्य हो या भव्य का हो। आहाहा! अनन्त संसार की पर्याय में हो परन्तु वस्तु जो है... आहाहा! वह तो निजसत्ता से शुद्ध है। अपने अस्तित्व से परिपूर्ण शुद्ध है, उसका ज्ञान (होवे), उसे ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! इसलिए परिज्ञान शब्द प्रयोग किया है न! पूरे तत्त्व का, सम्पूर्ण तत्त्व का, एकरूप तत्त्व का ज्ञान, आत्मा वह ज्ञान कहलाता है। इसलिए आता है न! ज्ञान के समीप में आत्मा, दर्शन के समीप में आत्मा। आहाहा! ज्ञान के समीप में आत्मा, ज्ञान के समीप में पर्याय और राग नहीं। आहाहा!

जिसकी वर्तमान ज्ञान की पर्याय में परिपूर्ण तत्त्व का ज्ञान है, उस पर्याय के समीप में आत्मा है। राग और एक समय की पर्याय को माना था, वहाँ आत्मा समीप में नहीं था, दूर था। समझ में आया? टीका तो टीका है! यह तीसरी गाथा सुननी थी। कहाँ गया? शशीभाई! तीसरी गाथा ऐसी है। आहाहा! ज्ञान-दर्शन और चारित्र की यह तीसरी गाथा है। तीसरी गाथा

की... है न.. आहाहा! समझ में आया?

शर्त इतनी कि जिसे आनन्द की अभिलाषा है, विकल्प आदि जो दुःख है, उससे मुक्त होने की जिसे भावना है। समझ में आया? चाहे तो दया, दान का विकल्प हो तो भी वह हिंसा है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए उससे रहित जो परिपूर्ण वस्तु, पर्याय के ऐसे समीप में राग को ले, वह मिथ्यात्व है, हिंसा है। महाभगवानस्वरूप का अनादर हो जाता है। आहाहा! और महाभगवान परमात्मस्वरूप को ज्ञान में समीप में लेने से, उसका सत्कार और आदर होता है। वह इतना है, ऐसा उसके ज्ञान में भासित होता है। उस ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त, बापू! कहाँ होगी? आहाहा! समझ में आया? वाड़ा में पड़े हैं, उन्हें सर्वज्ञ क्या, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा! और उन सर्वज्ञ ने आत्मा को पूर्ण देखा, ऐसी जो ज्ञान की पर्याय पूर्ण को जाने, उस ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! पर को जानना, वह ज्ञान नहीं; पर्याय को जाने, वह भी ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जो भगवान परिपूर्ण चैतन्यतत्त्व है। उसका जिसे पर्याय में पूरा ज्ञान हो, पर्याय एक समय की और उसमें ज्ञान परिपूर्ण भगवान आत्मा का (होवे)। आहाहा! उस पर्याय की ताकत कितनी! अक्षय-अमेय कहा है न, प्रभु! यह तो वीतराग दरबार की बातें हैं। आहाहा! वीतराग के... आहाहा! क्या कहलाता है? दीवानखण्ड। यह वीतराग का दरबार है। ऐसे आत्मा एक-एक शक्ति से वीतराग दरबार का उसमें संग्रह है। सब शक्तियाँ वीतरागस्वरूप है। समझ में आया? ऐसी अनन्त शक्तियों का भगवान आत्मा दरबार है। अब इस दुनिया की लक्ष्मी-फक्ष्मी तो कहीं रह गयी, धूल है। आहाहा! यहाँ तो पर्याय के अंश को स्वीकार करे, वह पर्यायमूढ़ है। आहाहा! समझ में आया?

परिज्ञान शब्द प्रयोग किया है न! पहली बार में... आहाहा! अर्थात् कि आत्मज्ञान। श्रद्धा अर्थात् आत्मश्रद्धा। ऐसा आता है न! संक्षिप्त भाषा में पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में... ओहोहो! समझ में आया? आत्मपदार्थ एक समय में परिपूर्ण शक्ति के संग्रह का भण्डार प्रभु, परिपूर्ण तत्त्व है। आहाहा! जिसमें केवलज्ञान की पर्याय भी अनन्तवें भाग, एक गुण के अनन्तवें भाग में जाती है। समझ में आया? जिसकी सम्यग्दर्शन की पर्याय एक श्रद्धागुण के अनन्तवें भाग में वह आवे। आहाहा! जिसकी शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. अकषायस्वभाव, उपशमरस से भरपूर शान्तरस से (भरपूर), उसका चारित्र आवे, वह भी एक गुण के अनन्तवें भाग में

आवे। अनन्त गुण हैं, उनकी पर्यायें परिपूर्ण होवे तो वह अनन्तवें भाग में आवे। आहाहा! ऐसा जो भगवान परिपूर्ण, भाई! यह तो ज्ञान में बैठने की बात है। समझ में आया? आहाहा!

यह दूसरे का कर नहीं सकता, पर से लेता नहीं। पर में कहाँ अपनी पूर्णता है? यह तो पर्याय को भी गिनता नहीं और पर्याय में लेना नहीं और पर्याय को छोड़ना नहीं। आहाहा! मात्र पर्याय को सन्मुख करना, इतनी यहाँ बात है। समझ में आया? कहो, हरिभाई! सब ठीक मौके से आये हैं। यह प्रीतिभोज है। आहाहा!

आत्मा वीतरागस्वरूप ही है। 'जिन सो हि आत्मा' आता है न? समयसार नाटक में आता है, श्रीमद् में आता है। 'जिन सो हि आत्मा' जिन और जिनवर में वस्तु में अन्तर नहीं है। आहाहा! ऐसा जो भगवान। एक ज्ञान जो शक्ति है, वह अन्दर वीतरागी ज्ञान है। दर्शन, श्रद्धा है, वह अन्दर शक्ति, हों! वीतरागी दर्शन है। स्थिरता / चारित्र अन्दर रमणता, वह शक्ति, हों! वह वीतरागचारित्र है। आहाहा! उसमें इसकी स्वच्छता, प्रभुता, वह सब वीतराग स्वच्छता और वीतराग प्रभुता - ईश्वरता है। आहाहा!

वीतराग का मार्ग वीतराग की शक्ति की परिपूर्णता की प्रतीति से खड़ा होता है। कान्तिभाई! ऐसा मार्ग है। आहाहा! यह दिगम्बर सन्तों ने स्पष्ट कर डाला है। समझ में आया? सरल करके बताया है। आहाहा! ऐसे हथेली में जैसे आँवला देखे, वैसे इसकी ज्ञान की पर्याय पूरा इतना है, ऐसा जाने। समझ में आया? दूसरा जानपना हो, कम-ज्यादा हो, उसके साथ कुछ (सम्बन्ध नहीं है)। आहाहा! दूसरे को समझाना आवे या इतनी सभा भरे, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं हैं। आहाहा! क्योंकि विकल्प ही उसकी जाति के नहीं, फिर विकल्प को करना, यह वस्तु कहाँ है। आहाहा! वाणी उसके स्वरूप में नहीं तो वाणी वह बोले और करे, यह उसके स्वरूप में कहाँ है? आहाहा! उसके स्वरूप में तो निर्विकल्पता की शक्तियों का संग्रह पड़ा है। निधान-निधि है। आहाहा!

एक जंगल गया हो और पानी की धारा गिरे और वहाँ एक कलश देखे और उस कलश में करोड़-करोड़ का हीरा, ऐसे-ऐसे लाख हीरा देखे तो ऐसा हो जाए! आहाहा! यह तो अनन्त अनन्त हीरा अरूपी चैतन्यघन में अन्दर पड़े हैं। आहाहा! उसमें एकाग्र होने पर उसे अनन्त हीरा का नाथ स्वयं इसे नजर में पड़े। उसमें इसे कितनी प्रसन्नता हो! वह (जड़ हीरे की) प्रसन्नता तो राग की प्रसन्नता है। समझ में आया? जिसके ज्ञान में और श्रद्धा में ऐसा भगवान भासित हो, उसे कितना आनन्द आता होगा! समझ में आया? आहाहा!

यह तो यहाँ से तीसरी गाथा शुरु होती है न? बाद में इसका विस्तार करते हैं। यहाँ से इसकी शुरुआत करते हैं। आहाहा! **निज शुद्ध जीवास्तिकाय...** निज शुद्ध जीवास्तिकाय। यह जीव, अस्तिकाय। ओहोहो! इसकी चौड़ाई असंख्यप्रदेशी भी साथ में बतलायी कि ऐसा सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं है नहीं और इसका अस्तित्व पूर्ण अनन्त गुणवाला जीव है, ऐसा भी बतलाया। ऐसा **शुद्ध जीवास्तिकाय, उससे उत्पन्न होनेवाला जो परम श्रद्धान, वही दर्शन है।** यह तो एकान्त हो गया। 'ही' नहीं होता न? श्रीमद् में आता है न कि मेरे महावीर में 'ही' (नहीं होता)। वह तो नित्य ही आत्मा है, अनित्य ही है, ऐसा 'ही' नहीं होता। यहाँ तो 'ही' है। आहाहा! उसमें ऐसा कहा था न? **निज परमतत्त्व का परिज्ञान (जानना), सो ज्ञान है।** यहाँ 'ही' डाला। **वही दर्शन है।** समझ में आया?

'निजपरमतत्त्वपरिज्ञानम् उपादेयं भवति। दर्शनमपि' 'परमश्रद्धानमेव भवति।' यहाँ जरा जोर दिया है जरा। श्रद्धा है न? 'एव' शब्द वहाँ संस्कृत में पड़ा है। यह तो बड़े मन्त्र हैं। आहाहा! गारुड़ी जैसे कलम को मन्त्रकर, सर्प काटा हो और सर्प को पकड़ने जाता है न? उसी प्रकार यह गारुड़ी सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी कलम है। वह वाणी अन्दर डालकर आत्मा को जगाते हैं, जाग रे जाग आत्मा, अब अभी सोना नहीं पोसाता। आहाहा! जहर को उतार डाल। एक समय की पर्याय और राग हूँ, यह जहर है, कहते हैं। समझ में आया? और परिपूर्ण को मानना, वह अमृत है। आहाहा! आचार्यों ने (गजब) काम किया है न! आहाहा! जिनके उपकार का पार नहीं। दो बोल हुए।

अब, तीसरा भी परिपूर्णता में स्थिरता, ऐसा लेना है। आहाहा! उस परिपूर्णता की श्रद्धा, परिपूर्णता का ज्ञान, उसमें स्थिरता -ऐसा नहीं। यह क्या कहा? श्रद्धा-ज्ञान में स्थिरता, ऐसा नहीं। देखो, **निश्चयज्ञानदर्शनात्मक कारणपरमात्मा में अविचल स्थिति...** ऐसा नहीं कहा कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, अब उसमें-पर्याय में स्थिरता। क्योंकि वहाँ तीनों में परिपूर्ण पूरा लेना है। समझ में आया? आहाहा! निश्चयज्ञान-दर्शनस्वरूप। त्रिकाली, हों! **कारणपरमात्मा में...** आहाहा! कारणपरमात्मा। देखो! त्रिभुवनभाई! कारणपरमात्मा का स्वीकार करे, तब इसे कारणपरमात्मा है, ऐसा हुआ कहलाता है। यह तो तब प्रश्न तो होवे न। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर ने पर्याय में पूर्ण पर्याय में, पूर्ण में से पूर्ण पर्याय प्रत्येक की प्रगट की। ऐसा जो पूर्णस्वरूप भगवान दर्शन-ज्ञानस्वरूप। अनन्त गुण इकट्ठे आ गये। उपयोग मुख्य है न? निश्चयज्ञान-दर्शनस्वरूप। ऐसा **कारणपरमात्मा...** कैसा कारणपरमात्मा नित्य ध्रुव है? - कि निश्चयज्ञानदर्शनस्वरूप। वह तो आत्मा कारणपरमात्मा परन्तु उसका स्वरूप-स्वभाव

अन्दर कैसा है ? कि निश्चयज्ञानदर्शनस्वरूप। आहाहा! ऐसे **कारणपरमात्मा में...** कारणपरमात्मा में। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

निश्चयज्ञानदर्शनस्वरूप त्रिकाल। पहले ज्ञान, दर्शन की व्याख्या की, वह तो पर्याय की व्याख्या हुई। त्रिकाली का ज्ञान, त्रिकाल की प्रतीति। अब वह ज्ञान-दर्शन पर्याय में स्थिरता — ऐसा नहीं लिया। वह तो जाना कि यह त्रिकाल है, श्रद्धान किया कि त्रिकाल है। अब स्थिर होना है, वह त्रिकाल में स्थिर होना है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! ऐसा सब कहीं सुना नहीं था। शान्तिभाई कहे, अभूतपूर्व है। ऐसा मार्ग, बापू! क्या हो ?

तू परमेश्वर प्रभु। तेरी परमेश्वरता की बातें केवली नहीं कह सके। आहाहा! जिसकी पर्याय, साधक की पर्याय को अक्षय और अमेय कहा। गजब काम किया है न! इसी प्रकार यह शक्ति और गुण की अक्षय और अमेयता का क्या कहना ? आहाहा! यह गुण कभी क्षय को प्राप्त हो नहीं। (और) इसकी मर्यादावाला यह गुण होता नहीं। सब अमर्यादित। आहाहा! समझ में आया ? दुनिया माने, न माने, उसके साथ क्या ? आहाहा! समझ में आया ?

निजज्ञानदर्शनस्वरूप ऐसा कारणपरमात्मा, उसमें... **कारणपरमात्मा में अविचल स्थिति (निश्चलरूप से लीन रहना) ही चारित्र है।** आहाहा! नग्नपना, वह चारित्र नहीं; पंच महाव्रत के विकल्प, वह चारित्र नहीं। आहाहा! पाँच समिति, पाँच गुप्ति, ये सब विकल्प हैं; वे चारित्र नहीं। आहाहा! परिपूर्ण भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप अथवा यह कारणपरमात्मा, उसमें अविचलस्थिति। जो चलित न हो, स्थिर.. स्थिर बिम्ब अन्दर से हो जाए। **अविचल स्थिति (निश्चलरूप से लीन रहना) ही चारित्र है।** कहो, समझ में आया ? '**अविचलस्थिरेव**' वहाँ '**एव**' शब्द है। ज्ञान में '**एव**' नहीं, वहाँ '**परि**' डाला है। परि अर्थात् पूरा बताया। परिपूर्ण, परिपूर्ण का ज्ञान। आहाहा! परिपूर्ण भगवान की श्रद्धा, परिपूर्ण भगवान आत्मा में स्थिरता। आहाहा!

अरे! ऐसा सुनने को मिलता नहीं। अरे रे! कहाँ जाना इसे ? चौरासी के अवतार में भटकता है, वह दुःखी है। ऐसी अन्दर में वस्तु है, इसे सुनने को मिलती नहीं, इसके ज्ञान पर ऐसी बात आयी है, ऐसा स्वभाव वह आता नहीं। अरे! इसे कहाँ जाना ? क्या करना ? आहाहा! और जिसमें भव का अभाव न हो, वह कोई चीज़ ही नहीं है। क्योंकि वस्तु में भव और भव का भाव नहीं है। भव का भाव तो नहीं परन्तु वस्तु में पर्याय नहीं। आहाहा! भव के अभाववाली जो पर्याय है, वह भी वस्तु में नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? भगवान आत्मा अनन्त गुण का परिपूर्ण रूप, उसमें भव तो नहीं, भव का भाव तो नहीं परन्तु उसकी वर्तमान

भव के भाव को जाननेवाली पर्याय/ क्षयोपशम अवस्था... आहाहा! उसमें नहीं। उसका आश्रय करे तो भव का अभाव होता है। समझ में आया? आहाहा!

तीसरी गाथा में यह आ गया था न? **णियमेण य जं कज्जं** उसमें पहला पद आया था न? नियम से करनेयोग्य होवे तो ये तीन ही हैं। निश्चय से करनेयोग्य कर्तव्य यदि हो तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र है। वह करनेयोग्य वस्तु का ध्येय किसमें? परिपूर्ण वस्तु का ज्ञान, परिपूर्ण वस्तु की श्रद्धा, परिपूर्ण में स्थिरता... यह कर्तव्य है... आहाहा! गजब काम करते हैं या नहीं!

कुन्दकुन्दाचार्य तो केवली के पथानुगामी! आहाहा! भरतक्षेत्र में तीर्थंकर जैसा कार्य किया है। ओहोहो! लोग तो पक्ष में पड़े हैं, उन्हें कठिन पड़ता है। पक्ष में बँधे होते हैं न? आहाहा! वे तो कहते हैं यह दिगम्बर का धर्म है। अरे! प्रभु! ऐसा भाई! ....ये तो दिगम्बर के शास्त्रों में है। हमारे शास्त्रों में तो पंच महाव्रत को संवर-निर्जरा कही है, (ऐसा वे) कहते हैं। आहाहा! ऐई! वहाँ एक आर्जिका है...

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे शास्त्र सच्चे हैं। हमें वे मान्य हैं। उनमें महाव्रत को संवर-निर्जरा कहा है। तुम्हारे शास्त्र... हमारे दिगम्बर शास्त्र मान्य है। एक आर्जिका है, बहुत... वह तो ऐसे बचाव के लिए बोलते हैं। अरे! भगवान! क्या बोलता है? भाई! आहाहा! समझ में आया? आहाहा! मिथ्यात्व के भाव में इसने पाप बाँधे। आहाहा! उनके फलरूप से दुःख की गति मिली! और नरक और निगोद में दुःख तो ऐसे हुए (कि) देखनेवाले को आँसू की धारा आवे। वेदना का तो क्या कहना? ऐसे वे दुःख विपरीत मान्यता के फल में सहे हैं, भाई! आहाहा! जहर का वृक्ष है। १४८ प्रकृति कही है न? आहाहा! जहर का वृक्ष। आहाहा! १४८ प्रकृति। स्वर्ग मिले तो वह भी जहर के वृक्ष का फल है।

श्रोता : तीर्थंकर पद भी जहर का वृक्ष?

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर का वृक्ष। आहाहा! कठिन लगे। यह मस्तिष्क में रखा था। आहाहा! भाई! यह तो वीतरागमार्ग की बात है, भाई! आहाहा! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव, जिनके सौ इन्द्र तलवे चाँटे। आहाहा! उनकी वाणी में ज्ञान-दर्शन और चारित्र का ऐसा स्वरूप आया, वह सन्त कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो अभी पंच महाव्रत के भी ठिकाना न हो, वहाँ (माने कि) हम चारित्रवन्त हैं और हम ऐसे हैं। भाई! उसमें तेरे लिए तुझे नुकसान है। दूसरा भले तुझे कहे कि तू साधु नहीं, इससे तू असाधु हो जाए, ऐसा नहीं है। तेरे

भाव में है, वह असाधु है। स्वरूप को साधे, वह साधु। तो स्वरूप कितना और कहाँ है, उसकी श्रद्धा और ज्ञान का ठिकाना नहीं, वह साधे कहाँ से? आहाहा! यह तो चारित्र की व्याख्या चलती है न? कि स्वरूप परिपूर्ण की श्रद्धा और ज्ञान हुए। अब उसे साधना है। आहाहा! उसमें स्थिरता हो, तब वह साधन है। आहाहा! निश्चयज्ञान-दर्शनस्वरूप। इसे पुनरुक्ति नहीं लगती, हों! भावना है न! आहाहा!

निश्चयज्ञान-दर्शनस्वरूप। यहाँ ज्ञान और दर्शन लिया है। मोक्षमार्ग में तो ज्ञान, दर्शन (लिया है)। यहाँ ज्ञान-दर्शन है। **कारणपरमात्मा में...** परिपूर्ण ध्रुवस्वरूप भगवान में **अविचल स्थिति (निश्चलरूप से लीन रहना) ही चारित्र है।** आहाहा! वह अहिंसा है। स्वरूप में स्थिरता, वह अहिंसा है। अस्थिरता-राग होना, वह हिंसा है। पंच महाव्रत का विकल्प उठना, वह भी हिंसा है। वह राग है न! विकल्प है और आस्रव है। आहा! दिगम्बर के अट्ठाईस मूलगुण हैं। स्थानकवासी में सत्ताईस कहते हैं। श्वेताम्बर में सत्ताईस (कहते हैं)। वे अलग और उनका प्रकार अलग, परन्तु ये अट्ठाईस मूलगुण भी आस्रव-विकल्प है। तब लोग ऐसा कहे, लो, यह अट्ठाईस मूलगुण वह साधन है... साधन है। उन्हें यह सोनगढ़वाले एकान्त कहते हैं। परन्तु यह भगवान क्या कहते हैं? ज्ञान-दर्शनस्वरूप, पूर्णस्वरूप में स्थिरता, उसे ही चारित्र कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? एकान्त है रे... भाई! एकान्त की गाली देनेवाले बहुत सस्ते हैं। आहाहा! भाई! तुझे नुकसान है, बापू! आहाहा! लो, इन तीन की व्याख्या हो गयी। तीसरी गाथा में तीन की व्याख्या हुई। ऐई! शशीभाई! तीसरी गाथा। ये कहें, तीसरी गाथा है। हमारे.. कहीं है। सब है.. स्वरूप है.. है न, स्वरूप। अरे, भगवान! बापू! यह कहाँ भाई! आहाहा!

तीन लोक का नाथ अन्दर डोलता है। भरपूर को भरपूर न देखे और हीन देखे, तब तक तुझे श्रद्धा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? भरपूर अनन्त गुण का नाथ प्रभु विराजता है, उसे भरपूर न देखे और अपूर्ण और पर्याय जितना देखे, बापू! तूने तेरी हिंसा की है। आहाहा! समझ में आया?

इसका भरपूर तत्त्व, पूर्ण तत्त्व, यह इसका जीवन है। जीवन अर्थात् टिकता तत्त्व, वह इसका जीवन है। इसे जीव-जीना कहने में आता है। ये लोग पुकारते हैं न! भगवान की... जीवो और जीने दो। अरे! भगवान ने ऐसा नहीं कहा। सुन न! अलिंगग्रहण में तो ऐसा आता है, मन और इन्द्रिय से जीवन, वह जीव का जीवन नहीं है। अलिंगग्रहण के बीस बोल हैं न? उसमें एक बोल है। समझ में आया? तेरहवाँ बोल है। मन और इन्द्रिय से जीना, यह जीव

का जीवन नहीं है। आहाहा! जीवो और जीने दो, सब पुकार करते हैं। सब युवक शोर मचाते हैं। तत्त्वार्थसूत्र में नहीं लिखा? परोपकार एक-दूसरे... अभी.. उसे परस्परोपग्रहो जीवानाम्- आता है न? अभी २५०० वर्ष में लोग बहुत (डालते हैं)। ऊपर-नीचे लिखते हैं। परस्परोपग्रहो जीवानाम्। एक-दूसरे को उपकार करो। कौन करे? भाई! यह तो निमित्त के कथन हैं। आहाहा! यहाँ तो उपकार तू तेरे ऊपर कर। ऐसा है, उसे हीन माना, उसे पूरा मान, वह तेरे आत्मा का तूने उपकार किया। आहाहा!

पर्याय की दृष्टि होने पर भी भगवान खण्ड-खण्ड होता है। उसके बदले पर को न मारूँ, ऐसा विकल्प, वह हिंसा है। यह वीतराग का मार्ग है। इसे पर के साथ क्या सम्बन्ध? आहाहा! '**नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः**' समयसार का २०० वाँ कलश है। पर को क्या सम्बन्ध है? द्रव्य स्वतन्त्र पर्याय से परिणम रहा है। वह परद्रव्य उसकी पर्याय से परिणम रहा है, उसमें तुझे और उसे क्या सम्बन्ध है? आहाहा! **यह ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप...** यह। जो कहा वह। आत्मज्ञान, आत्मश्रद्धा, आत्मचारित्र। दूसरी भाषा से (कहें तो) उस परिपूर्ण का ज्ञान, परिपूर्ण की श्रद्धा और परिपूर्ण में स्थिरता। समझ में आया? आहाहा! **यह ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप नियम...** अर्थात् नियम। **निर्वाण का कारण है।** यह नियम, निर्वाण का कारण है। समझ में आया?

यह ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप... लो, यह पर्याय का स्वरूप कहा। **नियम...** अर्थात् तीन स्वरूप, यह नियम। **निर्वाण का कारण है।** दो (अंक) यह शीतलप्रसाद ने डाला है, नहीं? शीतलप्रसाद ने नीचे इस गाथा में लिखा। **कारण जैसा ही कार्य होता है,...** यह सैद्धान्तिक। **इसलिए स्वरूप में स्थिरता करने का अभ्यास ही...** स्वरूप में स्थिरता। स्वरूप में, हों! ज्ञान-दर्शनपर्याय प्रगट हुई, उसमें नहीं। स्वरूप में **स्थिरता करने का अभ्यास ही वास्तव में अनन्त काल तक स्वरूप में स्थिर रह जाने का उपाय है।** ज्ञान, निश्चयज्ञान-दर्शनस्वरूप जो भगवान कारणपरमात्मा, उसमें स्थिरता... स्थिरता... स्थिरता का अभ्यास, वह पूर्ण स्थिरता होने का कारण है। समझ में आया?

स्थिरता करने का अभ्यास ही वास्तव में अनन्त काल तक... भविष्य में पूर्ण स्थिरता अनन्त काल रहेगी। ऐसे **स्वरूप में स्थिर रह जाने का उपाय है।** आहाहा! यह क्या कहा? कि यह स्वरूप जो भगवान कारणपरमात्मा है, उसका ज्ञान, प्रतीति और उस स्वरूप में स्थिरता का अभ्यास, वह अनन्त काल स्थिर हो, उसका यह उपाय है। आहाहा! भविष्य में अनन्त काल इसे स्थिरता रहेगी। समझ में आया? लो, सिद्ध में चारित्र है, यह तो ऐसा हुआ।

स्थिरता है न वहाँ।

वह **नियम निर्वाण का कारण है।** यह क्या कहा? यह नियम जो है—सम्यग्ज्ञान-सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र, यह जो नियम है, वह चारित्रस्वरूप की स्थिरता का अभ्यास है। यह स्थिरता का अभ्यास है, वह भविष्य में अनन्त काल स्थिरता रहेगी, उसका यह उपाय है। समझ में आया? कहो, भगवानजीभाई! भगवान होने का यह उपाय है। आहाहा! सेठ! भगवान आत्मा है न! डाल दिया भगवान को, राग की रुचि में, पर्याय की रुचि में, पर की सुखबुद्धि में भगवान को ढाँक दिया। वह आता है न? नवतत्त्व में आच्छादन हुआ, यह आता है। वह तो पर्यायबुद्धि में पूरा द्रव्य ढँक गया। कल आयेगा....

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। पर्याय के भेद में एकरूप वस्तु ढँक गयी। समझ में आया?

श्रोता : ढँक गयी अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : ढँक गयी अर्थात् नजर में नहीं पड़ी। यह तो समयसार की ११वीं गाथा में नहीं कहा? कि ज्ञायकभाव तिरोभाव हो गया। राग की पर्यायबुद्धि में, मेलबुद्धि में और भेदबुद्धि में ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया और जहाँ एकाग्र हुआ अर्थात् ज्ञायकभाव आविर्भाव-प्रगट हुआ। ज्ञायकभाव तो है, वह है। पर्याय में ज्ञात हुआ, तब प्रगट हुआ, ऐसा कहा। पर्याय में ढँका तब, ढँक गया है, ऐसा कहा। समझ में आया? आहाहा! अरे! ऐसा अवसर है, भाई! वीतराग की वाणी और उसका भाव अन्दर में पकड़ में आवे, वह अलौकिक वस्तु है, उस काल की बलिहारी है। बाकी तो सब ठीक अब बाहर चलता है।

यह ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप... देखो! इस पर्याय को भी स्वरूप तो कहा। निर्मल स्वरूप है न यह? त्रिकाल स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता, इन तीन स्वरूप। **नियम निर्वाण का कारण है।** यह नियम, वह निर्वाण... नियमसार लेना है न? नियमसार। तो यह नियम है। **यह ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप नियम, निर्वाण का कारण है।** अब वह सार शब्द क्यों प्रयोग किया। इसका स्पष्टीकरण है। नियम-सार। यह नियम की व्याख्या की। समझ में आया?

उस 'नियम' शब्द को विपरीत के परिहार हेतु 'सार' शब्द जोड़ा गया है। इसमें भी विवाद। विपरीत अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय विपरीत नहीं, ऐसा अर्थ किया है। ऐसा नहीं है,

बापू! आहाहा! भगवान! तुझे बचाने का उपाय तो यह तीन नियम ही है। समझ में आया? यह राग है, वह तो विपरीतता है। व्यवहाररत्नत्रय (विपरीतता है)। नीचे स्पष्टीकरण है न? **विपरीत=विरुद्ध। व्यवहारत्नत्रयरूप विकल्पों को...** है? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का जो विकल्प है, वह राग है, पंच महाव्रत का विकल्प, वह राग है। शास्त्र की ओर का पठन का विकल्प उठना व्यभिचारी बुद्धि, वह राग है। आहाहा! समझ में आया? विपरीत। व्यवहाररत्नत्रय विकल्प, वह विपरीत है। आहाहा!

अब, कहीं व्यवहार को साधन कहा है और निश्चय को साध्य कहा है, उसका अर्थ क्या? पंचास्तिकाय में ऐसा कहा है। वह तो साथ में होता है, उसका ज्ञान कराया है। यहाँ तो कहते हैं कि उस व्यवहार के साधन से रहित। क्योंकि वह विपरीत है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय, वह स्वभाव से विपरीत है। मोक्ष का मार्ग जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र—उससे यह विपरीत है। अब विपरीत से अविपरीतदशा प्रगट होगी? बहुत जगह कथन आते हैं। बेचारे... हो गये। ....देखो! ऐसा है। एकान्त कहते हैं कि निश्चय से होता है। व्यवहार साधन नहीं है। भगवान ने तो साधन कहा। हिम्मतभाई ने पंचास्तिकाय का अर्थ किया है। फिर नीचे (फुटनोट) करके घोटाला उठाया है, ऐसा लोग कहते हैं। उन्होंने तो स्पष्ट किया है। ये कहते हैं, एक व्यक्ति कहता था कि पाठ में था, उसका नीचे अर्थ करके घोटाला किया। दूसरी भाषा थी।

श्रोता : अर्थ खो दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थ को खो दिया, कहते हैं। अरे! भाई! यह तो अर्थ का स्पष्टीकरण किया है, भाई! तुझे संक्षिप्त भाषा में नहीं समझ में आता, इसलिए उसका स्पष्टीकरण किया है। यह क्या कहते हैं? देखो! टीकाकार क्या कहते हैं? पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिराज, जिनके मुख से परमागम झरता है। पंच महाव्रतधारी ऐसा बोलते हैं कि मेरे मुख में से परमागम झरता है। आहाहा!

वे ऐसा कहते हैं कि **विपरीत के परिहार हेतु 'सार' शब्द जोड़ा गया है।** अर्थात्? निश्चय जो त्रिकाली का ज्ञान, त्रिकाली की श्रद्धा और त्रिकाली स्थिरता, वह एक ही निर्विकल्प मोक्षमार्ग है। वही एक नियम है। उसे सार क्यों कहा? - कि व्यवहार के विकल्पों को अर्थात् **पराश्रितभावों को छोड़कर,...** वे सब विकल्प पराश्रितभाव हैं। **मात्र निर्विकल्प ज्ञानदर्शनचारित्र का ही-शुद्धरत्नत्रय का ही...** ज्ञानदर्शनचारित्र का अर्थात् कि **शुद्धरत्नत्रय का ही-स्वीकार करने हेतु 'नियम' के साथ 'सार' शब्द जोड़ा है।** समझ में आया? साधन पहले हो, बाद में साध्य होता है, ऐसा वे कहते हैं। आहाहा! अरे! भाई! मोक्षमार्ग दो नहीं हैं। मार्ग कहो या कारण कहो या साधन कहो। उसमें साधन दो नहीं है। साधन तो राग से भिन्न पड़कर स्वरूप का साधन करना, वह एक ही साधन है। प्रज्ञाछैनी कही

४

श्री नियमसार, गाथा-९, श्लोक-१५, प्रवचन - १५१
दिनांक - १३-०१-१९६६

नियमसार, जीव अधिकार का १५वाँ कलश है।

(हरिणी)

ललितललितं शुद्धं निर्वाणकारणकारणं,
निखिलभविनामेतत्कर्णामृतं जिनसद्वचः।
भवपरिभवारण्यज्वालित्विषां प्रशमे जलं,
प्रतिदिनमहं वन्दे वन्द्यं सदा जिनयोगिभिः।।१५।।

आगम की बात चलती है न? क्या चलता है? आप्त परमेश्वर और उनका वचन-शास्त्र और तत्त्वार्थ की श्रद्धा को व्यवहारसम्यक्त्व कहा जाता है। है तो विकल्प-राग, परन्तु जिसे निश्चयसमकित अन्तर में कारणस्वभाव भगवान के अनुभवसहित प्रतीति हुई हो, ऐसा निश्चयसमकित, व्यवहारसमकित को गर्भित रीति से गमनरूप परिणमन होता है, उसे व्यवहार कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पहले व्यवहार की बात चलती है, परन्तु उस व्यवहार में शुभराग है, विकल्प है परन्तु अन्दर में भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप ज्ञायक आनन्दघन ऐसी चीज़ में अन्तर अनुभव में स्वसन्मुख होकर, राग की अपेक्षा बिना निर्विकल्प प्रतीति होती है, उसका नाम निश्चयसम्यग्दर्शन है। समझ में आया? उस निश्चयसम्यग्दर्शन में जब तक पूर्णता-वीतरागता न हो, तब तक व्यवहार श्रद्धा आप्त भगवान की वाणी और तत्त्वार्थ की श्रद्धा का विकल्प होता है, उसे व्यवहार समकित कहते हैं।

कहते हैं कि भगवान का वचन कैसा है? भगवान को आप्त कहा। उस आप्त की व्याख्या हो गयी। आप्त किसे कहें, इसकी व्याख्या आ गयी। अब यह तो आगम की बात चलती है।

जो (जिनवचन),... वीतरागी वचन। भगवान पूर्ण वीतरागस्वरूप हुए और सर्वज्ञदशा प्रगट हुई, उनका वचन... निमित्त से कथन है। वाणी उनकी नहीं है, वाणी तो जड़ की है, परन्तु निमित्त से उनका जो जिनवचन कहते हैं, वह जिनवचन व्यवहार से कहा जाता है। है तो वाणी। वाणी में स्व-पर कथन करने की ताकत है, जानने की ताकत नहीं। स्व-पर जानने

की ताकत आत्मा में है और वाणी में स्व-पर कथन करने की शक्ति है। वाणी में, हों! वाणी के कारण से। उसमें भगवान ज्ञानस्वरूप है तो निमित्त से कहने में आता है। यह जिनवचन कहा। वरना वाणी तो जड़ है, परन्तु वीतरागी ज्ञान होने के पश्चात् वाणी निकली तो उसमें ज्ञान निमित्त से कहने में आया। .....निमित्त है।

जो (जिनवचन), ललित में ललित हैं; आहाहा! **अत्यन्त प्रसन्नता उत्पन्न करें,...** निमित्त से बात है। वीतरागी वचन सुनने पर अति प्रसन्नता उत्पन्न होती है। शुभरागरूपी प्रसन्नता। वास्तविक चैतन्य की बात सुनने पर, अन्तर्मुख में दृष्टि करने से आनन्द की प्रसन्नता होती है। आहाहा! समझ में आया? **ललित में ललित=अत्यन्त प्रसन्नता उत्पन्न करें, ऐसे अतिशय मनोहर।** वाणी है। भगवान की दिव्यध्वनि। चाहे तो भगवान दिव्यध्वनि कहे या चाहे तो सन्त, दिव्यध्वनि द्वारा जो चीज़ आयी, उसे कहते हों, वह अति प्रसन्न-मनोहर है। आहाहा!

जो शुद्ध हैं;... राग-द्वेषरहित है। जिनवाणी में राग का स्थापन या राग से लाभ, ऐसा वाणी में नहीं आता। वीतराग है न! वीतरागी वाणी में वीतरागभाव का स्थापन होता है। आहाहा! समझ में आया? यह पहले अपने टीका में आ गया है। **पापसूत्र की भाँति हिंसादि पाप क्रिया शून्य होने से शुद्ध है।** टीका में है। **जो निर्वाण के कारण का कारण है;...** आहाहा! मोक्ष-परमानन्द का लाभ, परम-आनन्द का लाभ—ऐसा मोक्ष, उसका कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है; उसका कारण वीतराग की वाणी निमित्त कहने में आती है। समझ में आया?

निश्चय से मोक्ष का कारण जो मोक्षमार्ग, उसका कारण आत्मा है। क्या कहा? निर्वाण जो पूर्ण आनन्द का लाभ, पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ, उसका नाम मोक्ष; उसका कारण मोक्ष का मार्ग—निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र; उसका कारण? कारणपरमात्मा-आत्मा। आहाहा! तो निमित्तकारण, वीतराग की वाणी को मोक्षमार्ग का निमित्तकारण कहा। मोक्षमार्ग का उपादानकारण द्रव्य है। आहाहा! समझ में आया?

कारण हो तो कार्य होना चाहिए—ऐसा प्रश्न था न? यह कारण बनावे, तब न? भाई का प्रश्न था न? चिमनभाई! तुम्हारे वारियाजी का। ऐई! पुनातर! वारियाजी है न तुम्हारे? त्रिभुवनभाई। उसने प्रश्न किया कि कारणपरमात्मा है तो कार्य क्यों नहीं आता? वस्तु है, वह तो कारणपरमात्मा त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु है - तो कारण है तो कार्य क्यों नहीं आता?

परन्तु कारण है, उसका स्वीकार किये बिना, कारण है - यह श्रद्धा में कहाँ से आया ? समझ में आया ? कारण भगवान ज्ञायकभाव पूर्ण शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु है, परन्तु 'है' उसकी प्रतीति और ज्ञान में आये बिना 'है' किसे ? तो जिसके ज्ञान और श्रद्धा में आवे, उसे कारण का कार्य अंश आये बिना रहता ही नहीं। नवरंगभाई ! यह सूक्ष्म बात, भाई ! आहाहा !

कहते हैं कि अन्तर में मोक्षमार्ग है, वह मोक्ष का कारण है। मार्ग कहो या कारण कहो। उस कारण का कारण तो जिनवचन है। और यहाँ कहे—मोक्षमार्ग का कारण तो कारणपरमात्मा है, क्योंकि जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चयसत्य है, वे तो त्रिकाली के आश्रय से उत्पन्न होते हैं। समझ में आया ? परन्तु उसमें निमित्तकारण कौन—यह बतलाते हैं। अज्ञानी या अन्यमती की वाणी निमित्त नहीं—इतना बतलाने के लिए मोक्षमार्ग का कारण, उसका कारण निमित्त। ऐसा कहने में आया है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न, व्यवहार है। व्यवहार है न ! निश्चय से अपना स्वभाव शुद्ध आनन्दघन चैतन्य भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा वह। वह मोक्षमार्ग का कारण है। यह तो बहुत बार आ गया। कारणपरमात्मा त्रिकाली सच्चिदानन्द प्रभु ! सत्-शाश्वत आनन्द और ज्ञान का पूर्णरूप, ऐसा आत्मा ही सम्यग्दर्शन का कारण है। **भूदत्थ मस्सिदो—** भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। यह (समयसार की) ११वीं गाथा जैनदर्शन का प्राण है। सम्यग्दर्शन तो भूतार्थ त्रिकाल भगवान आत्मा के आश्रय से होता है। तो यहाँ कहा कि जिनवचन समकित में, मोक्षमार्ग में निमित्त है। यह तो व्यवहार कहा। समझ में आया ? किस नय का कथन है, यह समझे नहीं तो गड़बड़ हो जाए।

यहाँ कहा **निर्वाण के कारण...** मोक्ष का मार्ग निश्चय, उसका कारण व्यवहार जिनवचन निमित्त। कान्तिभाई ! आहाहा ! ये दो बातें की। ललित में ललित-एक बात। दूसरी बात **निर्वाण के कारण का कारण...** दूसरी बात। जिनवचन। **सर्व भव्यों के कर्णों को अमृत है;...** सर्व भव्यों के कर्णों। अभव्य जीव के नहीं। आहाहा ! सर्व भव्य जीव हैं-लायक हैं, ऐसे **भव्यों के कर्णों को अमृत है;...** वीतराग वाणी भव्य जीवों के कान में अमृत उड़ेलती है। आहाहा ! यह व्यवहार है। निश्चय अमृत भगवान आत्मा है। समझ में आया ? निश्चय पर्याय में अमृत का कारण भगवान आत्मा है। परन्तु जिनवचन को व्यवहार कारण कहकर, अमृत कहा गया है। आहाहा ! समझ में आया ?

जो भवभवरूपी अरण्य के उग्र दावानल को शान्त करने में जल है... आहाहा !

भवभवरूपी अरण्य... जंगल। भव और भव... ओहो! एक के बाद एक के बाद एक, ऐसे अनन्त-अनन्त भव किये हैं। ओहोहो! वह **भवभवरूपी अरण्य...** अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त संसार में एक-एक योनि में अनन्त अवतार (किये), ऐसे **भवभवरूपी अरण्य...** महावन है। आहाहा! **उग्र दावानल को... अरण्य के उग्र दावानल को...** वापस उग्र अरण्य। आहाहा! उस **दावानल को शान्त करने में...** संसार के झुलसते भाव हैं, उन्हें शान्त करने को भगवान की वाणी **जल है...** ये सब निमित्त से कथन है। बाकी संसार के दावानल को शान्त करने के लिए भगवान त्रिलोकनाथ आत्मा का आश्रय, वह शान्त करने में समर्थ है। समझ में आया? परन्तु यह व्यवहारकारण कहा गया है।

जल है और जो जैन योगियों द्वारा सदा वंद्य हैं.... आहाहा! जिसने आत्मा के आनन्द का अनुभव किया है, योगी—जिसने त्रिकाल आत्मा में योग जोड़ दिया, ऐसे समकिती ज्ञानी योगी। योग-भगवान पूर्णाननद का नाथ आत्मा में जिसने वर्तमान पर्याय जोड़ दी, उसका नाम योग और उसका नाम योगी। यह बाबा-बाबा योगी नहीं। आहाहा! निजस्वरूप पूर्णानन्द ज्ञानघन आनन्दकन्द प्रभु... आहाहा! उसमें जिसकी वर्तमान निर्मल पर्याय, निर्मलानन्द के साथ जोड़ी, वह योग और उसका धारक, वह योगी। ऐसे योगी को वीतराग की वाणी वन्द्य है। अज्ञानी को तो वीतराग की वाणी की कीमत नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी वाणी है।

जो जैन योगियों द्वारा... भाषा ऐसी ली है न? आहाहा! '**जिनयोगिभिः**' संस्कृत टीका में है। '**वन्दे वन्द्यं सदा जिनयोगिभिः**' जिन योगी, जिन योगी, वीतरागी सन्त। आहाहा! जिनका वीतरागभाव स्वभाव है, वह वीतरागभाव पर्याय में प्रगट हुआ है। आहाहा! ऐसे जिनयोगियों को जिनवाणी वन्द्य है। जब तक वीतराग नहीं, तब तक जिनवाणी को व्यवहार से वन्द्य कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? **इन जिनभगवान के सद्वचनों को...** ये सब विशेषण दिये हैं। ऐसे जिनवचन हैं। ऐसे **जिनभगवान के सद्वचनों को...** सद्वचन **(सम्यक् जिनागम को)...** आहाहा! समझ में आया? यह शास्त्र जो जिनागम है, दिगम्बर, वह सम्यक् जिनागम है। समझ में आया? राजमलजी! इनके ससुर ने बत्तीस सूत्र नहीं बनाये? '....प्रसाद' उनके दामाद हैं। तो... तुम्हारे घर में... वीतराग सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि, जो दिगम्बर धर्म में चली आती है। कुन्दकुन्दाचार्य ने बनायी। पहले बनायी थी। कुन्दकुन्दाचार्य की मुख्यता है। वह वाणी जिनवचन है। आहाहा! धर्मात्मा को अन्तरस्वरूप तो वन्द्य है ही परन्तु बाहर में जिनवचन भी व्यवहार से वन्द्य कहने में आता है। आहाहा! निश्चय और व्यवहार, निश्चय और व्यवहार दोनों जोड़ दिये। आहाहा!

ऐसे **इन जिनभगवान के सद्वचनों को (सम्यक् जिनागम को) मैं...** पद्मप्रभमलधारिदेव टीका करनेवाले मुनिराज कहते हैं। योगियों को वन्द्य, ऐसे मैं उसे वन्दन करता हूँ। समझ में आया? जिनवचन योगियों को अर्थात् धर्मात्माओं को... धर्मात्माओं को वह वचन वन्दनीय है, तो मैं भी उसे वन्दन करता हूँ। आहाहा! सम्यग्ज्ञानी को **मैं प्रतिदिन...** वापस ऐसा। प्रतिदिन वन्दन करे तो निर्विकल्प कब होते होंगे? वह तो वचन ऐसा आता है। मेरा बहुमान स्वभाव में वर्तता है, तो व्यवहार से ऐसा विकल्प भी आता है। गजब बात! समझ में आया? **प्रतिदिन वन्दन करता हूँ।** लो, यह श्लोक पूरा हुआ। यह आठवीं गाथा पूरी हुई।

नौवीं गाथा। अब.... बात आयी। पहले आप्त की व्याख्या गयी, पश्चात् जिनवाणी की अर्थात् आगम। अब... तत्त्व। तीन कहे थे न? आप्त, आगम और तत्त्वार्थ। उनकी श्रद्धा, वह व्यवहार समकित है। उसमें दो बातें आ गयी, तीसरी बात अब तत्त्वार्थ (की) आती है। तत्त्वार्थ कहो या द्रव्य कहो, उसमें कुछ अन्तर नहीं है।

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा य काल आयासं।
तच्चत्था इदि भणिदा णाणागुणपज्जएहिं संजुत्ता।।९।।

देखा? तत्त्वार्थ कहा। है द्रव्य परन्तु तत्त्वार्थ कहा है। नीचे हरिगीत है।

षट्द्रव्य पुद्गल, जीव, धर्म, अधर्म, कालाकाश हैं।
ये विविध गुण-पर्याय से संयुक्त षट् तत्त्वार्थ हैं॥९॥

टीका :—यहाँ (इस गाथा में) छह द्रव्यों के... भगवान सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव ने छह द्रव्य देखे हैं। ऐसा अन्यत्र कहीं कहा नहीं। कोई जीव कहे, पुद्गल कहे। बहुत तो काल और आकाश कहे, परन्तु धर्मास्ति और अधर्मास्ति सर्वज्ञ के सिवाय कहीं है नहीं। छह द्रव्य भगवान ने देखे हैं। केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ जिनेश्वर परमेश्वर ने केवलज्ञान में जगत में छह द्रव्य देखे हैं। छह में अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और आकाश—ऐसे छह द्रव्य देखे हैं।

अब कहते हैं कि उन **छह द्रव्यों के पृथक्-पृथक् नाम कहे गये हैं।** अब जीव की व्याख्या करते हैं। **जीवा** है न पहले? पाठ में पहला शब्द है। दस प्राण से जीवे, उसे जीव कहते हैं, ऐसा साधारण संग्रहनय से जीव को इकट्ठे करके ऐसी बात की है कि जो **स्पर्शन,...** इन्द्रिय। यह स्पर्श है न? **रसन,...** जीभ, **घ्राण,...** नाक, **चक्षु,...** आँख, **श्रोत्र,...** कान, **मन, वचन, काय, आयु, और श्वासोच्छ्वास...** यह दस प्राण हैं। इन **नामक दस प्राणों से (संसारदशा में)...** संसारदशा में **जो जीता है,...** आहाहा! सामान्य जीव की बात करते हैं, हों! भेद पाड़कर

बाद में कहेंगे। **दस प्राणों से (संसारदशा में) जो जीता है, जियेगा...** भविष्य में दस प्राणों से जियेगा। जीता है, यह वर्तमान। दस प्राणों से जीता है, यह वर्तमान; दस प्राणों से जियेगा, यह भविष्य और पूर्व काल में-गत काल में जीता था, ये तीन काल आ गये। समझ में आया? **वह 'जीव' है—यह संग्रहनय कहा।** समुच्चय जीव शब्द कहकर दस प्राण से—पाँच इन्द्रिय, मन, वचन, काया, श्वास और आयुष्य - इन दस से **जीता है, जियेगा और पूर्व काल में जीता था,...** तीन काल लिए। दस प्राण से भविष्य में जियेगा। नीचे लिया है न!

निश्चय से... ओहोहो! यह तो संग्रहनय कहा। **निश्चय से भावप्राण धारण करने के कारण...** आहाहा! निश्चय से तो भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त सत्ता और वीर्य—ऐसे जो त्रिकाली भाव प्राण है, उनसे जीता है, उसे जीव कहा जाता है। आहाहा! **निश्चय से भावप्राण...** अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान-दर्शन-शान्ति, ऐसे त्रिकाली स्वभावभाव **धारण करने के कारण 'जीव' है।** आहाहा! उसे जीव कहते हैं। अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द को धारण करनेवाला होने से निश्चय से उसे जीव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? त्रिकाली। त्रिकाली को प्रतीति करता है, उसे प्राण ख्याल आते हैं। क्या कहा यह?

भगवान आत्मा अनादि-अनन्त नित्य अनन्त आनन्द ज्ञान आदि से जीता है। यह कौन मानता है? जिसे सम्यक् प्रतीति हुई, वह कहता है कि यह जीव तो भावप्राण से जीता है। आहाहा! ....भाई! ऐसी बात है। आहाहा! जिसे ख्याल में आया कि यह वस्तु अनन्त बेहद ज्ञान, अपरिमित दर्शन, अपरिमित आनन्द और अपरिमित वीर्य आदि भावप्राण-प्राणी के प्राण। प्राणी जीव, उसके प्राण। आहाहा! वह प्राणी भगवान आत्मा, उसका प्राण, उससे जीता है। है? **भावप्राण धारण करने के कारण 'जीव' है।** आहाहा! जिसे ज्ञान की पर्याय में यह भावप्राण धारण करनेवाला है, ऐसा भास हुआ, उसे भावप्राण से जीता है - ऐसा अनुभव हो गया। पर से नहीं, जड़ से-स्वद्रव्य से नहीं। समझ में आया?

अब **व्यवहार से द्रव्यप्राण धारण करने के कारण 'जीव' है।** द्रव्यप्राण—यह दस कहे न? पाँच इन्द्रियाँ, मन, वचन, काया, श्वास और आयुष्य, ये दस। व्यवहार निमित्त है न? उससे जीता है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है।

शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से... आहाहा! कितने भेद करते हैं? **शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का आधार होने के कारण 'कार्यशुद्ध जीव' है।** आहाहा! शुद्धसद्भूत। पवित्र है और पर्याय में अपने में सद्भूत है परन्तु व्यवहार है, भेद है। त्रिकाली की अपेक्षा से केवलज्ञान भी भेद है। केवलज्ञान, सर्वज्ञ पर्याय भी भेद है, व्यवहार है।

आहाहा! व्यवहार से **शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से...** पहले में अकेला व्यवहार था। शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार। आहाहा! केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द जो भगवान अरिहन्त की पर्याय में प्रगट हुए, उन **शुद्ध -सद्भूत-व्यवहार से केवलज्ञानादि शुद्धगुणों...** गुणों अर्थात् यहाँ पर्याय है। उस शुद्ध पर्याय का **आधार होने के कारण 'कार्यशुद्ध जीव' है।** आहाहा! समझ में आया?

अब नीचे कहेंगे। कार्यशुद्ध है न? इसका नीचे स्पष्टीकरण है। देखो! नोट **प्रत्येक जीव, शक्ति-अपेक्षा से शुद्ध है,...** प्रत्येक जीव शक्ति-अपेक्षा से, स्वभाव-अपेक्षा से शुद्ध है। **सहजज्ञानादिकसहित है;..** शुद्ध की व्याख्या—स्वाभाविक ज्ञान, दर्शन, आनन्द से सहित है। प्रत्येक जीव स्वभाविक ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि सहित है। **इसलिए प्रत्येक जीव, 'कारणशुद्ध जीव' है।** जैसे कारणपरमात्मा कहा था, वह कार्यपरमात्मा की अपेक्षा से कारणपरमात्मा। यहाँ कार्यजीव की अपेक्षा से कारणजीव। कार्यजीव कौन? केवलज्ञानादि सद्भूत व्यवहार प्रगटा, वह कार्यजीव है। पर्याय है न? पर्याय कहो या कार्य कहो और त्रिकाली कारण वस्तु जो भगवान पूर्णानन्दस्वरूप ध्रुव, वह कारण जीव, वह कारण जीव है।

कारणपरमात्मा कहा, उसे यहाँ कारणजीव कहा परन्तु कारणजीव है—ऐसी अन्तर में प्रतीति ज्ञान-अनुभव में आवे, उसे कारणजीव कहने में आता है। कारणजीव का भान हुआ तो कारण जीव है, ऐसा आया, अतः उतना तो कार्य हुआ। सम्यग्दर्शन-ज्ञान वह अंश और स्वरूपाचरण। वह कारणजीव है, ऐसा दृष्टि में, ज्ञान में आया और त्रिकाल में जरा आंशिक स्थिर भी हुआ। त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव जो है, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और त्रिकाली में स्थिरता, दर्शन-ज्ञान में स्थिरता नहीं। त्रिकाल दर्शन-ज्ञान में स्थिरता। यह आया, तब कारणजीव है - ऐसा अनुभव में आया। समझ में आया? गजब मार्ग, भाई! ऐसा सूक्ष्म। इसकी अपेक्षा एकेन्द्रिय की दया पालना, व्रत पालना यह सब सस्ता था। यह महँगा कर डाला है, ऐसा कितने ही कहते हैं। यह (सरल) नहीं था, बापू! यह तेरा सत्य नहीं था। आहाहा!

यह तो सच्चिदानन्द प्रभु, एक समय में पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन भावप्राण से जीनेवाला ऐसा भगवान कारणजीव, वह शक्ति अपेक्षा से कारणशुद्ध जीव है। **जो कारणशुद्ध जीव को भाता है...** कारणशुद्ध जीव में जिसकी एकाग्रता होती है, आहाहा! यह मोक्षमार्ग। **कारणशुद्ध जीव को भाता है...** उसकी भावना करता है, वह पर्याय। आहाहा!

त्रिकाली भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप, कारणशुद्ध जीव की एकाग्रता-स्व सन्मुख

होकर एकाग्रता-भाव की भावना करता है, त्रिकाली ज्ञायकभाव की भावना भाता है। **उसी का आश्रय करता है,...** दूसरी व्याख्या की। कारणशुद्ध जीव त्रिकाली भगवान का आश्रय करता है, अवलम्बन करता है। **वह व्यक्ति-अपेक्षा से शुद्ध...** वह प्रगट अपेक्षा से **शुद्ध (केवलज्ञानादि सहित) होता है,...** लो। समझ में आया? ऐसी सब सूक्ष्म बातें। ऐसा मार्ग, भाई! बहुत सूक्ष्म है। अपूर्व है न? अनन्त काल में कभी ख्याल में लिया नहीं। समझ में आया?

भगवान सूक्ष्म चैतन्यतत्त्व, उस कारणशुद्धजीव की भावना करते-करते आश्रय करता है, वह कार्य-व्यक्ति अपेक्षा से शुद्ध होता है। **अर्थात् 'कार्यशुद्ध जीव' होता है।** इस ओर नोट (फुटनोट) **'कार्यशुद्ध जीव' होता है।** कार्य कहो, या पर्याय कहो; कारण कहो या द्रव्य कहो। समझ में आया? त्रिकाली ज्ञायक पूर्णानन्दस्वरूप ध्रुव, वह कारणजीव। उसके सन्मुख होकर, कारणजीव की भावना भाता है, भावना करता है, एकाग्रता करता है, वह जीव कार्यशुद्ध होता है। आहाहा! केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द यह दशा उसे प्राप्त होती है, तो वह कार्यशुद्ध हुआ, पर्याय से कार्यशुद्ध हुआ, पर्याय पूर्ण शुद्ध हो गयी। आहाहा! कारणशुद्ध था, उसकी एकाग्रता से, स्वसन्मुख की एकाग्रता से कार्यशुद्ध जीव हो गया, पर्याय शुद्ध हो गयी। शक्ति में जो द्रव्य शक्तिरूप था, उसकी भावना करने से पर्याय शुद्ध हो गयी। पर्याय शुद्ध कहो या कार्यशुद्ध कहो। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, कान्तिभाई! सूक्ष्म बातें हैं, भाई! कहीं श्वेताम्बर में सुनने को मिले, ऐसा नहीं है। यह तो सत्य वस्तु अनादि सनातन भगवान है। आहाहा!

कहते हैं, एक तो पहले कहा कि संग्रहनय से जीव दस प्राण से जीता है। जीव उसे कहा, पश्चात् निश्चय से भावप्राण से जीता है, व्यवहार से द्रव्यप्राण से जीता है। पश्चात् शुद्ध सद्भूतव्यवहार से जीता है, (ऐसा कहा) भगवान को केवलज्ञान-केवलदर्शन हुए, वह कार्यशुद्ध हुआ। पर्याय शुद्ध हुई, तो पर्याय कार्यशुद्ध हुई कहाँ से? - कि शक्ति में कारणशुद्धता पड़ी है, उस कारणशुद्धता की भावना से कार्यशुद्ध हुआ, द्रव्य शुद्धता की भावना से पर्याय पूर्ण शुद्ध हो गयी। कार्य कहो या पर्याय, पूर्ण शुद्ध हो गयी। आहाहा! कितना याद रखना इसमें? याद कुछ नहीं (रखना), वस्तुस्थिति ही ऐसी है। अरे! परन्तु कभी सम्हाल नहीं की। मान लिया, परन्तु अन्दर स्वरूप क्या है! उसका अनुभव नहीं किया। ग्यारह अंग में आया था, माना था, भूल कहाँ गया था? ऐसा है और ऐसा है। समझ में आया? वस्तुस्थिति जो है, उस ओर का स्पर्श करके कार्यशुद्ध होना, वह परमात्मा-कार्यपरमात्मा हुआ। कार्यपरमात्मा कहो,

पर्याय -परमात्मा कहो, कार्यजीव कहो, आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : संक्षिप्त में समझा दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह संक्षिप्त में कहा न।

त्रिकाली कारणशुद्धस्वरूप भगवान विराजता है, उस कारणशुद्ध की प्रतीति और ज्ञान, रमणता करने से कार्य शुद्ध अर्थात् पर्याय पूर्ण शुद्ध हो जाती है, उसे कार्यजीव कहने में आता है। आहाहा! उसका पूरा रूप आये बिना शब्द अधूरा रहा न? आहाहा! धर्म कैसे हो और धर्म का कार्य—फल क्या है, ये तीनों बातें आ गयी। तीन लोक का नाथ भगवान पूर्ण शुद्ध एक समय में यहाँ है, वह कारणशुद्ध जीव है। उसकी भावना करने से अन्तर्मुख, सन्मुख होने से पर्याय में पूर्ण कार्य शुद्ध हो जाता है, वह कार्यशुद्ध जीव, कार्यपरमात्मा कहा जाता है। तीनों बातें सिद्ध की हैं।

मोक्ष का मार्ग जो निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह भाता है अर्थात् पर्याय में आया। उसका कारण त्रिकाली जीव है। आहाहा! मार्ग ही ऐसा है। त्रिकाली कारणजीव है, वही कारणपरमात्मा है, वह कारणशुद्ध है। कारणशुद्ध है, वह कारणजीव है, वह कारणपरमात्मा है। उसकी एकाग्रता से कार्यपरमात्मा, कार्यशुद्ध जीव, पूर्ण शुद्ध पर्याय (होवे), उसे कार्यजीव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसका उपाय भी कहा, उपाय का कारण भी कहा और उपाय का फल भी कहा। ऐसी बात है। वह क्रियाकाण्ड से नहीं मिलता, ऐसा कहते हैं।

श्रोता : यहाँ भेद पाड़कर कहना, वह क्रियाकाण्ड है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद पाड़कर, यह तो समझाना वह भेद है परन्तु समझनेवाला है, वह भेद पर लक्ष्य नहीं करता। भेद समझाते हैं, परन्तु समझनेवाला और समझानेवाले को भेद का आश्रय नहीं करना चाहिए। आठवीं गाथा में आया है न? भेद से समझाया जाता है परन्तु भेद का आश्रय करना है, ऐसा नहीं। आहाहा! दूसरा उपाय नहीं मिलता न! भेद से समझावे कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। लो! परन्तु कहते हैं कि उस भेद का अनुसरण नहीं करना, त्रिकाल का अनुसरण करना। आहाहा! समझ में आया? मार्ग, भाई! बहुत अलौकिक है। यह तो सहज वस्तु है। समझ में आया?

त्रिकाली सहजात्मस्वरूप भगवान, वह कारणशुद्ध, वह कारणपरमात्मा है। उस सहज भगवान की प्रतीति भी सहज है। श्रीमद् में आता है न? 'पाँचों उत्तर से हुआ समाधान सर्वांग, होगी मोक्ष उपाय की सहज प्रतीति यह रीति।' वह सहज है, वहाँ हठ नहीं है, वह तो सहज

स्वरूप ही है। आहाहा! समझ में आया? देखा? 'पाँचों उत्तर से हुआ समाधान सर्वांग, होगी मोक्ष उपाय की सहज प्रतीति यह रीति।' दूसरी भाषा है 'आत्मा विषय प्रतीत।' 'पाँचों उत्तर से हुई आत्मा विशेष प्रतीति, होगी मोक्ष उपाय की सहज प्रतीति यह रीति।' आहाहा!

श्रोता : सहज प्राप्त होता है, पुरुषार्थ से नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस सहज का अर्थ ही पुरुषार्थ है। सहज का अर्थ हठ नहीं, ऐसा। समझ में आया? सहजात्मस्वरूप। यह शब्द उन लोगों का है। श्रीमद् का वह मन्त्र है। सहजात्मस्वरूप वह मन्त्र है। श्रीमद् को सुनते हों, उन्हें गुप्त मन्त्र दो। सहजात्मस्वरूप परमरूप।

श्रोता : गोवर्धनभाई ऐसा देते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब देते थे। लल्लूजी भी देते थे। ऐसा रिवाज है, वह उन्हें खबर है। सहजात्मस्वरूप। स्वाभाविक आत्मस्वरूप जो त्रिकाल, वही परम गुरु और परमदेव है। आहाहा!

यहाँ अपने नीचे नोट (फुटनोट) है। **व्यक्ति-अपेक्षा से शुद्ध (केवलज्ञानादि सहित) होता है,..** व्यक्ति अर्थात् प्रगट, शक्ति अपेक्षा से अप्रगट। पर्याय की अपेक्षा से। वस्तु है, वह तो प्रगट ही है, परन्तु पर्याय में प्रगट नहीं, इस अपेक्षा से। शक्ति अपेक्षा से अप्रगट और व्यक्ति अपेक्षा से प्रगट। मार्ग तो अन्तर की समझ से है, भाई! यह कोई बाह्य क्रियाकाण्ड से मिले, ऐसी चीज़ नहीं है। समझ में आया? यहाँ आया। **शक्ति में से व्यक्ति होती है;...** नोट में है न? **शक्ति में से व्यक्ति होती है;...** शक्ति है, उसमें से प्रगट होता है। **इसलिए शक्ति, कारण है और व्यक्ति, कार्य है।** यह तो समझे आये ऐसी बात है। नानालालजी! पीपर का दृष्टान्त नहीं दिया था? छोटी पीपर। छोटी पीपर में चौंसठ पहरी चरपराहट भरी है। चौंसठ पहरी कहो। चौंसठ पहरी कहते हैं। रुपया, सोलह आना। पहले (एक रुपये में) चौंसठ पैसे होते थे न? अब सौ पैसे। अब सब बदल गया। किलो-फिलो, किलोमीटर न! अपने को तो याद भी नहीं रहता। यह चौंसठ पैसा, अर्थात् चौंसठ पहर, चौंसठ पहर घोंटे तो शक्ति में चौंसठ पहर थी, वह पर्याय में चौंसठ पहरी प्रगट हुई। प्राप्त की प्राप्ति है। उसमें थी, वह बाहर आयी है। न हो, वह बाहर आवे? आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा में शक्ति अपेक्षा से सोलह आना अर्थात् रुपया-रुपया पूर्ण, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति ऐसी शक्ति से पूर्ण भरा है, उसे कारणजीव कहते हैं, उसे कारणपरमात्मा कहते हैं। व्यक्ति अपेक्षा से, उस शक्ति में एकाग्रता की घोंटन से, जैसे पीपर को घोंटते हैं। पीपर कहते हैं न? चौंसठ पहरी शक्ति में से व्यक्ति प्रगट अन्दर में है, वैसी

बाहर आती है। वैसे भगवान आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, चौंसठ अर्थात् पूर्ण, पूर्ण रुपया- रुपया पड़ा ही है। उसकी एकाग्रता से, अन्तर की एकाग्रता के घोंटन से शक्ति में से व्यक्ति अर्थात् पूर्ण परमात्मा प्रगट होता है, उसे कार्यजीव कहते हैं। आहाहा! यह करना है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

ऐसा होने से शक्तिरूप शुद्धतावाले जीव को... शक्तिरूप शुद्धतावाले जीव को **कारणशुद्ध जीव कहा जाता है...** कारणशुद्ध जीव। **शक्तिरूप शुद्धतावाले जीव को कारणशुद्ध जीव कहा जाता है और व्यक्त शुद्धतावाले जीव को कार्यशुद्ध जीव कहा जाता है।** कोष्ठक में **(कारणशुद्ध, अर्थात् कारण-अपेक्षा से शुद्ध,...)** कारणशुद्ध क्यों कहा ?—कि कारणशुद्ध का अर्थ—कारण अपेक्षा से शुद्ध। **(अर्थात् शक्ति -अपेक्षा से शुद्ध। कार्यशुद्ध, अर्थात् कार्य-अपेक्षा से शुद्ध, अर्थात् व्यक्ति-अपेक्षा से शुद्ध।)** इतना तो स्पष्टीकरण किया है। टीका में यहाँ तक आये।

शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का आधार... इस केवलज्ञान को गुण कहा; है तो पर्याय। **शुद्धगुणों का आधार होने के कारण 'कार्यशुद्ध जीव' है। अशुद्ध-सद्भूत -व्यवहार से मतिज्ञानादि विभावगुणों का आधार होने के कारण 'अशुद्धजीव' है।** यह क्या कहते हैं ? पूर्ण केवलज्ञान हुआ, वह तो कार्यशुद्ध जीव है परन्तु नीचे मति-ज्ञानादि पर्याय है, वह अभी अपूर्ण है न ? इसलिए अशुद्ध कही परन्तु है अपनी पर्याय में, इसलिए सद्भूत है। भेद पड़ा इसलिए व्यवहार है। **मतिज्ञानादि विभावगुणों का आधार होने के कारण...** आहाहा! केवलज्ञानादि कार्यशुद्ध जीव कहा, तो वह शुद्ध सद्भूतव्यवहार कहा। परन्तु यहाँ अशुद्ध सद्भूतव्यवहार। अपने में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि है, वह अपूर्ण है, इसलिए अशुद्ध कहा परन्तु अपनी पर्याय में है, इसलिए सद्भूत कहा, परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से भेद पड़ता है, इसलिए व्यवहार कहा। **अशुद्ध-सद्भूत-व्यवहार...** आहाहा! समझ में आया ?

केवलज्ञान, वह शुद्ध सद्भूतव्यवहार। शुद्ध है, अपने में है और त्रिकाल की अपेक्षा से पर्याय भेद है, इसलिए व्यवहार। मतिज्ञानादि अपूर्ण है, इसलिए अशुद्ध, परन्तु अपनी पर्याय में है, इसलिए सद्भूत, अशुद्ध व्यवहार भेद है, त्रिकाली की अपेक्षा से पर्याय भेद है तो अशुद्ध सद्भूतव्यवहार। लोगों को अभ्यास नहीं, ऐसे पर का अभ्यास किया। द्रव्य-गुण-पर्याय का अभ्यास (नहीं है)। यह अभ्यास बाहर का। जो चीज़ है, उसे समझने का अभ्यास नहीं किया। द्रव्य किसे कहे ? गुण किसे कहे ? पर्याय किसे कहे ? कारण किसे कहे ? कार्य

किसे कहे ? जो मूल चीज़ है, वह तो समझ में आये नहीं। जिन्दगी चली जाती है। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ आया। **अशुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से मतिज्ञानादि...** मतिज्ञान, श्रुतज्ञान है अपनी पर्याय, परन्तु पूर्ण नहीं है, इसलिए अशुद्ध है और पर्याय है, इसलिए व्यवहार है। त्रिकाल की अपेक्षा से पर्याय, वह तो व्यवहार हुआ। अशुद्ध सद्भूतव्यवहार। समझ में आया ? जो जाननेयोग्य चीज़ है। **मतिज्ञानादि विभावगुणों...** देखो! इन्हें विभावगुण कहा। उनको शुद्ध गुण कहा था। केवलज्ञान को शुद्ध गुण कहा था। है तो शुद्ध पर्याय। यह भी है तो पर्याय परन्तु विभावपर्याय है। एक जीव की व्याख्या करने पर इतनी करते हैं। जीवो जीवा। आहाहा! विपरीत घोटाला बहुत उठा है न ? इसलिए सब सुलटा समझाने में सब पहलू (स्पष्ट) करने पड़ते हैं। सेठियों को निवृत्ति नहीं मिलती, मानो कमाने में उसमें पड़े हों। घण्टे दो घण्टे जाए और सिर पर कहता हो वह, जयनारायण। सेठ! आहाहा! समय मिलता नहीं, समय। कान्तिभाई! आहाहा! ऐसा भगवान कहते हैं। जीव के कितने प्रकार किये! आहाहा!

श्रोता : ये सब भेद तो राग उत्पन्न करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग उत्पन्न करते हैं परन्तु जाननेयोग्य हैं या नहीं ? व्यवहार भी जाननेयोग्य है या नहीं ? आदरनेयोग्य त्रिकाली चीज़ परन्तु व्यवहार है, वह जाननेयोग्य है या नहीं ? केवलज्ञान, वह व्यवहार है। आहाहा! व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। कहा न ? व्यवहार है, वह जाना हुआ प्रयोजनवान है; आदरणीय नहीं। आदरणीय त्रिकाली भगवान है। आहाहा! और उत्पन्न-प्रगट करने की अपेक्षा से, संवर-निर्जरा उपादेय कहने में आते हैं। समझ में आया ? आस्रव और बन्ध तो हेय की अपेक्षा से जाननेयोग्य है। जानना तो इसका स्वरूप है या नहीं ?

अशुद्ध-सद्भूत-व्यवहार... केवलज्ञान में **शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार...** ऐसा दोनों में अन्तर डाला है। पूर्ण शुद्ध पर्याय को शुद्ध सद्भूत; अपूर्ण शुद्ध पर्याय को अशुद्ध सद्भूत। व्यवहार तो दोनों व्यवहार हैं। आहाहा! अशुद्ध जीव है और **शुद्ध निश्चय से...** आहाहा! **सहजज्ञानादि परमस्वभाव गुणों का आधार होने के कारण...** यह त्रिकाली गुण लेना। उसमें भी शुद्ध गुण लिए थे परन्तु वह पर्याय थी और यह तो **शुद्ध निश्चय से...** आहाहा! स्वभाविक ज्ञान, स्वभाविक त्रिकाली दर्शन, स्वभाविक त्रिकाली आनन्द - ऐसे परमस्वभाव गुण। वे तो गुण ही हैं। उनका **आधार होने के कारण 'कारणशुद्ध जीव' है।** मांगीलालजी! कितना याद रखना ? एक जीव शब्द पहला पड़ा है, उसकी यह सब व्याख्या है। आहाहा!

शुद्ध निश्चय से... त्रिकाल। क्योंकि पहला तो (शुद्ध) सद्भूतव्यवहार था केवलज्ञान आदि और मतिज्ञानादि अशुद्ध सद्भूत था। यह तो त्रिकाली। भगवान आत्मा में शुद्ध निश्चय से सहज ज्ञान, सहज दर्शन, सहज आनन्द आदि **परमस्वभाव गुणों का...** यह तो एक गुण है। **आधार होने के कारण 'कारणशुद्ध जीव' है।** आहाहा! अब **यह (जीव) चेतन है;...** यह जीव चेतन है। **इसके चेतन गुण हैं।** इसके सब गुणों को चेतन (गुण) कहने में आता है। अपेक्षा से, हों! नहीं तो भगवान आत्मा में जानन-देखन जो उपयोग है, वह जीव है और यह दर्शन-ज्ञानादि के अतिरिक्त हैं, वे तो वहाँ उपयोग से अन्य कहकर अन्यत्व कहा है। सप्तभंगी चली है। उपयोग से है, अनुपयोग से नहीं वह उपयोग। वीर्य है, वह उपयोग नहीं। उपयोग तो ज्ञान-दर्शन है और वह जीव है।

श्रीमद् में तो प्रश्न किया है, भाई! इस वीर्य को जीव कहना या अजीव? वह है तो जीव। चेतन की अपेक्षा से शुद्ध गुण को चेतन कहा, परन्तु उसके दो भाग करना हो तो उपयोग को चेतन कहना और दूसरे को चेतन नहीं कहना। ऐसी बात है, भाई! सूक्ष्म बात है। समझ में आये ऐसा है, हों! समझ में नहीं आवे, ऐसा नहीं है। भाषा कहीं ऐसी कठिन नहीं है। सादी भाषा में अकेला तत्त्व है। **यह (जीव) चेतन है; इसके चेतन गुण हैं। यह अमूर्त है;...** भगवान आत्मा अमूर्त है, तो **इसके अमूर्त गुण हैं। यह शुद्ध है; इसके शुद्ध गुण हैं।** यह शुद्ध है न शुद्ध? इसके गुण शुद्ध हैं। **यह अशुद्ध है; इसके अशुद्ध गुण हैं।** पर्याय ली है। यहाँ गुण शब्द से पर्याय लेना। **पर्याय भी इसी प्रकार हैं।** अशुद्ध और शुद्ध, ऐसा। यह गुण, पर्याय की व्याख्या पाठ में है न यह? **णाणागुणपज्जएहिं संजुत्ता** चौथा पद है न? इसकी व्याख्या की। **जीवा णाणागुणपज्जएहिं संजुत्ता** पश्चात् **पोग्गल णाणागुणपज्जएहिं संजुत्ता** ऐसा लेंगे। टीका की है। यह जीव की बात हुई। अब, पुद्गल की बात करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

५

श्री नियमसार, गाथा-९-१०, श्लोक-१६, प्रवचन - १५२
दिनांक - १४-०१-१९७६

यह नियमसार का जीव अधिकार चलता है। जीव की व्याख्या आ गयी। छह द्रव्य के नाम आये न? ९वीं गाथा। उसमें छह द्रव्य हैं, उन्हें द्रव्य-गुण-पर्याय सहित श्रद्धा में लेना, उसे व्यवहार समकित कहा जाता है। छह द्रव्य और उनके गुण। पाठ है न? **णाणागुणपज्जएहिं** उनका यथार्थ द्रव्य-गुण और पर्याय का ज्ञान करके श्रद्धा करनी। परन्तु निश्चयसम्यग्दर्शन सहित की बात है। व्यवहार सम्यग्दर्शन शुभरागरूप है, वह कहीं सम्यग्दर्शन नहीं है तथा वह सम्यग्दर्शन की पर्याय भी नहीं है, परन्तु अन्तर में पूर्ण ज्ञायकस्वभाव, चैतन्य का अवलम्बन लेकर जो प्रतीति ज्ञान के अनुभव में होती है, उसका नाम निश्चयसम्यग्दर्शन है। वहधर्म की पहली सीढ़ी है। आहाहा! जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन है, परिणमनरूप, गमनरूप, निरन्तर परिणमन। ऐसा यहाँ जानने में आया। जीव की व्याख्या की।

अब आज पुद्गल आया है। है? पुद्गल। पृष्ठ २३ पर है। **जो गलन-पूरण स्वभावसहित है...** क्या कहते हैं? यह शरीर, वाणी, मन, कर्म, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, जगत की चीज़, ये जितने पुद्गल हैं, वे सब **गलन-पूरण स्वभावसहित है (अर्थात्, पृथक् होने और एकत्रित होने के स्वभाववाला है),...** वे परमाणु इकट्ठे होते हैं और पृथक् पड़ते हैं। यह पुद्गल का स्वभाव है। कोई इकट्ठे करे और भिन्न करे तो भिन्न पड़ें, ऐसा नहीं है। समझ में आया? इस शरीर के रजकण हैं, और वे इकट्ठे हुए हैं, वे तो पुद्गल के स्वभाव का कारण हुए हैं और पृथक् हो जाते हैं तो पूरण-गलनरूप उनका स्वभाव है तो पृथक् होते हैं। आहाहा! लड्डू बँधता है लड्डू, वे इकट्ठे हुए और चूरा होता है, वह दाँत से चूरा होता है, ऐसा नहीं है। वह चूरा-भेद होने का उसका स्वभाव होने से चूरा होता है। समझ में आया? यह रोटी है न, रोटी! पुद्गल इकट्ठे हुए तो रोटी हुई। अब उसके टुकड़े होते हैं तो उसके गलनस्वभाव के कारण टुकड़े होते हैं। दाँत से टुकड़े होते हैं या हाथ से टुकड़े होते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा!

श्रोता : .....करके खाना या ऐसा का ऐसा खाना चाहिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन खाता है? आहाहा!

देखो! दूसरा शब्द आता है न? **जीवा** और बाद में **पोग्गलकाया** मूल गाथा में, तो पुद्गल की बात चलती है। **गलन-पूरण स्वभावसहित है...** परमाणु में पृथक् पड़ने का और इकट्ठा होने का स्वभाव सहित पुद्गल होता है। समझ में आया? रोटी, दाल-भात इत्यादि आते हैं ने? वे तो उनके कारण से आते हैं। लोग नहीं कहते? 'दाने-दाने पर खानेवाले का नाम है'—इसका अर्थ क्या? हमारे गुजराती में कहते हैं 'खानेवाले का नाम है।' नाम का अर्थ? जो परमाणु यहाँ आनेवाले हैं, वे आयेंगे और नहीं आनेवाले नहीं आयेंगे, यह पुद्गल का स्वभाव है। सेठ! ऐसी बात है। आहाहा! समझ में आया? यह शरीर, वाणी, मन, कर्म, तैजस, कार्मणशरीर वह पुद्गल का-पूरण का / इकट्ठे होने का उसका स्वभाव है। आत्मा ने राग किया तो कर्म इकट्ठे हुए - ऐसा नहीं है।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है ही नहीं। उस पुद्गल में इकट्ठा होना और पृथक् होना, वह पुद्गल का (स्वभाव है)। है? यह तो शास्त्र सिद्धान्त है। पूरण-गलन पूरण स्वभावसहित है। गलन और पूरण स्वभावसहित है। आहाहा! समझ में आया? शरीर, वाणी, मन आदि और दाल, भात, सब्जी आदि या मोसम्बी इन सबका इकट्ठा होना और पृथक् पड़ने का इनका स्वभाव है। कोई ले तो इकट्ठे हों और तिनका होता है, उसका टुकड़ा करे तो टुकड़ा होता है, ऐसा नहीं है। उसका टुकड़ा होने का गलन स्वभाव है तो टुकड़ा होता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! भगवान ने कहे हुए द्रव्य हैं और द्रव्य का स्वभाव कैसा है, वह यहाँ चलता है। आहाहा! समझ में आया? यह तुम्हारी दवा। यह डॉक्टर है न? दूसरा कहाँ गया? दूसरा जामनगर गया। ये दवा रजकण जहाँ जानेवाले हैं, वे उनके कारण से वहाँ जाते हैं। डॉक्टर इंजेक्शन देता है और वहाँ जाते हैं - ऐसा नहीं है।

श्रोता : तो फिर डॉक्टर को फीस देना या नहीं देना?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो फीस के रजकण वहाँ जाने के हों तो गये बिना रहते नहीं। वे फीस के परमाणु हैं न, क्या कहलाता है तुम्हारे? नोट। वह नोट जाना होगा जो जाएगा ही। वह उसके कारण से जाएगा। देनेवाले के कारण से जाएगा - ऐसा नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया? क्या कहा? देखो न!

जो **गलन-पूरण स्वभावसहित है...** पुद्गल का स्वभाव ही ऐसा है। पुद्गल—पुद्=इकट्ठा होना; गल=पृथक् पड़ना, उसका स्वभाव है। आहाहा! श्रीमद् तो एक बार ऐसा

भी कहते थे। 'श्रीमद् राजचन्द्र', पत्र में है कि तिनके के दो टुकड़े करने की शक्ति हमारे में नहीं है। तिनका (तृण) होता है न? तिनका। उसके दो टुकड़े हम नहीं कर सकते। तब लोग ऐसा भी जाने कि बस इतना! परन्तु वह टुकड़ा होता है, वह गलन है और इकट्ठा होता है, वह पूरण है, वह उसके स्वभाव सहित है। अपने-आत्मा के कारण से और आत्मा को विकल्प आया, इसलिए वहाँ गलन होता है (-ऐसा नहीं है)। दाढ़ के नीचे रोटी का टुकड़ा होता है, तो वह टुकड़ा होने का गलन स्वभाव है, उससे होता है; दाँत से नहीं, हाथ से नहीं, इच्छा से नहीं। ऐसी बात है। इस प्रकार पुद्गल का स्वभाव है, ऐसा इसकी श्रद्धा में लेना चाहिए, तब तो अभी व्यवहार श्रद्धा है। आहाहा! समझ में आया?

(पृथक् होने और एकत्रित होने के स्वभाववाला है),... देखो! भाषा तो बहुत संक्षिप्त। आहाहा! ये पृष्ठ बनते हैं, ये एकत्र होते हैं, वे उसके कारण, जीर्ण होते हैं तो उसके कारण से जीर्ण होता है। बहुत ध्यान रखे तो रहे और ध्यान न रखे तो टूट जाए, ऐसा नहीं है। उसके (पूरण-गलन के) कारण से है। आहाहा! **वह पुद्गल है।** है न? **गलन-पूरण स्वभावसहित है...** स्वभाव गलन-पूरणस्वभाव सहित हैं। एकत्र होना, पृथक् पड़ना, इस पुद्गल के स्वभाव सहित है, उसका (यह) स्वभाव है। आहाहा! पैसा आना-जाना, वह पुद्गल का स्वभाव है। आहाहा!

श्रोता : चौथे काल की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों काल की बात है। सेठ! यह कहते हैं, चौथे काल की बात होगी। सेठ को पैसा बहुत आता है। कानपुर जाता है। पचास-पचास हजार, पच्चीस-पच्चीस हजार की उगाही आती है। कानपुर जाता है। महीने में दो-पाँच लाख तो ले आवे।

श्रोता : कागज है....

पूज्य गुरुदेवश्री : भले कागज है, परन्तु वह, वह नोट अभी वह है न! वह आना और जाना, यह पुद्गल के स्वभाव के कारण से है। कोई कहे कि मैंने लक्ष्मी दी, इस बात में कुछ दम नहीं है। लक्ष्मी के परमाणु जहाँ जाने के होंगे, वहाँ वे जाएँगे और एकत्र होने होंगे, वे एकत्र होंगे। जीर्ण अर्थात् गलन होने होंगे तो गलन होंगे। यह पुद्गल, पुद्गल—एकत्र होना और पृथक् पड़ना, यह पुद्गल के स्वभावसहित है, उसका स्वभाव है। दूसरा प्राणी उसे पूरण-गलन करे, ऐसा है नहीं। यह वस्तु की श्रद्धा पुद्गल इसे कहते हैं। ऐसे स्वभावसहित है, ऐसी श्रद्धा करना। कोई ले-दे सकता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई ले नहीं जाता। ऐसे दृष्टान्त बने, वे तो उसके कारण से होते हैं। कौन ले जाए और कौन दे जाए? आहाहा! समझ में आया? यह पुद्गल शब्द, ऐसा भगवान कहते हैं '**पोग्गल...**' '**पोग्गल**' है न? '**पोग्गल**' पुद्गल अर्थात् रजकणों का एकत्र होना और रजकणों का पृथक् पड़ना, उस स्वभावसहित है, वह पुद्गल का स्वभाव है। कोई दूसरा दे सके-ले सके, ऐसी चीज़ ही नहीं है। पुद्गल का ऐसा स्वभाव, ऐसी जिसे श्रद्धा हो, उसे यथार्थ श्रद्धा कहा जाता है। मैं पुद्गल को ले सकता हूँ, ले सकूँ तो वह श्रद्धा मिथ्या है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भगवान!

श्रोता : जीव नहीं करता परन्तु पुद्गल, पुद्गल को तो करता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल, पुद्गल को करता है - ऐसा नहीं है। एक पुद्गल दूसरे पुद्गल को नहीं करता।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। वह स्वयं से होता है।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं... नहीं.. बिल्कुल नहीं। मशीन के कारण से हुआ ही नहीं, यह उसके कारण से हुआ है। सेठ! यह मशीन आयी न मशीन! उसने बनाया। ऐसा कि मशीन ने बनाया? नहीं। अनन्त-अनन्त परमाणु भिन्न-भिन्न अपने कार्य-कारण से परिणमित होते हैं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! समझ में आया?

यहाँ तो भगवान ऐसा कहते हैं कि पुद्गल जो जगत में हैं, उसके स्वभावसहित गलन-पूरण है, ऐसा माने तो पुद्गल को माना, परन्तु मैं पुद्गल को दे सकता हूँ, ले सकता हूँ, तोड़ सकता हूँ - ऐसा माने तो उसे पुद्गल के स्वभाव की खबर नहीं है। समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! आहाहा! सम्प्रदाय में तो बहुत भ्रम चलते हैं। मैं ऐसे देता हूँ, आहार मैं देता हूँ और आहार मैंने लिया, यह सब मिथ्या बात है। वहाँ जाना और आना, वह पुद्गल का स्वभाव है।

श्रोता : मुनि महाराज को आहार देना या नहीं देना?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन दे-ले? यह तो विकल्प होता है। सूक्ष्म बात है, भाई! छह द्रव्यों में जिस द्रव्य का जैसा जितना स्वभाव है, ऐसा जाने तो उस द्रव्य को व्यवहार से माना

कहा जाए। व्यवहार श्रद्धा है न! यह तो व्यवहार श्रद्धा की बात है। आहाहा! समझ में आया? यह तो शास्त्र है, सिद्धान्त है। एक-एक शब्द में बहुत मर्म भरा पड़ा है। आहाहा! यहाँ कफ है। बलखा समझते हो? कफ। तो कफ थू करने से छूटता है, वह आत्मा की पर्याय से छूटता है, ऐसा नहीं है - ऐसा कहते हैं। उसके छूटने का स्वभाव है, इसलिए छूटेगा। समझ में आया? पूरण-गलन उसका स्वभाव है। जो पूरण-गलन स्वभाव पुद्गल स्वभावसहित है तो दूसरा कहता है कि मैं ऐसा करता हूँ - वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? एक बात। दूसरी बात।

यह (पुद्गल) श्वेतादि वर्णों के आधारभूत मूर्त है;... अब यह क्या कहते हैं? प्रत्येक में मर्म है, न्याय है। इस पुद्गल में श्वेत है, वह तो पर्याय है। परमाणु है न! श्वेत है, वह तो पर्याय है, उसका गुण तो रंग है। जो रजकण है, यह पुद्गल पैसा, लक्ष्मी, यह सब, उस परमाणु में रंग है, वह उसका गुण है, परन्तु श्वेत आदि दशा है, वह तो पर्याय है। समझ में आया? यहाँ तो पर्याय से लिया है देखा!

श्वेतादि... रंग गुण की श्वेत पर्याय, काली पर्याय, हरी पर्याय, सुगन्ध पर्याय, दुर्गन्ध पर्याय। है? **श्वेतादि वर्णों...** सेठ! है? वस्तु क्या कहते हैं? कि प्रत्येक परमाणु पुद्गल जो जड़ है, उसमें श्वेत अर्थात् सफेद, सफेद पर्याय। यह पर्याय है और गुण तो उस परमाणु में रंग नाम का गुण है। वह श्वेत आदि रंगगुण की पर्याय है, अवस्था है। आहाहा! जो रजकण है, वह द्रव्य है और रजकण में रंग, गन्ध, रस, स्पर्श है, वह गुण है और रंग की सफेद, हरी आदि अवस्था है, वह पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? यह तो ऐसी बात है, भाई! वीतराग का मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। एक-एक चीज़ की बहुत महत्ता है। पुद्गल को ऐसा माने कि श्वेत की पर्याय मैंने बनायी, परन्तु वह श्वेत तो उसके रंगगुण की पर्याय है। आहाहा! समझ में आया?

श्वेतादि... रंगगुण की श्वेत पर्याय, गन्धगुण की सुगन्ध आदि पर्याय, स्पर्श आदि की शीत-उष्ण की पर्याय, ऐसा लेना। **श्वेतादि...** है न? श्वेतादि। चन्दुभाई! यह तो पर्याय की बात ली, तो भी वर्णों लिया, देखो! **श्वेतादि वर्णों...** नहीं तो वर्ण-रंग तो त्रिकाली है, परन्तु यहाँ श्वेत अवस्था को यहाँ वर्ण कहने में आया है। समझ में आया? रात्रि को मतिज्ञान का प्रश्न नहीं हुआ था? - कि मतिज्ञान को गुण क्यों कहा? तो कहा न! विभावगुण कहा। विभावगुण। तो विभावगुण का अर्थ क्या? गुण में विभाव होता है? वह पर्याय विभाविक है, मति, श्रुत, अवधि जो ज्ञान है, वह विभाविक पर्याय है। यहाँ पर्याय को गुण से कथन किया

गया है। आहाहा! समझ में आया? यह तो सिद्धान्त है, कोई भी एक शब्द है, उसमें मर्म है। यह कोई कथा-वार्ता नहीं है।

कहते हैं **श्वेतादि वर्णों के...** वर्ण लिया, देखो! श्वेतादि पर्याय शब्द नहीं लिया। **श्वेतादि वर्णों के आधारभूत मूर्त है;...** पुद्गल श्वेतादि पर्याय का आधारभूत मूर्त है। रंग, गन्ध, स्पर्शवाला मूर्त है न! यह लड्डू, दाल, भात, सब्जी, मौसम्बी ये सब श्वेतादि पर्याय के आधारभूत वे मूर्त द्रव्य है, मूर्त द्रव्य हैं, रूपी द्रव्य हैं। आहाहा! समझ में आया? **इसके मूर्त गुण हैं।** उसके गुण मूर्त हैं। रंग, गन्ध, स्पर्श परमाणु के गुण जो हैं, वे मूर्त हैं। **यह अचेतन है; इसके अचेतन गुण हैं।** यह सब अचेतन के अचेतन गुण परमाणु के हैं। आहाहा! यह पुद्गल की बात हुई।

अब धर्मास्ति, अधर्मास्ति। भगवान ने धर्मास्ति, अधर्मास्ति दो द्रव्य देखे हैं। यह बात सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त कहीं नहीं है। अन्य मत में (कहीं नहीं) क्योंकि उसमें सर्वज्ञ नहीं। यहाँ तो सर्वज्ञ जिनके मत में हैं, उन सर्वज्ञ ने धर्मास्ति-अधर्मास्ति देखे हैं। दोनों अरूपी पदार्थ हैं : एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय। उनके कैसे गुण हैं? यह नीचे लिया है। **स्वभावगतिक्रियारूप और विभावगतिक्रियारूप परिणत जीव-पुद्गलों को स्वभावगति का और विभावगति का निमित्त, सो धर्म है।** नीचे स्पष्टीकरण दिया है। नीचे नोट में है एक-एक। **चौदहवें गुणस्थान के अन्त में...** जब सिद्ध होते हैं न, सिद्ध? सिद्ध में पूर्ण ज्ञान हुआ... और चौदहवाँ गुणस्थान प्रगट हुआ **अन्त में जीव, ऊर्ध्वगमनस्वभाव से...** जीव का ऊर्ध्वगमनस्वभाव है। **लोकान्त में जाता है,...** सिद्ध। सिद्ध भगवान ऊपर विराजते हैं न? णमो सिद्धाणं, णमो अरिहन्ताणं तो महाविदेह में अरिहन्त भगवान विराजते हैं। सिद्ध भगवान वहाँ विराजते हैं। यहाँ तीर्थंकर थे, तब णमो अरिहन्ताणं थे। अब तीर्थंकर णमो सिद्धाणं में गये। थोड़ा अभ्यास करना चाहिए, सेठ! पुस्तक ली है। अच्छा किया। थोड़े-थोड़े अभ्यास बिना यह समझ में नहीं आता। ऐसे का ऐसा ऊपर-ऊपर से मान ले, वह सत्य नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि **ऊर्ध्वगमनस्वभाव से लोकान्त में जाता है,...** कौन?-सिद्ध। चौदहवाँ गुणस्थान पूर्ण हुआ न? जब महावीर भगवान आदि जहाँ मोक्ष पधारे, देह छूट गयी और आत्मा गमन में चला गया। वह स्वभावगति है, वह विभाव (गति) नहीं। है? **ऊर्ध्वगमनस्वभाव से लोकान्त में जाता है, वह जीव की स्वभावगतिक्रिया है...** गमन करते हैं, इसलिए विभाव

है, ऐसा नहीं है - ऐसा कहते हैं। यहाँ से आत्मा पूर्ण परमात्मा होकर निकलता है। सिद्ध है वहाँ जाता है, वहाँ रहता है तो यहाँ गति हुई, वह विभाविक नहीं। गति है, इसलिए विभाव है, ऐसा नहीं है। वह स्वाभाविक गति है। समझ में आया? कोई ऐसा कहता है कि यहाँ से गति करता है, तब तक विभाव है, ऐसा नहीं है, (उसकी यह बात) मिथ्या है।

श्रोता : ज्योति में ज्योति मिल जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्योति में ज्योति कहाँ से मिले? अपने स्वरूप में रहते हैं। अनन्त सिद्ध हैं, वहाँ जाता है तो एक सिद्ध में दूसरे सिद्ध मिलते नहीं। यहाँ हजार बत्ती हो, हजार बत्ती हो, तो एक बत्ती का उजाला, दूसरी बत्ती में घुस जाता है? - बिल्कुल नहीं, सबका भिन्न-भिन्न प्रकाश है। आहाहा! वीतरागमार्ग, भाई! इसका व्यवहारश्रद्धा का विषय भी सूक्ष्म है। समझ में आया? व्यवहारश्रद्धा में ऐसा आना चाहिए कि जितने पुद्गल हैं, वे स्वयं से एकत्र होते हैं और स्वयं से पृथक् पड़ते हैं, ऐसे स्वभावसहित पुद्गल हैं। वह स्वभाव दूसरा कर सके, ऐसा है नहीं। आहाहा!

यहाँ तो **स्वभावगतिक्रियारूप से...** परिणत जीव, मोक्ष जाता है तब **और संसारावस्था में कर्म के निमित्त से गमन करता है,...** आत्मा एक भव में से दूसरे भव में जाता है न? **जीव की विभावगतिक्रिया है।** क्योंकि कर्म का निमित्त है। **एक पृथक् परमाणु, गति करता है,...** एक रजकण है न? अन्तिम पॉइन्ट। यह तो बहुत परमाणु एकत्र हुए हैं। अन्तिम एक पाइन्ट, जिसके दो भाग नहीं हों। **एक पृथक् परमाणु,...** पृथक् अर्थात् भिन्न परमाणु। **गति करता है,...** गमन करता है। **वह पुद्गल की स्वभावगतिक्रिया है...** वह अकेला परमाणु पर की अपेक्षा बिना गति करता है तो वह **स्वभावगतिक्रिया है...** एक परमाणु नीचे है। चौदह राजु लोक चला जाए, वह स्वभावगतिक्रिया है। क्यों स्कन्ध नहीं, पिण्ड नहीं, अकेला स्वतन्त्र द्रव्य है। उसकी गति को स्वभावगतिक्रिया कहते हैं। आहाहा!

और पुद्गलस्कन्ध गमन करता है,... यह शरीर। वह विभाव है। बहुत रजकण एकत्र हुए हैं न? तो वह विभावगति क्रिया है। वह आत्मा से नहीं होती। शरीर ऐसा चलता है, वह विभावगतिक्रिया से चलता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो सम्प्रदाय में जन्में (और मान लिया)। हम जैन.. जैन.. वाड़ा के जैन। ऐसा नहीं है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव ने द्रव्य का स्वभाव जैसा स्वतः देखा है, वैसा माने तब तो व्यवहारश्रद्धा कहने में आती है। आहाहा! समझ में आया?

पुद्गलस्कन्ध गमन करता है, वह पुद्गल की... है न? एक परमाणु अकेला गति

करे, वह स्वभावगति है। पुद्गलस्कन्ध गमन करे, यह शरीर, वाणी, पत्थर फेंके, वह गति करे, वह उनकी विभावगति क्रिया है। यह दड़ा होता है न? क्या कहलाता है? गेंद। हमारे (गुजराती में) दड़ा कहते हैं। वह उसकी विभावगतिक्रिया ऐसे होती है। दूसरा मारता है और (गेंद) बाहर जाती है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

यह तो भगवान का देखा हुआ वस्तु का स्वभाव है। आहाहा! है? यह बरसात बरसती है न, बरसात? वह पुद्गलस्कन्ध है। अन्दर एकेन्द्रिय जीव है, वह भिन्न है। दिखता है, वह तो स्कन्ध शरीर है। जैसे यह शरीर दिखता है। आत्मा तो भिन्न है। वैसे पानी की जीव है, वह अन्दर भिन्न है, परन्तु पानी ऊपर से पड़ता है, वह पुद्गल की विभाविक क्रिया से पुद्गल नीचे पड़ता है। आहाहा! ऐसा तो कभी सुना नहीं होगा। मार्ग ऐसा है। पुद्गल का जैसा स्वभाव है, वह स्वत: होता है, ऐसा यथार्थ माने, तब तो पुद्गल की व्यवहारश्रद्धा कहने में आती है। उसकी निश्चयश्रद्धा तो आत्मा की होवे, तब व्यवहारश्रद्धा कही जाती है। आहाहा! समझ में आया?

वह पुद्गल की (स्कन्ध के प्रत्येक परमाणु की)... देखो! क्या कहते हैं? यह अंगुली है न, अंगुली? देखो! हिलती है न? यह विभावगतिक्रिया है। स्कन्ध एकत्र हैं तो उसे विभाव (गतिक्रिया) कहा, परन्तु एक परमाणु अन्दर है, वह भी विभावगतिक्रियावाला है। यह एक चीज़ नहीं, यह तो अनन्त रजकण के पिण्ड हैं। अनन्त परमाणु पॉइन्ट, टुकड़े करते... करते... करते.. अन्तिम रहे, वह एक परमाणु है। ऐसे अनन्त परमाणुओं का पिण्ड है, उसे विभावगतिक्रिया कही, क्योंकि एकत्र होकर हुई न! तो भी उस स्कन्ध में जो रजकण हैं, वह भी विभावगतिक्रिया है। अकेला पृथक् परमाणु हो, वह स्वभावगतिक्रिया है। स्कन्ध में जो परमाणु है, वह विभावगतिक्रिया है। समझ में आया?

विभाव शब्द से (आशय यह कि) दो परमाणु साथ में है, इसलिए विभाव हुए। एक परमाणु भिन्न है तो वह स्वभाव है। ऐसी बातें, भाई! दूसरे जीव को-शरीर को मैं मार सकता हूँ, यह मिथ्या बात है। उस शरीर के पुद्गल का छूटने का समय होगा, तभी छूटेगा। आहाहा! दूसरा कहे कि मैं शरीर की रक्षा करूँ.... यह डॉक्टर तो दवा करते हैं न? ऐई! निरोग बनाते हैं या नहीं? धूल भी नहीं बनाता।

श्रोता : ये सब टुकड़े...

पूज्य गुरुदेवश्री : टुकड़ा-टुकड़ा कौन करे? पुद्गल। गल उसका स्वभाव है, तो

टुकड़े होते हैं। अपने से (आत्मा से) टुकड़े होते हैं, यह बात / मान्यता मिथ्यात्व है। ऐसी बात है, भाई! आहाहा!

यहाँ तो विशिष्टता क्या ली, समझे? यह लेते हैं, देखो न! अनन्त परमाणु है न? यह अनन्त रजकण हैं। यह विभाव है। पृथक् अकेला परमाणु है, वह स्वभाव है। वह अकेला स्वभावगति करता है, परन्तु उसमें (स्कन्ध में) एक-एक परमाणु है, उसकी उसमें विभावगतिक्रिया है। समझ में आया? आहाहा! **इस स्वाभाविक तथा वैभाविकगतिक्रिया में धर्मद्रव्य निमित्तमात्र है।** बस, इतनी बात है। वहाँ धर्मास्ति नाम का द्रव्य-एक वस्तु है। चौदह राजु लोक, चौदह ब्रह्माण्ड प्रमाण धर्मास्ति नाम का अरूपी एक पदार्थ है, उस स्वभावगति या विभावगति में धर्मास्तिकाय का निमित्त है। उपादान स्वयं का है। स्वयं से स्वभावगति करता है, स्वयं से विभावगति करता है, निमित्त धर्मास्तिकाय है। आहाहा! लो! वह यहाँ आया। **जीव-पुद्गलों को स्वभावगति का और विभावगति का निमित्त, सो धर्म है।** अब नीचे।

स्वभावस्थितिरूप से... अब स्वभाव की स्थिति। पहले गति थी। **स्वभावस्थिति-क्रियारूप और विभावस्थितिक्रियारूप परिणत जीव-पुद्गलों को स्थिति का (स्वभाव-स्थिति का तथा विभावस्थिति का) निमित्त, सो अधर्म है।** नीचे फुटनोट में दो (नम्बर) **सिद्धदशा में जीव स्थिर रहता है,...** भगवान विराजते हैं, वहाँ तो सिद्धभगवान स्थिर हैं। एक सिद्ध है, वहाँ अनन्त सिद्ध हैं, स्थिर हैं। लोक-अग्र—लोक के अग्र भाग में। **सिद्धदशा में जीव स्थिर रहता है, वह जीव की स्वाभाविकस्थितिक्रिया है...** स्वाभाविक-स्थितिक्रिया है।

और संसारदशा में स्थिर रहता है, वह जीव की वैभाविकस्थितिक्रिया है। अकेला परमाणु, स्थिर रहता है, वह पुद्गल की स्वाभाविकस्थितिक्रिया है और स्कन्ध स्थिर रहता है, वह पुद्गल की (स्कन्ध के प्रत्येक परमाणु की) वैभाविकस्थितिक्रिया है। आहाहा! यह पृष्ठ ले लो। यह स्कन्ध है, वह ऐसे रहे, वह इसकी वैभाविकस्थितिक्रिया है। बहुत (परमाणु) एकत्र हैं न? तो यह वैभाविकस्थितिक्रिया है, ऐसे स्थिर रहना, वह (वैभाविकस्थिति-क्रिया है)। भगवान का मार्ग सूक्ष्म है। सेठियों को निवृत्ति नहीं मिलती, कमाना-खाना, उसमें रच-पच गये। कदाचित् सुनने जाए, क्यों? मांगीलालजी! इसमें तो समय लेना चाहिए, भाई! वीतराग का ऐसा मार्ग अनन्त काल में मिलता है। उसे समझने में समय देना चाहिए। आहाहा! अपने हित के लिए है न? दूसरे किसके लिए है? क्या कहा? देखो!

(स्कन्ध के प्रत्येक परमाणु की) वैभाविकस्थितिक्रिया है। देखो! समझे? इस

अंगुली में ये परमाणु ऐसे चलते हैं, तो वह स्कन्ध वैभाविक है क्योंकि एक परमाणु नहीं है। अनन्त परमाणु में वैभाविकक्रिया होती है, तो एक-एक परमाणु भी अन्दर वैभाविकक्रियावाला है, एक-एक रजकण है, वह वैभाविकक्रियावाला है। स्कन्ध में आये तो वैभाविक हुए न? उस समय में वैभाविकक्रिया होने के कारण वहाँ रहे हैं। सूक्ष्म बात, भगवान! अभी तो बहुत गप्प (मारते हैं), निमित्त से होता है.. निमित्त से होता है.. क्या होता है? निमित्त तो है, इतना। आहाहा! **जीव-पुद्गल की स्वाभाविक तथा वैभाविक स्थितिक्रिया में...** अधर्मास्तिकाय नाम का एक पदार्थ है। नीचे है न? **अधर्मद्रव्य निमित्तमात्र है।** अधर्मास्तिकाय है। अब इस ओर, २४ पृष्ठ।

(शेष) पाँच द्रव्यों को अवकाशदान (अवकाश देना) जिसका लक्षण है, वह आकाश है। आकाश नाम का अरूपी पदार्थ है, वह लोक और अलोक में सर्व व्यापक है। ये पाँच द्रव्य, पाँच द्रव्य है न? धर्मास्ति, अधर्मास्ति, काल, जीव और पुद्गल। उन्हें **अवकाशदान (अवकाश देना) जिसका लक्षण है, वह आकाश है।** आकाश नाम का पदार्थ लोकालोक में व्यापक है। चौदह ब्रह्माण्ड है, वहाँ भी अरूपी आकाश है और खाली भाग है, वहाँ भी आकाश है। अन्त.. अन्त.. अन्त.. रहित आकाश। ऐसे चारों ओर आकाश व्याप्त है। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त योजन, कहीं अन्त नहीं इतना आकाश है। आहाहा! अन्त होवे तो बाद में क्या? ऐसी बात है। आकाश का अन्त नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह इन **पाँच द्रव्यों को अवकाशदान...** निमित्त है।

(शेष) पाँच द्रव्यों को वर्तना का निमित्त, वह काल है। काल नाम का पदार्थ है। पाँच द्रव्यों को... जीव, पुद्गल (धर्म, अधर्म, आकाश) ऐसे पाँच पदार्थ हैं। वे वर्तते हैं, पलटते हैं। पलटाने में निमित्त हो, वह कालद्रव्य का निमित्त है। पलटना, वह स्वयं का स्वभाव है परन्तु कालद्रव्य उन्हें निमित्त है। समझ में आया? चन्दुभाई! श्वेताम्बर कालद्रव्य को नहीं मानते, उसे उपचार मानते हैं। ऐसा नहीं है। कालद्रव्य वस्तु है। समझ में आया? हमारे नारणभाई ने प्रश्न किया था। अभी कहा था न? जामनगर में (संवत्) १९८८ के वर्ष। तुम्हारे ससुर ज्वालाप्रसाद भी १९८८ के वर्ष में आये थे। ४४ वर्ष हुए। तो वहाँ प्रश्न हुआ था कि भाई! ये श्वेताम्बर कालद्रव्य को नहीं मानते, इसका कारण क्या? हमारे नारणभाई तर्कबाज थे न? कहा था न?

स्वकाल की परिणति स्वतः होती है, इसकी उन्हें खबर नहीं है। स्वकाल की पर्याय पर से भिन्न हो गयी। स्वकाल निर्मल नहीं हुई तो उसने कालद्रव्य को उड़ा दिया। स्वकाल की

परिणति का भान नहीं, उसने कालद्रव्य को उड़ा दिया। ऐई! नवरंगभाई! क्या कहा, समझ में आया? फिर से। उस दिन यह बात नहीं थी। आहाहा! दयाबेन! तुम्हारे दयाबेन। बचूभाई के घर में दयाबेन है न? वे उस दिन वहाँ आयी थी। तब प्रश्न हुआ था। (संवत्) १९८८ के वर्ष की बात है। ४४ वर्ष हुए। तब प्रश्न हुआ कि कालद्रव्य को श्वेताम्बर नहीं मानते, उसका कारण क्या? तो वहाँ हमारे नाराणभाई के साथ चर्चा हुई थी कि स्वकाल का पुरुषार्थ होने से अनुभव होता है, वह हो, उसे स्वकाल है। अनुभव होना, उसे परकाल का-निमित्त का सच्चा ज्ञान होता है परन्तु जिसे स्वकाल का परिणमन नहीं है, उसने काल को उड़ा दिया। भाई! आहाहा! सूक्ष्म बात है। यह तो हमारे बहुत वर्ष से चलता है न! आहाहा! यह क्या कहा?

अपना आत्मा आनन्दस्वरूप है, ज्ञायकस्वभाव है, चैतन्य आनन्दकन्द है, उसके स्वकाल में उसकी परिणति सम्यग्दर्शन हुआ हो तो मेरे काल में मेरा काल पक गया, मेरे काल में मेरी दशा पलटी, उसे दूसरे काल का-निमित्त का सच्चा ज्ञान है, परन्तु जिसके काल की परिणति बदली नहीं, उसे काल यह है और यह है, वह उसे रहा नहीं। सूक्ष्म बात है। भगवानजीभाई! हमारे तो दुकान छोड़ने के बाद यह धन्धा ठेठ से चलता है। दुकान छोड़े हुए ६४ वर्ष हुए। (संवत्) १९६८ के बैशाख से दुकान छोड़ी। ६४ वर्ष हुए। ६० और ४। यह चर्चा तब संसार में भी थोड़ी-थोड़ी चलती थी।

(संवत्) १९६९ के वर्ष में यह चर्चा हुई थी। ईश्वर कर्ता है न, तो कहे, यह वस्तु अनादि-अनन्त है, तो वह अनादि-अनन्त ज्ञात कैसे हो? आदि हो तो जाने। अनादि-अनन्त को किस प्रकार से जाने? ऐसा प्रश्न हुआ था। संवत् १९६९ के वर्ष में। ७० में कम। तब यह दृष्टान्त दिया था।

छाप लगाते हैं न? क्या कहते हैं? छाप लगाते हैं न? गोल, देखा है? कब से शुरु हुआ? ...दिखता है? कहाँ से शुरु हुआ? ....इसी प्रकार अनादि से जानने में आता है। कब से शुरु हुआ? है नहीं न! समझ में आया? यह तो संसार में दीक्षा लेने से पहले चर्चा होती थी। एक काठी था। वहाँ गढडा रहता था। जंगल में जाते तब बुलावे। शरीर छोटा, उम्र २२ वर्ष की और हमारे पिताजी के पिताजी की (दादाजी की) वहाँ गढडा में बहुत प्रसिद्धि थी। बड़े गृहस्थ थे। इसलिए कहे, इनके लड़के का लड़का दीक्षा लेता है और रूपवान शरीर है। तब २२ वर्ष की उम्र। यह क्या? बुलाओ। कि तुम कहते हो कि आत्मा शरीरप्रमाण है, तो वह तो अनित्य हो जाए। नित्य तो व्यापक हो तो नित्य रह सकता है। ऐसा प्रश्न किया। कहा - ऐसा नहीं है। शरीरप्रमाण होने पर भी नित्य है। यह परमाणु नित्य है, परन्तु उन लोगों को

जँचता नहीं। व्यापक माननेवालों को, वेदान्त। वेदान्त सर्व व्यापक एक ही मानता है। सुनते थे। वृद्ध थे। विक्रम खाचर थे, विक्रम खाचर। काठी, काठी थे। गरासदार। यह तो बहुत वर्ष पहले की बात है। ६३-६४ वर्ष पहले की बात है।

बर्तन का दृष्टान्त देते थे। कांसा का बर्तन होता है न? कांसा, कांसा, थाली। दिखती है या नहीं? कहाँ से शुरु हुई? गोल है। इसी प्रकार अनादि-अनन्त चक्कर जैसा है, वैसा ज्ञान में आ गया। समझ में आया? न्याय से स्वभाव कैसा है, ऐसा जानकर मानना न। ऐसे का ऐसा समझे बिना माने तो कहाँ से टिके? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, देखो! परमाणु भी विभावक्रियावाले हैं। आहाहा! है न? **पाँच द्रव्यों को वर्तना का निमित्त, वह काल है।** पाँच द्रव्य परिणमते हैं, उसमें वर्तना.. शास्त्र में तो यहाँ तक आता है कि काल न हो तो परिणमने नहीं। यह तो निमित्त को सिद्ध करने की बात चलती है। समझ में आया? पाठ ऐसा है न? **निमित्त, वह काल है। (जीव के अतिरिक्त) चार अमूर्तद्रव्यों के शुद्ध गुण हैं;...** धर्मास्ति, अधर्मास्ति, काल और आकाश में शुद्ध गुण हैं। उनकी पर्याय भी शुद्ध ही है, पर्याय शुद्ध है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल। जीव और पुद्गल दो में विभाव और स्वभाव है। विभाव जीव और पुद्गल में है, चार में विभाव नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

अब, नवमी गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक द्वारा छह द्रव्य की श्रद्धा के फल का वर्णन करते हैं :— देखो! श्रद्धा का फल वर्णन करते हैं। १६

इति जिनपतिमार्गाम्भोधि-मध्यस्थरत्नं,
द्युतिपटलजटालं तद्धि षड्द्रव्यजातम्।
हृदि सुनिशित-बुद्धिर्भूषणार्थं विधत्ते,
स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः।।१६।।

पद्मप्रभमलधारि मुनिराज का श्लोक है।

इस प्रकार उस षट्द्रव्यसमूहरूपी... छह द्रव्य है न? जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। छह द्रव्य हुए। भगवान केवलज्ञानी परमात्मा जिनेन्द्रदेव ने छह द्रव्य देखे हैं। तीन काल-तीन लोक है, उसमें छह द्रव्य देखे हैं। **इस प्रकार उस षट्द्रव्यसमूहरूपी रत्न को,...** षट्द्रव्यसमूहरूपी रत्न **जो कि (रत्न) तेज के अम्बार के कारण किरणोंवाला है...** यह छह द्रव्य गुण और पर्याय की शक्तिवाले हैं। समझ में आया? **तेज के अम्बार के कारण...** तेज का

अम्बार है न? तेज का पुंज। ऐसे प्रत्येक द्रव्य अपनी शक्ति के तेज से रहता है, किसी के आधार से कोई नहीं है। **तेज के अम्बार के कारण किरणोंवाला है...** गुण, पर्यायवाला है। **और जो जिनपति के मार्गरूपी समुद्र के मध्य में...** यह छह द्रव्य तो वीतरागमार्ग में हैं। जिनपति वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ। समझ में आया? **जिनपति के मार्गरूपी समुद्र...** आहाहा! **मध्य में स्थित है;...** जैनमार्ग में छह द्रव्य स्थित हैं। दूसरे में वे हैं नहीं। आहाहा!

जो तीक्ष्ण बुद्धिवाला पुरुष,... देखो! छह द्रव्य को यथार्थ स्वभाव से माननेवाले को तीक्ष्ण बुद्धिवाला कहते हैं। आहाहा! यह तुम्हारे संसार के काम करे और यह दवाखाना देना, वह सूक्ष्म बुद्धिवाला नहीं, उसका निषेध किया है। **तीक्ष्ण बुद्धिवाला पुरुष, हृदय में भूषणार्थ (शोभा के लिए) धारण करता है,...** छह द्रव्य हैं, ऐसे निश्चय सम्यग्दर्शनसहित व्यवहार समकित को धारण करता है, वह शोभा है। आहाहा! जगत में छह द्रव्य हैं। भगवान ने कहे, वे अनन्त गुण-पर्यायवाले हैं।

वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ होता है... परमश्री अर्थात् लक्ष्मी—केवलज्ञान—मोक्षरूपी लक्ष्मी, परमश्री मोक्षरूपी लक्ष्मी की जो परिणति, कामिनी अर्थात् स्त्री अर्थात् परिणति - अवस्था, उसका वल्लभ होता अर्थात् पूर्ण आनन्दरूपी परिणति उसे छोड़ेगी नहीं। पूर्ण आनन्द की परिणति साथ में रहेगी। आहाहा!

श्रोता : नाम...

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम सीख लेना... ? उसका स्वरूप क्या? द्रव्य क्या? गुण क्या? पर्याय क्या? स्वत: अपनी स्थिति में कैसे रहते हैं? ऐसे ध्यान में लेना है। नाम से.. आहाहा! छह द्रव्य तो भगवान में आये हैं। श्वेताम्बर पाँच द्रव्य को मानते हैं, वे कालद्रव्य को नहीं मानते। पाँच द्रव्य है न? उनकी पर्याय को काल मानते हैं, भिन्न कालद्रव्य नहीं मानते। भगवान के मार्ग में छह द्रव्य हैं। देखो!

जिनपति के मार्गरूपी समुद्र के मध्य में स्थित है; उसे जो तीक्ष्ण बुद्धिवाला पुरुष, हृदय में भूषणार्थ (शोभा के लिए).. यह व्यवहार की श्रद्धा वह व्यवहार की शोभा है न? **धारण करता है, वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी...** परमानन्दरूपी मुक्ति, उस रूपी स्त्री का **वल्लभ होता है...** पूर्ण आनन्द की परिणति का वल्लभ होता है। पूर्ण आनन्द की परिणति उसे छोड़ेगी नहीं। उसे परमानन्द की परिणति होगी। निश्चय सम्यग्दर्शनसहित छह द्रव्य की श्रद्धावाला परम मुक्ति की परिणति को धारण करेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बातें।

(अर्थात्, जो पुरुष अन्तरंग में छह द्रव्य की यथार्थ श्रद्धा करता है, वह मुक्तिलक्ष्मी का वरण करता है)। मुक्तिलक्ष्मी का वरण करता है। समझ में आया? लो, यह ९ गाथा हुई। दसवीं, अब उपयोग की व्याख्या सूक्ष्म चलेगी। पहले जीव लिया था न? जीव को उपयोगस्वरूप कहा है। जीवो, तो उपयोग की व्याख्या करते हैं।

जीवो उवओगमओ उवओगो णाणदंसणो होइ।
णाणुवओगो दुविहो सहावणाणं विहावणाणं ति।।१०।।

नीचे हरिगीत -

उपयोगमय है जीव वह उपयोग दर्शन-ज्ञान है।
ज्ञानोपयोग स्वभाव और विभाव द्विविध विधान है॥१०॥

टीका :—यहाँ (इस गाथा में) उपयोग का लक्षण कहा है। जीव का उपयोग ज्ञान -दर्शन—जानना-देखना, ऐसा उपयोग अर्थात् आत्मा का व्यापार, उसका लक्षण कहा जाता है। आहाहा! द्रव्य की बात की, अब उसके उपयोग की बात करते हैं। आहाहा! **आत्मा का चैतन्य -अनुवर्ती (चैतन्य का अनुसरण करके वर्तनेवाला) परिणाम, सो उपयोग है।** क्या कहा? भगवान आत्मा का चैतन्यस्वभाव जो है, चैतन्यस्वभाव, उसे अनुवर्ती—अनुसरण करनेवाला, **परिणाम, सो उपयोग है।** आत्मा में ज्ञान-दर्शन जो चैतन्यगुण है, चैतन्यद्रव्य, ज्ञान-दर्शनगुण, उसे अनुसरण करनेवाला वर्तमान ज्ञान-दर्शन का परिणाम, उसे उपयोग कहते हैं। समझ में आया? द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों समाहित कर दिये। **आत्मा का...** यह द्रव्य लिया। **चैतन्य...** यह त्रिकाली गुण लिया। **अनुवर्ती...** उसे अनुसरण करनेवाला, यह परिणाम-पर्याय ली।

दूसरे प्रकार से कहें तो भगवान आत्मा जो है, वह वस्तु है और चैतन्य—उसका जानन-देखन त्रिकाली गुण है। उस गुण को अनुसरकर परिणाम होते हैं। यह शरीर, वाणी को सुनता है, उससे चैतन्य के परिणाम होते हैं, ऐसा नहीं है। यह सुनते हैं न? तो सुनने से चैतन्य के परिणाम होते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! आत्मा पदार्थ है, देह से भिन्न है। अब उसका चैतन्यशक्ति स्वभाव है। आत्मा चैतन्यस्वरूप है। आत्मस्वभाव, ऐसा आया था न? वह चैतन्य त्रिकाली उसका स्वभाव है। उस गुण को अनुसरकर होनेवाला जानन-देखन परिणाम, वह उपयोग अर्थात् पर्याय है। ऐसा कहकर यह कहा कि अन्तर में जो जानन-देखन परिणाम होते हैं, वे चैतन्यगुण को अनुसरकर होते हैं। सुनने से होते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

फिर से, **आत्मा का...** आत्मा यह द्रव्य / वस्तु हुई। **चैतन्य...** उसका त्रिकाली गुण हुआ। ज्ञान-दर्शन-चैतन्य वह त्रिकाली गुण। चेतन का चैतन्यगुण। चेतन का चैतन्यगुण। शक्कर का मिठास गुण, ऐसे चेतन का चैतन्यगुण। आहाहा! समझ में आया? वह **चैतन्य-अनुवर्ती...** उसे अनुसरकर। गुण को अनुसरकर पर्याय होती है। जानने-देखने के परिणाम-उपयोग, वह गुण तो अनुसरकर होता है, निमित्त को अनुसरकर होता है - ऐसा है नहीं। आहाहा! यह सुनते हैं न? सुनते हैं तो क्या? सुनने के परमाणु भाषा-जड़ है। जड़ से इसके परिणाम होते हैं?

उपयोग उसे कहते हैं और उपयोग अर्थात् जानने-देखने की पर्याय उपयोग उसे कहते हैं कि जो द्रव्य अर्थात् आत्मा और चैतन्य, उसका गुण; उसे अनुसरकर पर्याय होती है, उसे उपयोग कहते हैं। आहाहा! चन्दुभाई! कैसे हुआ?

फिर से, आत्मा में तीन प्रकार : द्रव्य, गुण और पर्याय। जैसे सोना है, सोना। स्वर्ण वह द्रव्य, पीलापन, चिकनापन वजन, शक्ति वह गुण और कुण्डल, कड़ा, अंगूठी वह पर्याय है। तीन हुए न? इसी प्रकार भगवान आत्मा स्वर्ण समान त्रिकाल, वह द्रव्य और स्वर्ण में जैसे चिकनापन, वजन, पीलापन वह गुण है, वैसे चैतन्य, आत्मा का गुण है। जानना-देखना त्रिकाल गुण है, और जैसे कुण्डल, कड़ा, अंगूठी अवस्था / पर्याय है, वैसे गुण को अनुसरकर वर्तमान पर्याय होती है, वह उपयोग है। आहाहा! पढ़ने से (ज्ञान) नहीं होता। सुनने से नहीं होता - ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो बापू मार्ग है। यह साधारण बात हो तो भी वीतराग की बात है। सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव... आहाहा! लोगों को अभ्यास नहीं। वाड़ा में पड़े हैं। कभी घण्टे-दो घण्टे सुनने जाए। कितने ही तो सुनने भी कभी जाते हैं। उसमें यह कहाँ समझना?

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपाधि कहा न? आहाहा! यह तो २ और २=४ जैसी स्पष्ट बात है। न समझ में आये ऐसी चीज़ नहीं है। आचार्य ने समझने के लिए कहा न? और समझनेवाले को कहा न? जड़ को कहा है? समझ में आया? आहाहा! दृष्टान्त नहीं देते? प्यास लगी हो, प्यास। घर में पाँच हजार का अश्व-घोड़ा हो या दो हजार बैल हो, उसे कहे कि पानी लाओ? यह जानता है कि वह नहीं समझेगा परन्तु आठ वर्ष की लड़की हो, तो कहे बेटा! पानी लाओ। खबर है कि वह समझ सकती है। बैल, घोड़ा नहीं समझ सकता। आठ वर्ष की लड़की को कहे, बेटा! पानी लाओ। कहाँ है, बापू! पानी तो ऊपर है। परेण्डा होता है न परेण्डा? नीचे भी पानी रखते हैं न? लाओ पानी। तो आठ वर्ष की लड़की भी समझ सकती है। जो समझ सकता है, उससे कहते हैं।

इसी प्रकार यहाँ आचार्य महाराज अन्दर आत्मा को कहते हैं, जो समझ शक्तिवाला है, उससे कहते हैं। जड़ को नहीं कहते। समझ में आया? आहाहा!

६

श्री नियमसार, गाथा-१०, श्लोक-१७, प्रवचन - १५३
दिनांक - १५-०१-१९७६

नियमसार, गाथा १०, आत्मा का स्वभाव त्रिकाल है, उसमें भी ज्ञान और दर्शन उपयोग त्रिकाल है। आत्मा वस्तु है, उसमें ज्ञान-दर्शन त्रिकाली ध्रुव उपयोग है, उसमें से वर्तमान कार्य -उपयोग प्रगट होता है। समझ में आया? उस उपयोग के दो प्रकार का बहुत वर्णन करेंगे।

आत्मा का चैतन्य-अनुवर्ती.. आत्मा वस्तु, उसका चैतन्यस्वभाव-गुण, अनुवर्ती-अनुसरकर होनेवाला परिणाम, वह पर्याय है। वस्तु आत्मा, उसका चैतन्यगुण-स्वभाव, उसे अनुसरकर पर्याय में जो उपयोग अर्थात् परिणाम होता है, उसे परिणामरूपी उपयोग कहते हैं। समझ में आया? बाहर में ऐसा लगे कि मानो यह सुनने से यह ज्ञान की पर्याय होती है, पढ़ने से होती है, यह भ्रम है। आहाहा! समझ में आया? यह आत्मा का चैतन्यस्वभाव, त्रिकाल शक्तिस्वरूप का अनुसरण करके ज्ञान और दर्शन के परिणाम-पर्याय उत्पन्न होते हैं। वह अन्दर से उत्पन्न होते हैं, बाहर से उत्पन्न नहीं होती।

श्रोता : पर्याय तो बहिर्तत्त्व है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहिर्तत्त्व है परन्तु अन्तर में से बहिर्तत्त्व आता है। पर्याय बहिर्तत्त्व एक अंश है, इसलिए भले (बहिर्तत्त्व हो,) परन्तु उत्पन्न होता है त्रिकाली में से। सूक्ष्म बात है, भाई! कहेंगे, देखो।

उपयोग, धर्म है; जीव, धर्मी है। उपयोग, वह आत्मा का शाश्वत् धर्म-स्वभाव है, धर्म अर्थात् स्वभाव और आत्मा धर्मी है। धर्म का धारक। धर्म शब्द से यहाँ जानने-देखने का उपयोग लेना। उसमें जानन-देखन, ऐसा स्वभाव, वह धर्म और जीव, वह स्वभावी / धर्मी। आहाहा! **दीपक और प्रकाश जैसा उनका सम्बन्ध है।** दीपक-धर्मी, प्रकाश-धर्म। समझ में आया? दीपक-धर्मी, प्रकाश-धर्म। धर्म शब्द से यह मोक्षमार्ग नहीं, इसका स्वभाव। आहाहा! प्रकाशरूपी धर्म का धारक और प्रकाश उसका धर्म। धर्म अर्थात् यह मोक्ष का मार्ग, यह बात यहाँ नहीं है। टिका रखे हुए भाव। टिकानेवाला धर्मी और टिका हुआ भाव। आहाहा! यह तो

मोक्षमार्ग का अधिकार है न! इसलिए पर्याय की सब बात स्पष्ट की है। कि जो ज्ञान-दर्शन परिणाम-पर्याय। परिणाम कहो या पर्याय कहो, जो आते हैं, वह कहाँ से आते हैं? बाहर से आते हैं? अन्तर में से, ज्ञान-दर्शन की पर्याय परिणमन होकर अन्तर में से आती है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान और दर्शन के भेद से यह उपयोग दो प्रकार का है... पहले उपयोग कहा। वह उपयोग धर्म है, धर्म अर्थात् टिका रखा हुआ भाव। जीव टिका रखनेवाला है। **ज्ञान और दर्शन के भेद से यह उपयोग दो प्रकार का है...** जानन उपयोग और एक देखन उपयोग। **(अर्थात्, उपयोग के दो प्रकार हैं—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग)। इनमें ज्ञानोपयोग भी स्वभाव और विभाव के भेद के कारण दो प्रकार का है।** समझ में आया? **ज्ञानोपयोग भी स्वभाव और विभाव के भेद के कारण दो प्रकार का है। (अर्थात्, ज्ञानोपयोग के भी दो प्रकार हैं - स्वभावज्ञानोपयोग और विभावज्ञानोपयोग)।**

उनमें स्वभावज्ञान, अमूर्त, अव्याबाध, अतीन्द्रिय और अविनाशी है;... आहाहा! **स्वभावज्ञान, अमूर्त,...** उसमें रंग-गन्ध नहीं है। **अव्याबाध,..** उसमें विघ्न नहीं है। **अतीन्द्रिय और अविनाशी है;...** स्वभाव ज्ञान अमूर्त है। ज्ञान के दो प्रकार कहे न? पहले उपयोग के दो प्रकार (कहे) : ज्ञान और दर्शन; पश्चात् ज्ञान के दो प्रकार : स्वभावज्ञान और विभावज्ञान; पश्चात् स्वभावज्ञान के दो प्रकार, वे चलते हैं। थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई! इस तत्त्व का परिचय नहीं। बाहर में क्रियाकाण्ड और प्रवृत्ति में रुक गया और यह तत्त्व रह गया। वस्तु रह गयी। अंक नहीं और अंकरहित शून्य। आहाहा!

भगवान आत्मा अनन्त गुणसम्पन्न वस्तु है परन्तु उसमें उपयोग नाम का स्वभाव भी त्रिकाल है और वह त्रिकाल स्वभावोपयोग है, वह कारणस्वभाव उपयोग है और वर्तमान कार्य आता है, वह कार्यस्वभाव उपयोग है। आहाहा! देखो! **स्वभावज्ञान, अमूर्त, अव्याबाध, अतीन्द्रिय और अविनाशी है; वह भी कार्य और कारणरूप से दो प्रकार का है (अर्थात्, स्वभावज्ञान के भी दो प्रकार हैं—कार्यस्वभावज्ञान और कारणस्वभावज्ञान)। कार्य तो सकल विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान है...** केवलज्ञान होता है, वह पर्याय है। केवलज्ञान भी पर्याय है, गुण नहीं। गुण त्रिकाल है। उत्पन्न होता है, वह पर्याय उत्पन्न होती है। गुण उत्पन्न नहीं होते, गुण तो त्रिकाल रहते हैं। वह केवलज्ञान पर्याय है तो कार्य है। पर्याय, वह कार्य; कार्य, वह पर्याय। आहाहा! वह केवलज्ञान **सकल विमल (सर्वथा निर्मल)...** वह कार्यज्ञान है। आहाहा!

और उसका कारण, परम-पारिणामिकभाव से स्थित, त्रिकाल निरुपाधिक सहजज्ञान है। केवलज्ञान की प्राप्ति कार्यरूप जो हुआ, उसका कारण आत्मा में त्रिकाल निरुपाधि... यह शब्द-सबमें लागू पाड़ना। अमूर्त, अव्याबाध, अतीन्द्रिय अविनाशी। पर्याय को यह लागू पड़े और कारण को भी यह लागू पड़ता है। **कार्य तो सकल विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान है और उसका कारण,...** केवलज्ञान की प्राप्ति का कारण, केवलज्ञान की उत्पत्तिरूपी कार्य, उस कार्य का कारण। आहाहा! केवलज्ञान-मोक्ष, उसका कारण मोक्षमार्ग, ऐसा न कहकर दूसरा कहते हैं। मोक्षमार्ग है। पूर्व में केवलज्ञान होने से पहले मोक्षमार्ग है, उसका तो व्यय होता है और केवलज्ञान का उत्पाद होता है। उस केवलज्ञान का कारण पूर्व की मोक्षमार्ग की पर्याय नहीं है। कारण-उपयोग अन्दर त्रिकाल है, (वह उसका कारण है)। उसकी चैतन्य की सम्पदा, ऋद्धि क्या है, उसकी इसे खबर नहीं है। चैतन्य की बात छोड़कर सब बात की।

श्रोता : उपादान कारण, निमित्त कारण...

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त-फिमित्त यहाँ नहीं। उपादान कारण है, यह तो पहले कहा। मोक्षमार्ग है, वह वास्तव में निमित्त कारण है, उसका अभाव होता है न? यह तो त्रिकाली ज्ञानोपयोग अन्दर है। आत्मा में चैतन्य के प्रकाश का नूर है, उसके दो प्रकार। एक त्रिकाली ज्ञानोपयोग और एक कार्य केवलज्ञानोपयोग। केवलज्ञानोपयोगरूपी कार्य। पर्याय है न? पर्याय कहो या कार्य कहो तो उस कार्य का कारण आत्मा में रहा हुआ परमपारिणामिकभाव। है? उसमें **स्थित, त्रिकाल निरुपाधिक...** तीनों काल में ज्ञान निरावरण और निरुपाधिरूप अन्दर आत्मा में पड़ा है। आहाहा! समझ में आया?

उपयोग, वह धर्म। भगवान आत्मा धर्मी-धारक, और यह चैतन्य-चेतन आत्मा का गुण चैतन्य। चैतन्य को अनुसरकर होनेवाले परिणाम / पर्याय को उपयोग कहते हैं। उस उपयोग के दो प्रकार : ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग के दो प्रकार : स्वभावज्ञानोपयोग और विभावज्ञानोपयोग। स्वभावज्ञान के दो प्रकार। बात तो ऐसी है, भाई! स्वभावज्ञानोपयोग के दो प्रकार : एक कारणस्वभावज्ञानोपयोग, एक कार्यस्वभावज्ञानोपयोग। समझ में आया?

श्रोता : यह तो आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं, कि अब इसके भाग नहीं पड़ते।

कार्य तो सकल विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान है... अरिहन्त परमात्मा सर्वज्ञ को जो केवलज्ञान होता है, वह कार्य है। पर्याय है न? पर्याय है। केवलज्ञान गुण नहीं। गुण

तो त्रिकाल रहते हैं। समझ में आया? एक बार हम गये थे न? क्या कहलाता है जम्बूस्वामी का? मथुरा.. मथुरा..। मथुरा गये थे न? वहाँ व्याख्यान चला था, उसमें बहुत पण्डित बैठे थे। मथुरा गये थे, वहाँ यह आया कि केवलज्ञान भी पर्याय है, एक समय रहकर नाश होती है। (यह सुनकर) भड़क गये। यह क्या? पण्डित लोग कहे —यह क्या? कैलाशचन्दजी ने कहा था कि सुनो तो सही, क्या कहते हैं? भाई थे न? कैलाशचन्दजी थे, नहीं? मथुरा-मथुरा, जम्बूस्वामी। वहाँ गये थे। मुख्य-मुख्य जो दिगम्बर तीर्थ हैं, वहाँ सब जगह गये हैं। दो बार गये थे न? नौ-नौ हजार मील दो बार घूमे हैं। तीन बार...

वहाँ (कहा), केवलज्ञान भी एक समय की पर्याय है और दूसरे समय में वह पर्याय नहीं रहती। भड़क गये। मूल बात यह है कि केवलज्ञान, वह पर्याय है। उत्पन्न होती है न? गुण उत्पन्न नहीं होते, गुण तो त्रिकाल रहते हैं। द्रव्य में, वस्तु में गुण त्रिकाल रहते हैं और पर्याय उत्पन्न होती है और व्यय होता है, उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। तो पर्याय है, वह उत्पाद-व्ययवाली है और गुण हैं, वे ध्रुव हैं। समझ में आया? तो उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् में तीनों आ गये। नयी पर्याय उत्पन्न होती है, पुरानी पर्याय व्यय होती है, यह उत्पाद-व्यय और कायम रहता है, वह ध्रुव।

इसी प्रकार आत्मा में स्वभाव ज्ञानोपयोग दो प्रकार का है। एक कारणस्वभाव ज्ञानोपयोग, एक कार्यस्वभाव ज्ञानोपयोग। बापू! यह तो अन्तर की बातें हैं। आहाहा!

श्रोता : सिद्धपरमात्मा को आठ गुण प्रगट होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे गुण नहीं, पर्याय है, वह पर्याय है।

श्रोता : शास्त्र में गुण लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह गुण अर्थात् पर्याय। वे गुण प्रगटे, तो गुण तो त्रिकाल रहते हैं। यह भाषा समझाने के लिए है। अवगुण नाश होकर गुण हुआ। इसका अर्थ अवगुण की पर्याय का नाश होकर गुण की पर्याय उत्पन्न हुई। सिद्ध स्वयं पर्याय स्वयं है, सिद्ध गुण नहीं है। आहाहा! संसार अवस्था है, ऐसी सिद्ध भी अवस्था है। अवस्था कहो या पर्याय कहो। भगवान आत्मा त्रिकाली ध्रुव है। उसमें संसार अवस्था है, वह पर्याय है; मोक्षमार्ग भी पर्याय है और मोक्ष भी पर्याय है। आहाहा!

श्रोता : इतना समझने का क्या काम है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अन्दर समझना। जिसे धर्म करना हो, उसे अन्दर दृष्टि करने से

धर्म होता है, ऐसा बताते हैं। समझ में आया ? धर्म-स्वभाव जिसमें पड़ा है, उसकी दृष्टि करने से धर्म होता है। आहाहा! धर्म कोई बाहर के क्रियाकाण्ड और भगवान के दर्शन तथा यात्रा की, इसलिए धर्म हुआ... उसमें कहीं धर्म नहीं है। आहाहा!

श्रोता : सवेरे तो धर्म किया, पूजा की वह।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो शुभभाव है। पूजा-वूजा में कहाँ धर्म है ? उसमें ऐसे स्वाहा.. स्वाहा.. उस क्रिया का कर्ता होता है, वह तो मिथ्यात्व है। वह तो जड़ की क्रिया है। सूक्ष्म है, भाई!

श्रोता : भगवान की पूजा करे, वह मिथ्यादृष्टि।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूजा करे, वह मिथ्यात्व नहीं। माने ऐसा, इसलिए मिथ्यात्व है। माने कि यह देह की क्रिया मैंने की, ऐसा मैंने किया। स्वाहा! ...यह मैंने डाला, वह तो जड़ की क्रिया है।

श्रोता : भगवान भूखा रखना...

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान को कहाँ भूख है! वह तो स्थापनानिक्षेप है। आहाहा! यहाँ तो भगवान आत्मा, उसका जो उपयोग अर्थात् परिणाम जो है, उस उपयोग की व्याख्या है। अब, उपयोग की व्याख्या में दो प्रकार लिये। एक तो जानन उपयोग और एक देखन उपयोग। जानन में भिन्न-भिन्न करके जाने और दर्शन उपयोग में भिन्न किये बिना देखे, सामान्य सब एक साथ (देखे)। अब, यह दर्शन और ज्ञान उपयोग में जो है, उसके दो प्रकार : स्वभाव ज्ञानोपयोग और विभावज्ञानोपयोग। अब स्वभावज्ञानोपयोग के दो प्रकार : एक त्रिकाली कारणस्वभावज्ञानोपयोग और वर्तमान कार्यस्वभावज्ञानोपयोग। समझ में आया ?

पहले कहा **कार्य तो सकल विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान है और उसका कारण,...** केवलज्ञान का कारण... आहाहा! **परम-पारिणामिकभाव से स्थित,...** स्वभावभाव में स्थित त्रिकाल। नित्यानन्द भगवान नित्य है, ऐसा उपयोग भी अन्दर में नित्य है, ध्रुव है। आहाहा! समझ में आया ? **परम-पारिणामिकभाव से...** अर्थात् पर्याय-अवस्था के अतिरिक्त। अन्दर शाश्वत् चीज़ है, उसमें **स्थित, त्रिकाल निरुपाधिक स्वरूप...** स्वाभाविक ज्ञान जो ध्रुव है, वह त्रिकाल निरुपाधिक है, उसमें कोई उपाधि नहीं है। आहाहा! वह **सहजज्ञान है।** त्रिकाली आत्मा में स्वभावभाव में रहनेवाला त्रिकाली निरावरण, सहज ज्ञानोपयोग, वह कारण -ज्ञानोपयोग है। समझ में आया ? यह तो भाई! सूक्ष्म तत्त्व की बात है। समझ में आया ? आहाहा!

केवल विभावरूप ज्ञान, तीन हैं... स्वभावज्ञान के दो प्रकार कहे न! कि स्वभावज्ञान के दो प्रकार हैं। एक कार्य स्वभावज्ञान केवलज्ञान। कार्यस्वभाव ज्ञान, केवलज्ञान; कारणस्वभावज्ञान परमस्वभावभाव में स्थित वह। त्रिकाल रहनेवाला निरुपाधि निरावरण ध्रुव ज्ञानोपयोग, वह कारण उपयोग है। आहाहा! और उसमें से उत्पन्न होनेवाला केवलज्ञान। केवलज्ञान, वह पर्याय है और पर्याय है, वह कार्य-उपयोग है। समझ में आया? भाषा तो समझ में आये ऐसी सादी है। भाव तो होवे ऐसा होवे न!

अब कहते हैं कि कारण-कार्य उपयोग स्वभाव के दो भेद कहे। रहा विभावरूप ज्ञान। स्वभावज्ञान के दो प्रकार कहे न! अब विभावज्ञान रहा। यह बाद की ११-१२ गाथा में उसके भेद आयेंगे। **केवल विभावरूप ज्ञान, तीन हैं—कुमति, कुश्रुत, और विभङ्ग। इस उपयोग के भेदरूप ज्ञान के भेद, अब कहे जानेवाले दो सूत्रों द्वारा (११ और १२वीं गाथा द्वारा) जानना।** ११-१२ गाथा। आहाहा!

यहाँ तो यह कहना है कि कार्य-केवलज्ञानरूपी दशा, परम आनन्द के साथ होनेवाली दशा का कारण आत्मा में त्रिकाल रहनेवाला उपयोग, जानन.. जानन.. जानन.. उपयोग, कारणरूप ध्रुव, आत्मा में रहनेवाला कारण ज्ञानोपयोग, उसमें से कार्यज्ञान होता है। केवलज्ञान उस कारण में से कार्य होता है। आहाहा! कोई वाणी से नहीं, पर से नहीं, गुरु से नहीं, वांचन से नहीं और पूर्व की पर्याय से भी नहीं। आहाहा! इतना सब समझना?

आत्मा में परम आनन्दरूपी मोक्ष है। आया था न? परम आनन्द का लाभ, वह मोक्ष। पहले आया था। पर्याय में परम अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ, उसका नाम मोक्ष। उस मोक्ष में जो ज्ञान की दशा उत्पन्न हुई, वह कार्य ज्ञानोपयोग है। मोक्ष में केवलज्ञान है न? तो वह केवलज्ञान, वह कार्य-उपयोग ज्ञान है और उसका कारण आत्मा में-ध्रुव में स्थित ज्ञानशक्ति, ज्ञानोपयोग, त्रिकाल में रहा, वह कारण-उपयोग है, उसमें से कार्य-उपयोग / केवलज्ञान उत्पन्न होता है। आहाहा!

श्रोता : यदि ऐसा है तो कारण त्रिकाल है तो कार्य भी त्रिकाल होना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात आ गयी न? बात हो गयी परसों। स्वीकार करे, तब कारण है या स्वीकार किये बिना कारण है? स्वीकार करे कि यह कारण है, तब तो कार्य आये बिना नहीं रहे। यह बात तो हो गयी। पहले प्रश्न हुआ था। त्रिभुवनभाई है न? वारिया-वारिया। दो वर्ष पहले उसने प्रश्न किया था। कारण उसे कहते हैं... परन्तु कारण है तो उसकी प्रतीति

स्वभाव में आये बिना उसे कारण आया कहाँ से ? जो कारण-ज्ञानोपयोग त्रिकाल है, परन्तु वह त्रिकाल ज्ञानोपयोग है, उसका ज्ञेय ज्ञान में आये बिना और प्रतीति में आये बिना, वह है - ऐसा कहाँ से आया ? आहाहा ! सूक्ष्म बात है भाई !

श्रोता : जिसे परिणमन में... उसे ज्ञान में आने का क्या काम है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणमन कहाँ से हुआ ? कारण है, उसका कार्य है। परिणमन, परम पारिणामिकभाव में ज्ञानोपयेाग है, उसमें से परिणमन आता है।

श्रोता : ग्यारह अंग की पुस्तक (ज्ञान) जाना तो उसने सब जाना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं जाना। ग्यारह अंग और नौ पूर्व जाने तो क्या हुआ ? वह ज्ञान नहीं है। ज्ञान तो अन्तरस्वरूप में पड़ा है। शक्तिरूप, स्वभावरूप अन्तर ज्ञान है, वह मोक्षरूप है। शक्तिरूप, मोक्षरूप है, उसकी दृष्टि करके उसमें एकाग्र होकर केवलज्ञान / कार्योपयोग होता है, उसे मोक्ष कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

दूसरे प्रकार से कहें तो यहाँ ऐसी शैली है। प्रायश्चित्त लिया है, प्रायश्चित्त। पर्याय में निर्विकारीदशारूप प्रायश्चित्त। 'प्रायश्चित्त अधिकार' है न, वहाँ कहा है कि त्रिकाली द्रव्य प्रायश्चित्तस्वरूप ही है। आहाहा ! कार्य में प्रायश्चित्त, निर्विकारी दशा हुई, वह प्रायश्चित्त। तो कहते हैं कि आत्मा प्रायश्चित्त। आत्मा प्रायश्चित्त अर्थात् ज्ञान सम्पन्न स्वरूप है, वह प्रायश्चित्त। आहाहा !

वीतरागभाव उत्पन्न होता है, वह तो पर्याय है परन्तु आत्मा में त्रिकाल वीतरागभाव है, उसमें से वीतरागभाव उत्पन्न होता है। आत्मा भी वीतरागस्वभाव है, तो वीतराग कार्य होता है। आत्मा आनन्दस्वभाव है तो कार्य में-पर्याय में अनन्त आनन्द प्राप्त होता है। आहाहा ! आत्मा की पर्याय में चारित्र अर्थात् रमणता - स्थिरता उत्पन्न होती है। अत: आत्मा त्रिकाल चारित्र सम्पन्न है। आत्मा भी चारित्र अर्थात् स्वरूप की स्थिरता सम्पन्न ही अनादि से है। उसमें से कार्यस्थिरता आती है। समझ में आया ?

'जिन सो ही है आत्मा' जिनस्वरूपी भगवान आत्मा में से जिनपर्याय-वीतरागपर्याय उत्पन्न होती है। पर्याय में जो भाव आते हैं, वह कारण में न हो तो कार्य में आवें कहाँ से ? आहाहा ! समझ में आया ? वीतरागपर्याय उत्पन्न हुई, तो कहते हैं कि वह तो कार्य हुआ, उसका कारण ? वह वीतरागस्वभाव आत्मा है, वह उसका कारण है। आहाहा ! समझ में

आया ?

यह बात यहाँ लेते हैं। कार्य / केवलज्ञान प्रगट हुआ, तो उसका कारण क्या ? - कि त्रिकाली आत्मा में ज्ञान उपयोग-शक्ति, त्रिकाल निरावरण, निरुपाधि सहजज्ञान पारिणामिकभाव में - सहजभाव में पड़ा है। आहाहा! चन्दुभाई! ऐसा है। यह (शरीर) तो हड्डियाँ, माँस जड़ मिट्टी है। अन्दर में कर्म उपजे, वे जड़ अजीव मिट्टी है। मिट्टी नहीं कहते ? कील-कील, लोहे की कील लगे, लोहा लगे तो कोई ऐसा कहे, मेरी मिट्टी पकाऊ है, भाई! पानी नहीं छुआना। कहते हैं न ? मेरी मिट्टी पकाऊ है। लोहा लगा हो तो पानी नहीं लगाना। मेरी मिट्टी पकाऊ है। वह तो मिट्टी है। तुम्हारी भाषा में क्या कहते हैं ?

मेरी मिट्टी पकाऊ है। कहते हैं मिट्टी, और मानता है मेरी। यह तो मिट्टी-धूल जगत की चीज़ है। जड़ है। आहाहा! उससे भगवान आत्मा भिन्न है और उसमें तो पुण्य-पाप के विकल्प भी नहीं हैं। उसमें जो ज्ञानोपयोग कार्यरूप परिणमता है, उसका कारणरूप ज्ञानोपयोग त्रिकाल है। राग उत्पन्न होता है, उसका कारण या कार्य आत्मा में नहीं है।

(समयसार) ७२ गाथा में आता है। आत्मा कारण नहीं और कार्य नहीं। सम्मेदशिखर सभा में बहुत चर्चा हुई थी। सभा में एक घण्टे चली थी। दो-तीन घण्टे चली। समयसार की ७२ गाथा है कि आत्मा किसी का कारण नहीं, राग का कारण नहीं और राग का कार्य नहीं। राग मन्द है तो यहाँ सम्यग्ज्ञान उत्पन्न हुआ और आत्मा का भान हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? राग है, पुण्य-पाप के भाव हैं, वे आकुलता हैं। पुण्य-पाप का भाव है, वह आकुलता है। भगवान आत्मा उस आकुलता का कारण भी नहीं, पुण्य-पाप का कारण भी नहीं और पुण्य-पाप का कार्य भी नहीं। राग मन्द है तो ज्ञान-आनन्द हुए, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? यह तो मार्ग, बापू! अलग प्रकार का है, प्रभु! आहाहा! समझ में आया ? सम्मेदशिखर में बहुत बात चली थी।

आस्रव आकुलता के उत्पन्न करनेवाले होने से दुःख का कारण है। क्या कहा ? शुभ-अशुभभाव, चाहे तो दया का, दान का, भक्ति का, पूजा का, व्रत का भाव हो, वह आकुलता को उत्पन्न करनेवाला होने से... ऐसी बात! भगवान! वह दुःख का कारण है। कौन ? - वह शुभ-अशुभभाव। शुभभाव—भगवान की भक्ति का, भगवान के स्मरण का, भगवान के नाम का, पूजा का भाव, वह राग है, वह आस्रव है। आस्रव समझते हो ? जिस परिणाम से नया आवरण आवे, वह आस्रव। जहाज होता है न, जहाज ? जहाज में छिद्र हो तो अन्दर पानी आता है; वैसे आत्मा में शुभ और अशुभभाव हो, वह छिद्र है, उनसे कर्म आते हैं। इस कारण

से पुण्य-पाप को आस्रव कहने में आता है। आ-स्रव=आ अर्थात् मर्यादा, स्रव अर्थात् आना। आवरण। कर्म आते हैं। इस कारण शुभ और अशुभभाव, पंच महाव्रत का भाव। अव्रत का भाव, वह अशुभभाव; महाव्रत का भाव शुभ, दोनों आस्रव हैं। आहाहा!

आस्रव आकुलता को उत्पन्न करनेवाले होने से दुःख के कारण हैं। भगवान आत्मा, देखो! टीका में आत्मा को भगवान कहकर बुलाया है। आहाहा! भगवान आत्मा। संस्कृत की टीका में। **भगवान आत्मा तो सदा ही निराकुल स्वभाव के कारण, किसी का कार्य तथा किसी का कारण नहीं होने से दुःख का अकारण ही है...** इन पुण्य-पाप की आकुलता का कारण भगवान आत्मा नहीं है। आहाहा! पर्याय में उत्पन्न होता है। द्रव्य और द्रव्य के गुण में ये कोई कारण नहीं है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म पड़ता है। लोग क्या समझे? सूक्ष्म बात है, भगवान!

भाई! तेरी चीज़ अन्दर अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान और अनन्त शान्ति की सम्पदा से भरी पड़ी है। यदि अन्तर में शान्ति और आनन्द न हो तो कार्य में शान्ति और आनन्द आता है, वह कहाँ से आता है? समझ में आया? इसलिए कहा, **किसी का कारण नहीं...** क्या कहा? भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप, वह किसी राग के कारण से कार्य उत्पन्न हुआ, (ऐसा नहीं है)। अथवा किसी का कारण नहीं है। राग का कारण नहीं और राग से आत्मा में धर्म हुआ, वह कार्य नहीं। राग से आत्मा में धर्म होता ही नहीं। आहाहा! अशुभ से बचने को शुभभाव आता है। अशुभ से बचने को (आता है) परन्तु वह धर्म नहीं है। आहाहा!

श्रोता : रुका उतना धर्म।

पूज्य गुरुदेवश्री : रुका वह धर्म कहाँ? रुका है वहाँ मिथ्यात्व है न? उसमें धर्म माने वह तो मिथ्यात्व है। वहाँ रुका ही नहीं है। ज्ञानी को शुभभाव आया तो अशुभ से बचा है, बस इतना। अशुभ वंचनार्थम् - ऐसा आता है। ज्ञानी को शुभभाव आता है, वह किस कारण से? अशुभ वंचनार्थम् - अशुभ को छोड़ने के लिए। अशुभ छूटकर शुभभाव होता है, परन्तु है तो आस्रव। आहाहा! है? उसमें तो बहुत लिया है। कारण-कार्य नहीं है। दया, दान, व्रत के परिणाम का कारण आत्मा नहीं है या आत्मा में से व्रत के परिणाम प्रगट हों, ऐसा नहीं है क्योंकि आत्मा में विकार है ही नहीं। द्रव्य-गुण तो निर्मलानन्द है, तो वह विकारी परिणाम का कारण नहीं और विकारी परिणाम हुए तो यहाँ राग की मन्दता हुई, तो यहाँ धर्म की पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसा नहीं है। आहाहा!

अरे! किसी जगह डालते हैं न? व्यवहार साधन, निश्चय साध्य। साध्य-साधन आता

है न? वहाँ चिपटते हैं। वह तो साधन का ज्ञान कराया है। साधन-फाधन कैसा! समझ में आया? साधन का तो यहाँ निषेध करते हैं। राग की मन्दता कारण और उससे आनन्द का-समकित का कार्य हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! वहाँ पंचास्तिकाय में ऐसा कहा, भिन्न साधन-साध्यभाव। ऐई! है न? है तो कैसे निकाल डालते हो? ऐई! नवरंगभाई! है अर्थात् वहाँ कथन में है, ऐसा। आहाहा!

यह पंचास्तिकाय में लिखा है, वह तो निमित्त का ज्ञान कराते हैं। आहाहा! शनैः शनैः आता है न? वह तो अन्तर आत्मा का भान हुआ है, राग के आश्रय बिना त्रिकाली चिदानन्दस्वरूप का ज्ञान-श्रद्धान हुआ है, थोड़ी स्थिरता भी हुई है, उसे जो शुभभाव आता है, उसमें अशुभ नहीं है तथा फिर शुभभाव को टालेगा। इस कारण शुभ क्रम-क्रम से परम्परा मोक्ष का कारण है, ऐसा कहा है। वह तो बन्ध का ही कारण है। आहाहा!

यहाँ देखो! पुण्य और पुण्य के परिणाम आत्मा का कार्य नहीं और पुण्यपरिणाम से आत्मा में कार्य नहीं होता। आहाहा! पुण्यपरिणाम का कारण आत्मा नहीं है और पुण्यपरिणाम का कारण होकर आत्मा में धर्म हो, ऐसा नहीं है।

श्रोता : पुण्य अभावरूप कारण तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव होवे तो उसमें क्या हुआ! अभावरूप कारण होवे तो क्या? वह कारण नहीं हुआ। आहाहा! यह भाई ने रात्रि को बात की थी। अपने को तो कुछ खबर नहीं होती। कि वे धूप-वूप देते हैं। अगरबत्ती। अब ऐसा न दे तो क्या? अपने को कहाँ... अगरबत्ती की धूप भाई कहते हैं। भाई कहते थे, अपने को कुछ खबर नहीं। उस जंगली बिलाड़ा की विष्टा की बनती है, ऐसा कहते हैं। अपने को कुछ खबर नहीं। अपन यह कुछ करते नहीं। यह तो लोग करते हैं। वास्तव में तो यह अगरबत्ती-वगरबत्ती करनेयोग्य नहीं है। इससे जीव मर जाते हैं। बत्ती कही न, बत्ती? बत्ती की, उसमें जीव मरते हैं। यहाँ तो जैसे बने वैसे जीव न मरे, ऐसा मार्ग है। दियासलाई... उसमें जीवांत गिरती है। अगरबत्ती और धूप करने का कारण क्या? उसमें अग्नि होती है तो जीव मरते हैं।

श्रोता : भगवान के मन्दिर में सुगन्ध आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुगन्ध तो अन्दर से आती है। आनन्दस्वरूप भगवान में एकाग्र होने से सुगन्ध तो वहाँ से आती है। लोगों को बाहर की महिमा बहुत घुस गयी है न!

टोडरमलजी के पुत्र गुमानसिंह (गुमानीराम) है न? टोडरमलजी के पुत्र गुमानीराम। वहाँ तो ऐसा है। जयपुर है न? जयपुर में मन्दिर है। जयपुर में मन्दिर है। देखा है न, सब

देखा है। गोखला में... गोखला समझते हो? उसमें प्रतिमा रखी है। भगवान को स्नान भी नहीं, अगरबत्ती नहीं, कुछ नहीं। ऐसा एक मार्ग है। एक आता है न, उस मार्ग का प्रेमी है न? जवान। कोमलचन्दजी। कोमलचन्दजी ने किया था। वह युवक। भगवान की मूर्ति को पानी भी नहीं छुआता। ये लोग तो बीसपन्थी तो क्या करे? फूल लगावे, केशर लगावे, माला पहनावे।... यह तो साफ करने का जल है। उसमें आया है परन्तु वह तो काँच का दरवाजा बन्द रखते हैं। उसमें मूर्ति रखकर भक्ति कर ले, बस। वहाँ जयपुर में मन्दिर है। है, हम गये थे। सब देखा है, वह तो जैसे बने वैसे बाहर की क्रिया में हिंसा न हो, वैसा होना चाहिए। ऐसी बात है, भाई!

यहाँ तो कहना है कि जो ज्ञानोपयोग है, स्वभावज्ञानोपयोग। विभाव ज्ञानोपयोग की व्याख्या दस-बारह गाथा में आयेगी। स्वभावज्ञानोपयोग दो प्रकार का है। एक त्रिकाली स्वभावज्ञानोपयोग, एक वर्तमान कार्यस्वभावज्ञानोपयोग। कार्यस्वभावज्ञानोपयोग केवलज्ञान है। तो केवलज्ञान का कारण क्या? - कि त्रिकाली आत्मा में वह ज्ञानोपयोग ध्रुव पड़ा है। परमस्वभावभाव परमपारिणामिकभाव; उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक नहीं। केवलज्ञान है, वह क्षायिकभाव है, उस क्षायिकभाव का कारण अन्दर परमपारिणामिकभाव है। आहाहा! समझ में आया?

जिसे केवलज्ञान परम आनन्द का लाभ लेना हो, वह लाभ कहाँ से आयेगा? बनिये दीवाली में नहीं लिखते? लाभ सवाया। अपने बनिया दरवाजे के ऊपर लिखते हैं न? लाभ सवाया। लाभ सवाया, परन्तु कहाँ से लाभ सवाया? बाहर का लाभ? मोक्ष का लाभ सवाया, उसका लाभ है और मोक्ष के लाभ का कारण? अन्तर में ज्ञानोपयोग पड़ा है, उसमें दृष्टि देने से कार्य आता है। आहाहा! भगवान का ऐसा मार्ग लोगों को सूक्ष्म पड़ता है। क्या करे? भगवान! भगवान ने ऐसा मार्ग कहा है। आहाहा! और ऐसा ही है। आहाहा!

भावार्थ... टीका में कहा था न? उसका भावार्थ कहते हैं। **भावार्थ : — चैतन्यानुविधायी परिणाम, वह उपयोग है।** चैतन्यानुविधायी अनुवर्ती। संस्कृत में ऐसा शब्द है। है न? चैतन्यअनुवर्ती - संस्कृत में है। पश्चात् अनुविधान लिया है। **चैतन्यानुविधायी...** अर्थात् भगवान आत्मा में चैतन्यस्वभाव जो ज्ञान-दर्शन त्रिकाल है, उसे अनुसरकर होनेवाले परिणाम, **वह उपयोग है।** परिणाम कहो या पर्याय कहो, वह उपयोग है। आहाहा!

उपयोग, दो प्रकार का है—(१) ज्ञानोपयोग, और (२) दर्शनोपयोग। उपयोग के दो भेद हैं न! ऐसे तो उपयोग के बारह भेद हैं न! पाँच ज्ञान, तीन अज्ञान, चार दर्शन। समझ

में आया? यहाँ उपयोग के दो भेद किये - ज्ञान और दर्शन।

ज्ञानोपयोग के भी दो प्रकार हैं—(१) स्वभावज्ञानोपयोग, और (२) विभाव-ज्ञानोपयोग। स्वभावज्ञानोपयोग भी दो प्रकार का है — (१) कार्यस्वभाव-ज्ञानोपयोग (अर्थात्, केवलज्ञानोपयोग), और (२) कारणस्वभाव -ज्ञानोपयोग (अर्थात्, सहजज्ञानोपयोग)। नीचे नोट।

सहजज्ञानोपयोग,... यह क्या कहते हैं? उपजना नहीं। वस्तु में सहज भगवान आत्मा में सहजस्वभाव ज्ञानोपयोग **परमपारिणामिकभाव से स्थित है...** परम स्वभावभाव में सहज ज्ञानोपयोग स्थिर है, ध्रुव है। परमपारिणामिकभाव का अर्थ? भाव के पाँच प्रकार हैं। राग-द्वेष आदि को उदयभाव कहते हैं। और जिस प्रकार पानी में मैल बैठ जाता है, वैसा उपशमभाव है। वह उपशमभाव पर्याय है, क्षयोपशम भी पर्याय है, क्षायिक भी पर्याय है और उस पर्याय का कारण जो त्रिकाली है, वह परमपारिणामिकभाव में स्थित है। समझ में आया? उसमें धर्म क्या करना?

भाई! आत्मा का धर्म। धर्म अर्थात् आत्मा ने धार रखी हुई शक्तियों का नाम धर्म है। आत्मा में ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग, आनन्दभाव धार रखा है, वह आत्मा का धर्म है। धर्म अर्थात् स्वभाव। उस स्वभाव में ज्ञानोपयोग भी स्थित है। आहाहा! उसका आश्रय करने से, उसमें एकाग्र होने से जो कार्य होता है, वह कार्य-उपयोग है। धर्म त्रिकाल कारण है, धर्म शब्द से गुण, और यह पर्याय उत्पन्न हुई, वह कार्य है। आहाहा! देखो! यहाँ है न? सहज ज्ञानोपयोग परमपारिणामिकभाव से स्थित है। त्रिकाल उपाधिरहित है। उसे स्वरूपप्रत्यक्ष कहेंगे। यह नयी भाषा है। नियमसार में है, अन्यत्र कहीं नहीं है। आत्मा में त्रिकाली जो ज्ञान है, उसे स्वरूपप्रत्यक्ष कहते हैं। स्वरूपप्रत्यक्ष—स्वरूप में प्रत्यक्ष है। आहाहा! उसमें केवलज्ञान प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई!

मूल तत्त्व की इतनी गम्भीरता, सूक्ष्मता है कि उसे परिचय और अभ्यास बिना वह ख्याल में नहीं आती। ऐसे तो आत्मा के भान बिना अनन्त बार सब क्रियाएँ कीं—पुण्य किये, दया, दान, व्रत, प्रायश्चित्त, आजीवन ब्रह्मचर्य पालन किया (परन्तु) उसमें क्या हुआ? वह तो शुभराग है। ब्रह्मचर्य (अर्थात्) ब्रह्मानन्द भगवान। ब्रह्म अर्थात् आनन्द का नाथ प्रभु! अतीन्द्रिय-अनीन्द्रिय आनन्दस्वभाव, सहजात्मस्वभाव का आश्रय लिए बिना कभी धर्म नहीं होता। कहो, मांगीलालजी! आहाहा! यह तो धमाधम... बड़े गजरथ चलावे, लाख-दो लाख

खर्च करे तो हो गया वह धर्म धुरन्धर। क्या कहते हैं उसे ? सिंघई... सिंघई की पदवी देते हैं न ? संघवी। हमारे यहाँ काठियावाड़ में संघवी कहते हैं। अब दो लाख खर्च करे... अभी कुछ माल नहीं होता। फिर अभी मँहगाई कितनी ! लोग कहे, प्रतिमा है, भगवान है। अब उस गजरथ में लाख-दो लाख खर्च किये। निरर्थक है। समझ में आया ? परन्तु उसको पदवी लेनी हो और ऐसा पण्डित मिले। चलाओ गजरथ, हाथी जोड़ो।

श्रोता : धर्म की प्रभावना तो होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्म की प्रभावना कहा है ?... भगवान ! आहाहा ! न हो, वहाँ (बनावे), प्रतिमा, मूर्ति आदि न हो, वहाँ नया बनाना पड़े परन्तु अब तीर्थ में ढ़ेरों हो... क्या कहलाता है वह ? टीकमगढ़, पपौरा, आहारजी हम सर्वत्र गये थे न। सब देखा है। अब वहाँ ढ़ेर के ढ़ेर। वहाँ दिगम्बर के घर तो हैं नहीं। अभी तो नया बनाते हैं।

श्रोता : धर्म होगा न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी धर्म नहीं। इसके मान के लिए करता है तो पाप बाँधता है।

श्रोता : ऐसे मन्दिर बनाकर पाप ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, प्रसिद्धि के लिए (करता है)। हम बड़े संघवी हैं। यह तो अभिमान है। परन्तु कदाचित् राग की मन्दता हो तो पुण्य होगा। धर्म तीन काल में नहीं है। लाख मन्दिर बनावे और अरबों रुपये खर्च करे। यहाँ तो ऐसी बात है, भगवान ! पैसे की-धूल की कीमत क्या है ? एक बार कहा था न ? (संवत्) १९८१ के वर्ष में। १९८१-८१। ५१ वर्ष हुए। हम लींबडी गये थे। लींबडी है न ? दरबार है, दस लाख की आमदनीवाला। दरबार व्याख्यान में आये थे। १९८१ के वर्ष की बात है, ५१ वर्ष पहले की। दरबार गुजर गये। व्याख्यान में आये थे। उन्हें फिर से आने का भाव होगा। परन्तु हमारे दरबार हो या न हो, हमारा टाईम हो तो चले गये। वहाँ आगे एक गृहस्थ सेठ था, उसने साठ हजार रुपये खर्च करके उस समय पाठशाला बनायी। भाई मोहनलाल लगड़ीवाला, यह... उसको पैसे का... हमने साठ हजार रुपये खर्च किये। पश्चात् एक बार मेरे पास आया। हम जंगल में बैठे थे। लींबडी से आगे अन्तेवालिया है न ? दो मील बाहर बैठे थे। हमारी लाईन ऐसी थी न कि हम गाँव में बाद में जाएँ। आहार-पानी तैयार होने के बाद जाएँ। नहीं तो जाकर बनावे तो ? वह हम नहीं लेते थे। गाँव में नौ, साढ़े नौ बजे जाएँ। दाल, भात हो गया हो, आटे की तैयारी हो गयी हो, तब जाते थे। इसके बिना नहीं जाते, बाहर बैठते। क्योंकि गाँव में जाएँ तो वापस

बनावे। इसलिए हम बाहर बैठे थे, वहाँ मोहनलाल सेठ आये। महाराज! इन पैसेवालों का, धनवालों का धर्म में कितना स्थान? ऐसा पूछा। क्या कहा? पैसेवाले का स्थान-स्थान, उसका स्थान कितना? कहा, पैसेवाले का स्थान धर्म में बिल्कुल नहीं। वे साठ हजार खर्च किये थे न? वह मानो महाराज कुछ कहेंगे। अब धूल भी नहीं तेरे। साठ हजार क्या, लाख-करोड़ खर्च कर न! वह कहाँ तेरी चीज़ है! वह तो जड़ है। समझ में आया? उस जड़ को मैंने किया, मैंने दिया वह तो मिथ्यात्व अभिमान है।

श्रोता : रुपये गये और मिथ्यात्व..

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपये कहाँ इसके बाप के थे! उसके भी कहाँ थे? यहाँ तो भाई! ऐसी बात है। धर्म में स्थान है? कहा, नहीं! पैसेवाले का स्थान नहीं। पैसा क्या काम है? यहाँ तो आत्मा का ज्ञान और आनन्द का काम है, यह काम है। समझ में आया? मांगीलालजी! पैसेवाले तो बहुत आते हैं।

यहाँ तो ज्ञानोपयोग जो त्रिकाली है... आहाहा! उसे स्वभाव ज्ञानोपयोग और कार्यस्वभाव ज्ञानोपयोग, वर्तमान प्रगट होवे वह। केवलज्ञानोपयोग। कारणस्वभाव ज्ञानोपयोग ये दो। यह आ गया। **विभावज्ञानोपयोग भी दो प्रकार का है—(१) सम्यक् विभावज्ञानोपयोग,...** यह मति-श्रुत-अवधि, मन:पर्यय है, वह सम्यग्ज्ञान विभाव उपयोग है। चार ज्ञान की पर्याय है न? मति, श्रुत, अवधि (मन:पर्यय) वह अपूर्ण है और कर्म का उसमें निमित्त है। **(१) सम्यक् विभावज्ञानोपयोग, और (२) मिथ्या विभावज्ञानोपयोग...** ओहोहो! है? **(केवल विभाव -ज्ञानोपयोग)। सम्यक् विभावज्ञानोपयोग के चार भेद...** देखो, सम्यक् विभावज्ञानोपयोग। **(सुमतिज्ञानोपयोग, सुश्रुतज्ञानोपयोग, सुअवधिज्ञानोपयोग, और मन:पर्ययज्ञानोपयोग)...** इन चार को सम्यक् विभावज्ञानोपयोग कहा। केवलज्ञान, वह स्वभाव ज्ञानोपयोग है। चार ज्ञान, वे विभावज्ञानोपयोग (है क्योंकि) अपूर्ण है न। आहाहा! समझ में आया? ये चार भेद हैं : सुमति, सुश्रुत, सुअवधि, मन:पर्यय।

अब अगली दो गाथाओं में कहेंगे। मिथ्या विभावज्ञानोपयोग के, अर्थात् केवल विभावज्ञानोपयोग के तीन भेद हैं... बाद में कहेंगे। **(१) कुमति-ज्ञानोपयोग,...** यह केवल विभावज्ञान है। वे सम्यक् विभावज्ञान हैं। सम्यक् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि, मन:पर्यय। सच्चे, हों! वे सम्यग्ज्ञान विभाव-उपयोग है और अज्ञानी का मात्र विभाव, वह केवल विभावज्ञानोपयोग है। अज्ञान में मति, श्रुत और विभंग होते हैं न? आहाहा! **(२) कुश्रुतज्ञानोपयोग, और (३) विभंगज्ञानोपयोग अर्थात् कुअवधिज्ञानोपयोग]।** ये उपयोग के

भेद कहे।

[अब, दसवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं]

अथ सकल-जिनोक्त-ज्ञानभेदं प्रबुद्ध्वा,
परिहृतपरभावः स्वस्वरूपे स्थितो यः।
सपदि विशति यत्तच्चिच्चमत्कारमात्रं,
स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः ।।१७।।

जिनेन्द्रकथित समस्त ज्ञान के भेदों को जानकर,... जिनेन्द्र के मुख से निकले हुए समस्त कथन **समस्त ज्ञान के भेदों को जानकर, जो पुरुष...** अब करना क्या ? यह कहते हैं। यह जानने में आता है तो जानो। **परभावों का परिहार करके,...** आहाहा! परभाव का त्याग करके **निजस्वरूप में रहते हुए,...** आहाहा! अपने निज ज्ञानानन्दस्वरूप में रहे, वह **शीघ्र चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व में प्रविष्ट हो जाता है...** यह गहरे-गहरे कहते हैं वह न ? गुजराती में ऊंडूं.. ऊंडूं.. ऊंडूं.. उतरना। गहरे-गहरे उतरना। यहा गम्भीर कहा है। भगवान आत्मा... कहते हैं कि जिनेन्द्र ने कहे हुए उपयोग को जानकर अपनी पर्याय को गहरे-गहरे द्रव्य-सन्मुख ले जाना। आहाहा! है ?

शीघ्र चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व... बस, यह आत्मा। **शीघ्र चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व में प्रविष्ट हो जाता है - गहरा उतर जाता है,...** अन्दर में / ध्रुव में प्रविष्ट हो जाता है। भाषा कठिन है। अपने गुजराती में ऊंडो.. ऊंडो.. उतारे, ऐसा है। गुजराती है ? ऊंडो उतरे। यहाँ ऐसा कहते हैं, गहरा उतर जाता है। भगवान पूर्ण स्वरूप ज्ञान के भेद जानकर ध्रुवस्वभाव में (गहरा उतर जाए) । पूरी पर्याय है, वह ध्रुव के ऊपर-ऊपर असंख्य प्रदेश में है। ऊपर समझे ? ऐसे नहीं। वह तो यहाँ अन्दर में प्रदेश है, उसमें ऊपर पर्याय है। समझ में आया ? ऊपर अर्थात् ये असंख्य प्रदेश में यहाँ.. यहाँ.. ऊपर ऐसा नहीं। जहाँ-जहाँ प्रदेश है, वहाँ-वहाँ ऊपर पर्याय है। वहाँ से गहरे-गहरे उतरना। पर्याय को छोड़कर अन्दर ध्रुव में जाना।

वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ होता है (अर्थात्, मुक्तिसुन्दरी का पति होता है।) वह मोक्ष में जाता है, ऐसा कहते हैं। पूर्णानन्द की प्राप्ति, अन्तर आत्मा में-ध्रुव में उतरने पर पूर्णानन्द की प्राप्तिरूपी मुक्ति होती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

७ **श्री नियमसार, गाथा-११-१२, प्रवचन - १५४**
दिनांक - १६-०१-१९७६

नियमसार, जीव अधिकार, गाथा ११ और १२।

ज्ञान के भेदों का कथन है। आत्मा त्रिकाली ज्ञानस्वरूप है, त्रिकाली ज्ञानस्वरूप है। उसका ज्ञान और उसके आश्रय से हुए पर्याय में केवलज्ञानादि भेद को बताते हैं। ११-१२ (गाथा)

केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावणाणं ति।
सण्णाणिदरवियप्पे विहावणाणं हवे दुविहं।।११।।
सण्णाणं चउभेयं मदिसुदओही तहेव मणपज्जं।
अण्णाणं ति-वियप्पं मदियाई भेददो चेव।।१२।।

इन्द्रिय-रहित, असहाय, केवल वह स्वाभाविक ज्ञान है।
दो विधि विभाविक-ज्ञान सम्यक् और मिथ्याज्ञान है॥११॥
मति, श्रुत, अवधि, अरु मनःपर्यय चार सम्यग्ज्ञान हैं।
अरु कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन भेद मिथ्याज्ञान हैं॥१२॥

टीका :—यहाँ (इन गाथाओं में) ज्ञान के भेद कहे हैं। पहली बात यह करते हैं कि केवलज्ञान, आत्मा का केवलज्ञान त्रिकाल। अन्तर में ज्ञानमूर्ति भगवान आत्मा, अन्तर ज्ञानस्वभाव से भरपूर पदार्थ का जो ज्ञानरूप भाव—कारणज्ञान, उसके आश्रय से उत्पन्न होनेवाला केवलज्ञान तथा उसके आश्रय से उत्पन्न होते मति-अवधि आदि के भेदों का वर्णन है। पहला केवलज्ञान का वर्णन है।

जो उपाधिरहित... भगवान आत्मा को केवलज्ञान प्राप्त होता है, वह तो उपाधिरहित है, उसमें कुछ उपाधि नहीं है। **जो उपाधिरहित स्वरूपवाला होने से...** ज्ञान है। केवलज्ञान, हों! प्रगट केवलज्ञान की बात चलती है। **केवल है;...** अकेला ज्ञान है, शुद्ध है, मिलावटरहित निर्मल है। उसमें मेल नहीं है। आत्मा की केवलज्ञानपर्याय ऐसी निर्मल, उपाधिरहित, शुद्ध अकेली, विभावरहित शुद्ध है। यह केवलज्ञान। पर्याय केवलज्ञान, कार्य-केवलज्ञान। आहाहा!

आवरणरहित स्वरूपवाला होने से... केवलज्ञान में कोई आवरण नहीं। पूर्ण निरावरण है; इस कारण से केवलज्ञान **क्रम...** क्रम से जानना—ऐसा उसमें नहीं है। केवलज्ञान क्रम से जाने, पहले ऐसे (जाने, फिर ऐसे जाने) - ऐसा नहीं है। क्रमरहित। **इन्द्रिय...** रहित। अन्तर केवलज्ञान क्रम से जानने से रहित है और इन्द्रियों से जानने से रहित है। **और (देश-कालादि) व्यवधान रहित है;...** उसे कोई क्षेत्र और काल की मर्यादा नहीं है। कोई क्षेत्र-काल विघ्न नहीं करता। तीन काल-तीन लोक को निरुपाधि केवलज्ञान है। क्रम और इन्द्रियरहित भगवान आत्मा में केवलज्ञान होता है, उस ज्ञान का ऐसा स्वरूप है। आहाहा! साधारण तो केवली-केवली कहे, परन्तु केवलज्ञान (क्या, उसके स्वरूप की खबर नहीं होती)। है?

एक-एक वस्तु में व्याप्त नहीं होता... क्रम की व्याख्या की। पहले ऐसा जाने और बाद में दूसरा जाने और पश्चात् तीसरा जाने - ऐसा नहीं है। एक समय में, एक समय की पर्याय में तीन काल-तीन लोक को जानने का केवलज्ञान का स्वभाव है। समझ में आया? **(समस्त वस्तुओं में व्याप्त होता है),...** अर्थात्? तीन काल-तीन लोक का ज्ञान होता है। व्याप्त होता है का यह अर्थ है। पर में व्याप्त नहीं होता, परन्तु पर-सम्बन्धी अपने पूर्ण ज्ञान में केवलज्ञान व्याप्त है, जिससे **असहाय है,...** इस कारण से केवलज्ञान इन्द्रियों और दूसरे पदार्थों की सहायरहित है, असहाय है। आहाहा!

वह कार्यस्वभावज्ञान है। कार्यस्वभावज्ञान अर्थात् केवलज्ञान पर्याय हुई न? पर्याय प्रगट है तो कार्यस्वभावज्ञान है। **कारणज्ञान भी वैसा ही है। काहे से?** अब सूक्ष्म बात की। भगवान आत्मा में ज्ञानस्वभाव जो कारणरूप है, जिसके आश्रय से कार्यकेवलज्ञान होता है। आहाहा! अपने स्वभाव में कारणज्ञान त्रिकाल है। उसके आश्रय से कार्यकेवलज्ञान उत्पन्न होता है। समझ में आया? भाषा साधारण है, परन्तु अन्दर माल बहुत है। आहाहा! आत्मा में कारण ज्ञान, त्रिकाली ज्ञान, स्वरूपप्रत्यक्ष ज्ञान (पड़ा ही है)। आहाहा!

श्रोता : वह ज्ञान गुणरूप है या दूसरे किसी रूप?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुणरूप, गुणरूप। कारणरूप कहते हैं न? आत्मा में वह गुणरूप ज्ञान है। त्रिकाल, केवलज्ञानरूपी कार्य का कारण और इस कारण के अवलम्बन से कार्यकेवलज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो यह कहते हैं कि पहले चार ज्ञान उत्पन्न हों, उनसे भी केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता। केवलज्ञान, वह त्रिकाली ज्ञायक कारणस्वभाव के आश्रय से उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया?

कारणज्ञान भी वैसा ही है। आहाहा! कारणज्ञान कौन? आत्म-भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव से भरपूर है, उसे यहाँ कारणज्ञान कहा गया है। कारणज्ञान और कार्यज्ञान कहीं सुना नहीं होगा। समझ में आया? भगवान अरिहन्त को जो केवलज्ञान होता है, उस केवलज्ञान को कार्यकेवलज्ञान कहते हैं और उस केवलज्ञान के कार्य का कारण अन्तर आत्मा में ज्ञानस्वरूप पूर्ण भरपूर है, वह कारणज्ञान है। उस कारण में से कार्य होता है। समझ में आया? कोई दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा करने से केवलज्ञान होता है, (ऐसा नहीं है)।

श्रोता : वह तो राग है, उससे क्या हो? उससे तो बन्ध होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो राग है, विकल्प है। यहाँ तो सम्यक्मति-श्रुतज्ञानादि जो उत्पन्न हुए हों, उनसे भी केवलज्ञान होता है - ऐसा नहीं है। आहाहा!

श्रोता : तो केवलज्ञान बुलाता है वह...

पूज्य गुरुदेवश्री : मतिज्ञान बुलाता है - धवल में पाठ है। भगवान आत्मा आनन्द -ज्ञानस्वरूप है। उसका ज्ञान होने से मति और श्रुतज्ञान उत्पन्न हुआ। सम्यक्, हों! वह मति-श्रुतज्ञान, केवलज्ञान को बुलाता है। बुलाता है-इसका अर्थ-आओ केवलज्ञान, आओ। ऐसा पाठ है। धवल में पाठ है। आहाहा! किसी को मार्ग पूछना हो तो कहते नहीं! भाई! यहाँ आओ। यह मार्ग कहाँ जाता है? पूछते हैं या नहीं? यह मार्ग कहाँ से निकलता है? हम अनजाने हैं। इसी तरह मतिज्ञान आत्मा का सहज कारणस्वभावज्ञान के अवलम्बन से जो मति-श्रुतज्ञान हुआ, वह मति और श्रुतज्ञान, केवलज्ञान को बुलाता है, अर्थात् जैसे चन्द्रमा में चन्द्र में, चन्द्रमा में दूज का (चन्द्र) उगता है न! यह दूज उगती है, वह पूर्णिमा को लाती ही है। वह दूज, पूर्णिमा को बुलाती है, आओ। चन्दुभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! दूर उगती है... अपने (गुजराती में) बीज कहते हैं। दूज उगे, पश्चात् पूर्णिमा होती ही है। समझ में आया? कल पूर्णिमा है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा अन्तर ज्ञानानन्द कारणस्वभावरूप भरा है, उसका स्वरूपग्राही ज्ञान होने से मतिज्ञान और श्रुतज्ञान मोक्ष के मार्गरूपी पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! वह मतिज्ञान और श्रुतज्ञान अल्पज्ञान है, वह केवलज्ञान पूर्ण ज्ञान है, उसे बुलाते हैं। आओ, अल्प काल में मुझे केवलज्ञान प्रगट होओ। बुलाते हैं, ऐसा पाठ है।

श्रोता : लड़का पिता को बुलावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग में बताना हो। रास्ते में चलते-चलते भूल पड़ गयी हो तो

बुलावे, भाई ! खेत में किसान मनुष्य हो, किसान-कृषिकार / (बुलाते हैं) । भाई ! यहाँ आओ। यह मार्ग हमें बताओ। यहाँ आओ।

श्रोता : केवलज्ञान, यह मार्ग बतावे...

पूज्य गुरुदेवश्री : मतिज्ञान कहता है कि केवलज्ञान आओ। इसका अर्थ कि जिसे आत्मा का स्वरूपग्राही मतिज्ञान हुआ, उसे केवलज्ञान होगा, होगा और होगा ही ! आहाहा ! समझ में आया ? शास्त्र का या दूसरा कुछ ज्ञान हो, न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। अपना ज्ञानस्वरूप भगवान सूक्ष्म है, भगवान ! आहाहा !

कहा न ? **कारणज्ञान भी वैसा ही है।** वैसा ही अर्थात् कार्यज्ञान जैसा है - असहाय, इन्द्रियरहित, क्रम से जाननेरहित और देश-काल का उसमें विघ्न नहीं, ऐसा कारणरूप ज्ञान अन्दर आत्मा में है। आहाहा ! वह भी वैसा ही असहाय... आहाहा ! कैसा है ? वैसा ही है। कार्यज्ञान जैसा ही आत्मा का ज्ञान अन्दर है। **काहे से ? निजपरमात्मा में विद्यमान...** है। आहाहा ! निज आत्मा में विद्यमान है। ऐसा **सहजदर्शन,...** क्या कहते हैं ? आत्मा में अन्दर सहजदर्शन पड़ा है। स्वाभाविक दर्शन त्रिकाल पड़ा है और **सहजचारित्र,...** आहाहा ! भगवान आत्मा में स्वभाविक चारित्रशक्ति पड़ी है, स्वभाविक चारित्रगुण। पर्याय का यह चारित्र नहीं। अन्दर स्वरूप में सहजचारित्रस्वरूप त्रिकाल पड़ा है। आहाहा !

सहजदर्शन,... परमात्मा अर्थात् आत्मा। अपना परम आत्मा, परमस्वरूप जो ध्रुवस्वरूप, नित्यस्वरूप है, उसमें विद्यमान सहजदर्शन है, स्वभाविक चारित्र त्रिकाल में है। त्रिकाल में स्वभाविक पूर्ण शान्ति पड़ी है। आहाहा ! **सहजसुख...** है। आत्मा में स्वभाविक आनन्द पड़ा है। आहाहा ! समझ में आया ? सुख नहीं विषय में, सुख नहीं लक्ष्मी में, सुख नहीं इज्जत में। आहाहा !

श्रोता : अच्छे गुरु मिलें, उसमें तो सुख है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें से कुछ मिले, ऐसा नहीं है। अन्दर में से मिले, ऐसा है। अन्दर में स्वसुख भरा है। आहाहा ! समझ में आया ?

श्रोता : ऐसा कहा किसने ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जाननेवाला स्वयं अपने को बतावे। पोते अर्थात् स्वयं। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो अन्दर में ऐसा कहना है कि भगवान आत्मा त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है, उसका

जिसे ज्ञान होता है, वह ज्ञान परपदार्थ को अपने से भिन्न है, ऐसा वह ज्ञान जानता है। स्वरूपग्राही ज्ञान के बिना पर का ज्ञान यथार्थ नहीं होता। नवरंगभाई! कलश-टीका में दृष्टान्त दिया है न? कलश में आता है। ६०वाँ कलश है। यह सब्जी कहते हैं न, सब्जी? क्या कहते हैं? सब्जी में नमक है, नमक। नमक खारा है और सब्जी खारी नहीं, इसका ज्ञान किसे होता है? अज्ञानी मानता है, वह नहीं, वह ज्ञान यथार्थ नहीं। जिसे आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है, ऐसा अन्तर में ज्ञान हुआ हो, वह सब्जी और नमक। शाक कहते हैं न? और नमक। इन दो का भिन्न ज्ञान उसे सच्चा होता है। चन्दुभाई! क्या कहा यह? नमक खारा है और सब्जी खारी नहीं, इसका ज्ञान भी स्वरूपग्राही ज्ञानवाले को ऐसा व्यवहारज्ञान होता है। आहाहा!

श्रोता : आत्मज्ञानी...

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मज्ञान होवे, उसे यथार्थ पर का ज्ञान होता है। पानी शीतल है और अग्नि के निमित्त से गर्म हुआ। यह गर्म और शीतल का ज्ञान, जिसे स्वरूपग्राही ज्ञान हुआ हो, अन्तर ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा का भान हुआ हो, उसे यह शीतल और उष्ण का सच्चा ज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया? शीतल-गर्म परवस्तु है, तो परवस्तु का ज्ञान यथार्थ किसे होता है? कि जिसे अपने ज्ञानस्वरूप का ज्ञान हुआ है। चन्दुभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! कलश में है। ऐई! नवरंगभाई! दवा का ज्ञान भी, यह दवा ठीक और यह दवा ठीक नहीं, इसका ज्ञान किसे होता है? स्वरूपग्राही ज्ञानी को ही पर का यथार्थ ज्ञान होता है। जिसे स्व का यथार्थ ज्ञान हुआ, उसे पर का ज्ञान, स्व-परप्रकाशक यथार्थ होता है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! वीतरागमार्ग ऐसा सूक्ष्म है। लोगों ने बाहर से स्थूल माना है। मूल चीज़ ही नहीं मिली। आहाहा!

भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी कारणरूप ज्ञान जो है, उसके आश्रय से जो सम्यग्ज्ञान होता है, वह मोक्ष के मार्ग का मार्ग है और मार्ग अर्थात् तीन प्रकार हैं न? दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसमें वह ज्ञानभाव है। और वह ज्ञान अपने कारणज्ञान में से उत्पन्न हुआ है, इसलिए वह ज्ञान यथार्थ है और वह ज्ञान, राग को भी जानता है कि यह राग है और मैं शुद्ध हूँ। ऐसा भेदज्ञान, यथार्थ ज्ञानी को ही ऐसा भेदज्ञान होता है। आहाहा! क्या कहा? समझ में आया? मार्ग तो सूक्ष्म है, भगवान!

मुझमें आनन्द है, ऐसा जिसे अन्तर का ज्ञान हुआ, उस ज्ञान में यह राग दुःखरूप है, इन्द्रिय, शरीर आदि पर हैं, उसको यथार्थ ज्ञान होता है। समझ में आया? यह देह पर है और कर्म पर है तथा दया, दान, विकल्प शुभभाव का राग उत्पन्न होता है, वह पर है, उसका

यथार्थ ज्ञान किसे होता है ? आहाहा ! कि जिसने ज्ञानमय भगवान आत्मा के सन्मुख होकर ज्ञान किया, उसे राग भिन्न है, शरीर भिन्न है, ऐसा वास्तविक ज्ञान उसे होता है। आहाहा ! अरे ! यह तो केवलज्ञान की बातें, बापू ! केवलज्ञान किसे कहें ? लोग यों ही पर्याय मानें। णमो अरिहंताणं... केवल किसे कहना ? आहाहा !

जिसे एक समय में तीन काल-तीन लोक का, तीन काल-तीन लोक को स्पर्श किये बिना। स्पर्श किये बिना, तीन काल-तीन लोक हैं, उन्हें स्पर्श किये बिना केवलज्ञान होता है। आहाहा ! और एक समय में, सेकेण्ड में असंख्य समय जाते हैं, उसमें एक समय में... आहाहा ! तीन काल, तीन लोक का ज्ञान होता है। यह ८०वीं गाथा में कहा न ? '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं**' जो कोई अरिहन्त के द्रव्य, गुण और पर्याय को जानता है, वह अपने आत्मा को जानता है। मैं भी ऐसा हूँ, ऐसी तुलना करता है। आहाहा ! समझ में आया ? '**जो जाणदि अरहंतं**' अरिहन्त का द्रव्य अर्थात् आत्मा, गुण अर्थात् अन्दर त्रिकाल शक्ति और पर्याय अर्थात् केवलज्ञानादि वर्तमान अवस्था। उन्हें जो पहले विकल्प से बराबर जानता है। पश्चात् उनके स्वरूप में तुलना करता है कि मैं भी, जैसा उनका द्रव्य है, वैसा द्रव्य मैं हूँ, उनके गुण जैसा मुझमें गुण है और केवलज्ञान की पर्याय मुझमें प्रगट होने की शक्ति है, ऐसी अन्तर्दृष्टि करने पर सम्यग्ज्ञान होता है और सम्यग्दर्शन होता है। केवलज्ञान की पर्याय के साथ मिलान करता है। आहाहा ! समझ में आया ? सब बातें भारी सूक्ष्म, भाई ! कुछ करना हो और यह करे। चलो जाओ पूजा करना, भक्ति करना, यह करना, उसमें सूझ पड़ जाए। उसमें धूल भी नहीं है। आता है, होता है परन्तु वह तो हेय है। आहाहा !

अपना भगवान आत्मा अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. जिसकी शक्ति, जिसकी शक्ति का सामर्थ्य। एक-एक गुण की शक्ति का सामर्थ्य अनन्त है। क्षेत्र में भले छोटा हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। स्वभाव की सामर्थ्य का एक-एक आत्मा में एक-एक ज्ञान का अनन्त सामर्थ्य है। उस कारणज्ञान को अवलम्ब कर जो कुछ मति-श्रुतज्ञान पहले होता है, उसे धर्म कहते हैं और मति-श्रुतज्ञान का व्यय होकर केवलज्ञान होता है, उस कारणकेवलज्ञान में से केवलज्ञान होता है। मति-श्रुत का तो अभाव हो जाता है। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं कि **निजपरमात्मा में विद्यमान...** है ? क्या ? **सहजदर्शन,...** त्रिकाल। **सहजचारित्र,...** त्रिकाल। **सहजसुख...** त्रिकाल। **और सहजपरमचित्शक्तिरूप...** वीर्य। **सहजपरमचित्शक्तिरूप निजकारणसमयसार के...** आहाहा ! अन्तर का कारणज्ञान, अन्तर का ध्रुवज्ञान, सहजदर्शन, सहजचारित्र, सहजसुख, सहजपरमचित्शक्तिरूप, ऐसे कारणसमयसार

के **स्वरूपों को युगपद् जानने में समर्थ...** है। शक्ति, हों! समझ में आया? यह क्या कहा?

भगवान आत्मा में जो सहजकारणज्ञान ध्रुव है, उसके आश्रय से कार्यज्ञान केवल (ज्ञान) होता है परन्तु वह सहजज्ञान कैसा है? कि अपने में विद्यमान त्रिकाली सहजदर्शन, त्रिकाल, सहजसुख, सहज वीर्य और सहज चारित्र... आहाहा! उन्हें युगपद् निजकारणसमयसार। उन्हें निजकारणसमयसार कहा। किसे? उस **निजपरमात्मा में विद्यमान सहजदर्शन, सहजचारित्र, सहजसुख और सहजपरमचित्शक्तिरूप निजकारणसमयसार के स्वरूपों को...** आहाहा! **युगपद् जानने में समर्थ होने से वैसा ही है।** ध्रुव ज्ञान, हों! स्वरूपप्रत्यक्ष ध्रुवज्ञान जो है, वह ज्ञान आत्मा में विद्यमान दर्शन, सुख, चारित्र, वीर्य ऐसा जो कारणसमयसार, उसे ज्ञान, कारणज्ञान युगपद् जानने को समर्थ है। आहाहा! लोगों को विश्वास कहाँ है कि यह क्या चीज़ है? समझ में आया?

आत्मा-भगवान आत्मा देह से भिन्न, राग से भिन्न और अपने स्वभाव से अभिन्न। ऐसे स्वभाव में विद्यमान ज्ञान, त्रिकाली कारणज्ञान, जिसमें से कार्यज्ञान पर्याय में उत्पन्न होता है, वह कारणज्ञान कैसा है? कि अन्दर में परमात्मस्वरूप में विद्यमान दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्य। उस कारणसमयसार को अन्दर विद्यमान ज्ञान युगपद् जानने में समर्थ है। आहाहा! समझ में आया? सुजानमलजी!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्व के ज्ञान बिना पर का ज्ञान यथार्थ नहीं होता।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...बोलता है, वह पर के ज्ञान में। आहाहा! यह मैंने इन्द्रिय से जाना, यह चीज है तो मुझमें ज्ञान हुआ, ऐसी इसे गड़बड़ हो जाती है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

सर्वज्ञ परमात्मा अरिहन्तदेव सर्वज्ञ परमेश्वर जो केवलज्ञान को प्राप्त हुए, तो कहते हैं कि केवलज्ञान तो कार्यज्ञान है। पर्याय कहो या कार्य कहो। उस कार्यज्ञान का कारण कौन? त्रिकाली आत्मा में विद्यमान ज्ञान, जो ज्ञान त्रिकाली ज्ञान, सहजदर्शन, सहजसुख, सहजचारित्र, सहजवीर्य—ऐसे कारणसमयसार को, जो अन्तर में विद्यमान ज्ञान, कारणसमयसार को जानने में समर्थ है। आहाहा!

अन्दर भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु विराजता है। उसमें जो ज्ञान है, उसे यहाँ कारणज्ञान कहा, क्योंकि उसके कारण से कार्यज्ञान-केवलज्ञान उत्पन्न होता है परन्तु अन्तर में

वह ज्ञान कैसा है ? कि जो परमात्मस्वरूप अपना है, उसमें रहनेवाला दर्शन, उसमें रहनेवाला आनन्द, उसमें रहनेवाला चारित्र, चित्शक्तिवीर्य। ऐसे कारणसमयसार को, ध्रुवसमयसार को ध्रुवज्ञान जानने में युगपद् समर्थ है। ऐसी बात है। इस वस्तु का अभ्यास घट गया है। मूल तत्त्व का—द्रव्य, गुण और पर्याय जो कि मूल इकाई है, उसकी खबर नहीं होती और ऐसा का ऐसा ऊपर से चला जाता है। दृष्टि रह गयी। आहाहा!

श्रोता : ध्रुव, ध्रुव को जानता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जानने की शक्ति है, ऐसा। कार्यरूप नहीं। ध्रुव में विद्यमान ज्ञान, ध्रुव में विद्यमान दर्शन, चारित्र, सुख को एकसाथ जानने की शक्ति है, उसे जानता है – ऐसा कहने में आता है।

निजकारणसमयसार के स्वरूपों को... आहाहा! त्रिकाल निजकारणज्ञान, **निजकारण-समयसार के...** कि जिसमें दर्शन, चारित्र आदि विद्यमान हैं। ऐसे निज कारणसमयसार को युगपद् जानने को समर्थ, उसकी जानने की ताकत है। आहाहा! ऐसा कार्यज्ञान जैसा होने से वैसा ही है। आहाहा! अरे! एक बोल भी यथार्थ समझे न... शास्त्र में पाठ है। जयसेनाचार्यदेव का। एक भाव बराबर समझे तो सर्वभाव समझ में आते हैं। एक भाव भी यथार्थ समझ में आवे तो सब भाव समझ में आते हैं। एक भाव यथार्थ समझे बिना ऊपर-ऊपर से ग्यारह अंग पढ़ गया, नौ पूर्व पढ़ डाले, पढ़कर डाल दिया। आहाहा! कैसी बात की है! देखो! ऐसी बात दूसरे शास्त्र में इतनी बात (नहीं आयी)। दूसरे अर्थात् अपने दिगम्बर शास्त्र में। इतनी स्पष्ट बात यहाँ है। समझ में आया ? यह सब यहाँ उत्कीर्ण हो गयी है। सब टीका उत्कीर्ण हो गयी है। आहाहा! अन्दर में उत्कीर्ण करना, यह बात करते हैं। आहाहा!

आत्मा अरूपी पदार्थ-तत्त्व है। उसमें त्रिकाली ज्ञान जो है, उसे यहाँ कारणज्ञान (कहा है)। जैसा कार्यज्ञान-केवलज्ञान है, वैसा कारणज्ञान है, ऐसा कहा। जैसा कार्यज्ञान है, वैसा कारणज्ञान है, ऐसा कहा। आहाहा! है न ? देखो न! **कारणज्ञान भी वैसा ही है।** ऐसा है न ? शुरुआत वहाँ से की है। **कारणज्ञान भी वैसा ही है।** कैसा ? कार्यज्ञान जैसा। भगवान को जो केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, वह कार्य है, पर्याय है। पर्याय का कार्य है, ऐसा द्रव्य का कारणज्ञान वैसा ही है। आहाहा! विश्वास, इसे अन्दर से विश्वास आना चाहिए।

पूर्णज्ञानघन भगवान अकेला चैतन्य का पुंज! आहाहा! उसमें जैसा कारणज्ञान पड़ा है। उस कारणज्ञान के साथ में कारणसमयसारस्वरूप भगवान, उसमें स्वाभाविक दर्शन, स्वाभाविक

चारित्र, स्वाभाविक सुख, वीर्य - चतुष्टय लिए। स्वचतुष्टय शक्तिरूप अन्दर विद्यमान हैं, उन्हें कारणज्ञान जानने में (समर्थ है)। कार्यज्ञान जैसे जानता है, वैस ही जानता है। समझ में आया? आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहें तो आत्मा में सर्वज्ञस्वभाव पड़ा है। जो केवलज्ञान हुआ, वह तो पर्यायरूप सर्व ज्ञान हुआ। अन्दर में सर्व ज्ञान पड़ा है। जैसा कार्य है, वैसा सर्व ज्ञान का कारण है। आहाहा! ज्ञ - स्वभावी भगवान। स्वभाव ज्ञ और स्वभावी आत्मा। ज्ञ स्वभावी आत्मा, उसे जो ज्ञ की पूर्णता लगा दो तो सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा है क्योंकि ज्ञ है, उस स्वभाव में पूर्णता है, अपूर्णता हो नहीं सकती। समझ में आया? आत्मा... स्वभाव ज्ञ। जानने का स्वभाव। त्रिकाल, हों! अब जानने का स्वभाव, उसमें अपूर्णता और विपरीतता नहीं है। इस कारण से जानना, ऐसा स्वभाव, ज्ञ स्वभावी सर्वज्ञस्वभावी हुआ। आहाहा! समझ में आया? श्रीपालजी! ऐसी बातें हैं, भाई!

यह ज्ञ स्वभावी आत्मा। वस्तु, ज्ञ जिसका जाननस्वभाव है। जानन जिसका स्वभाव, उस जाननस्वभाव में परिपूर्णता है। क्योंकि स्वभाव है, उसमें अपूर्णता या विपरीतता नहीं होती, तो ऐसा ज्ञ स्वभाव, सर्वज्ञस्वभाव, वह कारणज्ञान है। आहाहा! ऐसा उपदेश। यह किस प्रकार का उपदेश! भाई! मार्ग यह है। वीतराग का मार्ग ऐसा है। उस सर्वज्ञस्वभाव को यहाँ कारणज्ञान कहा और वह कारणज्ञान; जैसे सर्वज्ञ पर्याय सर्व को जानती है, वैसे कारणज्ञान सर्व ज्ञान हुआ न? सर्वज्ञ ज्ञान, तो वह भी अन्दर में दर्शन, ज्ञान सर्व को जानता है। आहाहा! बहुत संक्षिप्त में बहुत भरा है। ओहोहो! मुनिराज की टीका है। दिगम्बर सन्त जंगल में रहते थे। सिद्ध के साथ बातें करते थे। बातें करते थे, इसका अर्थ जानते थे।

यहाँ तो कहते हैं कि अल्प ज्ञान किसी शास्त्र का हो, नव पूर्व तक का ज्ञान हो तो भी उसका उसे अभिमान हो कि मुझे ज्ञान है, तो वह मिथ्यादृष्टि है क्योंकि केवलज्ञानरूपी कार्य जहाँ नहीं है और उसका कारणरूप ज्ञान परिपूर्ण है, उसकी प्रतीति उसे नहीं है, इससे ऐसे अल्प ज्ञान में अभिमान होता है। मगनभाई! फिर से। फिर से, अपने वहाँ कहाँ...?

ज्ञान की वर्तमान पर्याय में नव पूर्व तक का ज्ञान हो जाए। यह तो पाँच, पचास हजार या पाँच-दस लाख श्लोक का ज्ञान हो, तो उसे ऐसा होता है कि ओहोहो! भाई! तुझे ज्ञान का अभिमान हुआ। वह तो मिथ्यादृष्टि है। क्यों? - कि उससे अनन्तगुणी केवलज्ञान की कार्यपर्याय है, उसकी तुझे कीमत नहीं और केवलज्ञान कार्य का कारण जो है, वह तो महान अनन्त-अनन्त केवलज्ञान उत्पन्न होने का कारण है। उसका यदि माहात्म्य होवे तो तुझे अल्प

ज्ञान में अभिमान नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

आत्मा में कारणज्ञान जो त्रिकाल है, वह सर्वज्ञस्वभाव है, जिसे सर्वज्ञशक्ति कही है। सैंतालीस शक्ति में अपने आया है, सैंतालीस शक्ति में विस्तार किया है। शक्ति है, सर्वज्ञशक्ति है, वह कारणज्ञान है। आहाहा! उस कारणज्ञान की इतनी ताकत है कि जैसा केवलज्ञान कार्य है, वैसा ही उसे जानता है। मात्र वह कार्यरूप है, यह कारणरूप है। तो अन्दर कारणरूप जो ध्रुवज्ञान है, वह अन्तर में रहनेवाले दर्शन, चारित्र, सुख और वीर्य को एक समय में युगपद् (जानने की शक्ति है)। है न? युगपद् शब्द है, देखो! आहाहा! अन्तर स्वरूप में ज्ञान ऐसी ताकतवाला है। स्वरूप में ध्रुव, हों! उस स्वरूप में रहे हुए दर्शन-सुख और आनन्द, वीर्य आदि को एक समय में युगपद्-साथ में जानने की शक्ति है। आहाहा! शक्ति... आहाहा! उसकी जिसे श्रद्धा है, वह केवलज्ञान बिना अपनी पर्याय में अधूरा मानता है, मैं तो पामर हूँ। आहाहा! समझ में आया? कहाँ केवलज्ञान और कहाँ मेरा अपूर्ण ज्ञान! वर्तमान पर्याय... ज्ञान की कितनी कीमत? उसे अभिमान नहीं होता। समझ में आया? दूसरे तो थोड़े शास्त्र पढ़े, पाँच-पच्चीस, पचास हजार, लाख-दो लाख श्लोक पढ़े। हमने ऐसा जाना और हम ऐसा जानते हैं, उसका अभिमान मिथ्या है। उसका केवलज्ञान-कार्यज्ञान और अन्दर शक्तिज्ञान की प्रतीति उसे नहीं है। आहाहा! बराबर है? आहाहा!

भगवान विराजता है, भाई! देहदेवल में परमात्मा (विराजता है)। यह हड्डियाँ-चमड़ी, पुण्य और पाप राग से भिन्न भगवान अन्दर चैतन्य विराजता है। उस चैतन्य में कारणज्ञान कैसा है? कि जैसा कार्यज्ञान युगपद् इन्द्रिय बिना, क्रम बिना और असहाय सबको एक साथ जानता है, कारणज्ञान ऐसा ही है कि जो कारणज्ञान अन्तर में कारणरूप त्रिकाल दर्शन, त्रिकाल आनन्द है, उसे एक समय में युगपद् जानने की ताकत रखता है। आहाहा! अरे! समझ में आया? **इस प्रकार शुद्धज्ञान का स्वरूप कहा।** लो। इस प्रकार शुद्धज्ञान का स्वरूप कहा। आहाहा! समझ में आया?

अब, यह (निम्नानुसार) शुद्धाशुद्धज्ञान का स्वरूप और भेद कहे जाते हैं... मति-श्रुत आदि हैं, वे शुद्धाशुद्ध हैं, पूर्ण शुद्ध नहीं तथा अशुद्ध भी नहीं; किंचित् शुद्ध और किंचित् अशुद्ध हैं। मति-श्रुतज्ञानादि... अवधि आदि। आहाहा! समझ में आया? **शुद्धाशुद्धज्ञान का स्वरूप और भेद...** कितने प्रकार हैं, यह कहने में आता है। आहाहा! **उपलब्धि...** है? **भावना और उपयोग से...** ये तीन प्रकार हैं। नीचे है २ (का सांकेतिक अंक) **मतिज्ञान तीन प्रकार**

का है, उपलब्धि, भावना, और उपयोग। तीन की व्याख्या। **मतिज्ञानावरण का क्षयोपशम जिसमें निमित्त है - ऐसी अर्थग्रहणशक्ति (पदार्थ को जानने की शक्ति), सो उपलब्धि है;...** यह मतिज्ञान का भेद है। यह उपलब्धि भी शुद्धाशुद्ध है। आहाहा! ऊपर है न शुद्धाशुद्ध, वह सबको लागू करना। आहाहा! **जाने हुए पदार्थ के प्रति पुनः पुनः चिन्तन, सो भावना है;...** यह पंचास्तिकाय की बात की है। पंचास्तिकाय में जयसेनाचार्य की टीका में है, वहाँ से लिया है। टीका में आया था न? जो जानी हुई बात है, उसका बारम्बार चिन्तवन करना। समझ में आया? यह भावना। यह भावना भी शुद्धाशुद्ध है। आहाहा!

श्रोता : किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : जितनी शुद्ध है, उतनी शुद्ध है परन्तु अभी कर्म का निमित्त है न, इस अपेक्षा से, इतनी न्यून है न? इस अपेक्षा से अशुद्ध है। आहाहा! केवलज्ञान शुद्ध है। त्रि-काली। तीन काल को जाननेवाला और उसका कारणज्ञान शुद्ध है, पूर्ण स्वरूप में पड़ा है। यह जो ज्ञान मतिज्ञान की उपलब्धि और भावना और उपयोग। उपलब्धि, भावना और उपयोग। यह मतिज्ञानावरणीय का उघाड़ जिसमें निमित्त है, क्षयोपशम जिसमें निमित्त है, हों! अपनी उत्पादन शक्ति तो स्वयं से है। कोई ऐसा कहता है कि मतिज्ञानावरणीय का उघाड़ होने से इतनी शक्ति प्रगट हुई। ऐसा नहीं है। वह तो निमित्त की बात है। अपनी पर्याय में परपदार्थ की ग्रहण शक्ति है, वह अपने पुरुषार्थ से प्रगट होती है। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं न, ज्ञानावरणीय कर्म से ज्ञान होता है। ऐसा नहीं है। अपने ज्ञान की परिणति में न्यूनरूप परिणमन स्वयं से होता है, तब ज्ञानावरणीय को निमित्त कहने में आता है। आहाहा!

श्रोता : कानजीस्वामी कहते हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहते हैं न। कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि अपनी इच्छा से ज्ञान होता है। ऐसा प्रश्न उठा था। बात तो ऐसी है परन्तु वे मानते नहीं, इसलिए उन्हें विरुद्ध लगा था। समझ में आया? यहाँ तो अभी तो... क्या कहा? कि मतिज्ञानावरणीय का क्षयोपशम जिसमें निमित्त है, मतिज्ञानावरणीय का क्षयोपशम जिसमें निमित्त है। उपादान क्षयोपशम तो अपनी पर्याय से हुआ है। आहाहा! समझ में आया? अरे! मतिज्ञानावरणक्षयोपशम का उघाड़, वह तो निमित्त है। ऐसी अर्थग्रहण शक्ति स्वयं से उत्पन्न हुई है।

अर्थग्रहण शक्ति—**(पदार्थ को जानने की शक्ति), सो उपलब्धि है;...** वह भी शुद्धाशुद्ध है। वह शुद्धाशुद्ध सबको लगाना। आहाहा! **जाने हुए पदार्थ के प्रति पुनः पुनः चिन्तन, सो भावना है;...** वह भी अपने पुरुषार्थ की कमी से इतना विकास है। **'यह काला है' 'यह पीला**

है' इत्यादिरूप अर्थग्रहणव्यापार (पदार्थ को जानने का व्यापार) सो उपयोग है। आहाहा! परन्तु मतिज्ञानावरणीय का क्षयोपशम निमित्त और विकास अपने से हुआ, तो मतिज्ञान के क्षयोपशम को शुद्धाशुद्ध कहने में आया है। पूर्ण शुद्ध नहीं, पूर्ण अशुद्ध नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अवग्रहादि भेद से... यह मतिज्ञान के भेद कहे न? और अवग्रह, ईहा, अवाय। नीचे है। **मतिज्ञान चार भेदवाला है : अवग्रह,...** अवग्रह अर्थात् क्या? कोई चीज़ है, उसे पहले जानने से शुरुआत; पश्चात् विचारणा; पश्चात् निर्णय और धारणा। **(विशेष के लिए ''मोक्षशास्त्र (सटीक)'' देखें।)** यह तो आया था। **अवग्रह, ईहा (विचारणा), अवाय (निर्णय) और धारणा।** मतिज्ञान में अवग्रह, ईहा आदि भेद पड़ते हैं। उसमें लिया है कि जितना ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम अंश शुद्ध है, उसे शुद्ध कहते हैं। ऐसा कहा है। कहाँ? मोक्षमार्गप्रकाशक, उसका अंश स्वभाव है न? वह अपेक्षित बात है। यहाँ तो कहते हैं कि शुद्धाशुद्ध है। अपूर्णता बतलानी है और शुद्ध प्रगट है, यह बतलाना है। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में है कि भाई! जितना क्षयोपशम का अंश है, वह बन्ध का कारण नहीं है। बन्ध का कारण, वह अंश स्वभाव क्षयोपशम किस प्रकार बन्ध का कारण होगा? यह अपेक्षा से कहा, तथापि यहाँ कहते हैं कि जितना वह क्षयोपशम अंश प्रगट हुआ—उपलब्धिरूप, भावनारूप या उपयोगरूप, वह शुद्धाशुद्ध है; एकदम शुद्ध नहीं, एकदम अशुद्ध नहीं।

वह ऐसा है कि अज्ञान, वह बन्ध का कारण है, अज्ञान। क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्वपर को जानने का है, तो अज्ञान में पर को जानता है और स्व को नहीं जानता; इसलिए वह ज्ञान का दोष है, वह बन्ध का कारण है। श्लोकवार्तिक में लिया है। समझ में आया? यह चर्चा तो हमारे बहुत वर्ष पहले चलती थी न? उसमें दामोदारसेठ के साथ चर्चा हुई। उस ओर तो पैसेवाले एक थे न? दस लाख रुपये साठ वर्ष पहले। दस लाख। उसमें चर्चा चलती थी, देखो! शराब है, शराब पीता है, वह ज्ञान को पागल बनाती है या नहीं? शराब पर है, परन्तु अपने को पागल बनाती है। मैंने कहा — नहीं, बिल्कुल मिथ्या बात है। स्वयं से पागल हुआ है। पंचाध्यायी में है। समझ में आया? पहले से बहुत चर्चा चलती थी। आत्मा में जो ज्ञान की पर्याय में, शराब पीने से जो गहलता दिखती है, वह शराब के कारण नहीं। गहलता की पर्याय में उत्पत्ति स्वयं के कारण से हुई है। समझ में आया? सत्य को सत्यरूप से समझना चाहिए। उल्टा-सीधा, कम-अधिक-विपरीत समझे, वह अपने आ गया।

रत्नकरण्डश्रावकाचार में कलश आ गया कि जो ज्ञान में न्यून समझे, वह अयथार्थ है, विपरीत समझे, अधिक समझे वह मिथ्याज्ञान है। जैसा है, उस प्रकार से समझना, वह सम्यग्ज्ञान है। समझ में आया? नीचे है न? मोक्षशास्त्र देख लेना।

मतिज्ञान बारह भेदवाला है : बहु, एक,... यह सब... है। **एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, अनि:सृत, नि:सृत, अनुक्त, उक्त, ध्रुव तथा अध्रुव। लब्धि और भावना के भेद से श्रुतज्ञान दो प्रकार का है।** यह मतिज्ञान की बात यहाँ ली। अब श्रुतज्ञान। लब्धि और भावना के दो भेद। **देश, सर्व और परम के भेद...** यह मन:पर्ययज्ञान। लब्धि और भावना क्या?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी उपयोग ही है। लब्धि और लब्धि है न? ....भावना उपयोग, वर्तमान व्यापार। वह इसमें लिया। दूसरा नहीं लिया। मति में लिया होगा।

श्रोता : भावना इस प्रकार से...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भावना उपयोग है यहाँ। लब्धरूप उघाड़ और उपयोगरूप भाव। दो। ऐसे भेद से **श्रुतज्ञान दो प्रकार का है। देश, सर्व और परम के भेद से...** अवधि के भेद, परन्तु यह श्रुतज्ञान कहा, वह भी शुद्धाशुद्ध है। आहाहा! बारह अंग का ज्ञान प्रगटे तो भी शुद्धाशुद्ध है। आहाहा! बारह अंग का ज्ञान श्रुतज्ञान शुद्धाशुद्ध है। आहाहा! ऊपर आ गया। **(निम्नानुसार) शुद्धाशुद्धज्ञान का स्वरूप और भेद कहे जाते हैं...** आहाहा!

एक बात तो ऐसी है कि बारह अंग तो शुद्धाशुद्ध है, परन्तु बारह अंग में जो कहा है, वह स्थूल व्याख्यान है, स्थूल कहा है, ऐसा पंचाध्यायी में पाठ है। सूक्ष्म-सूक्ष्म बात तो बहुत रह गयी। आहाहा! समझ में आया? भगवान को जितना जानने में आया, उसके अनन्तवें भाग कथन में आता है। आहाहा! उसके अनन्तवें भाग या अमुक भाग गणधर समझ सकते हैं और उसकी अमुक भाग की रचना कर सकते हैं। ऐसी शक्ति। आहाहा! उसमें ज्ञान के गुण की महिमा और ज्ञान की पूर्णता की महिमा ज्ञात होती है। आहाहा! बारह अंग उसे कहते हैं। आहाहा! एक आचारांग में अठारह हजार पद। एक आचारांग में अठारह हजार पद और एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक। आहाहा! ऐसे-ऐसे छत्तीस हजार, बहत्तर हजार डबल आचारांग। यह बारह अंग का ज्ञान भी अल्प है, यह भी शुद्धाशुद्ध है। आहाहा! समझ में आया?

अवधिज्ञान। अवधिज्ञान है न? रूपी को जानता है। **देशावधि,...** थोड़ा जाने, **सर्वावधि...** अधिक जाने, **परमावधि...** एकदम मुनि को होता है और फिर केवलज्ञान होता है। **(ऐसे तीन**

भेदों के कारण) अवधिज्ञान तीन प्रकार का है। सर्वअवधि, परमावधि। लोकालोक, सब। लोक को तो जाने परन्तु उससे असंख्यगुना लोक हो तो भी जाने, ऐसी परमावधि में शक्ति है। प्रत्यक्ष जाने। उसे भी शुद्धाशुद्ध कहा है। क्या कहा? शुद्धाशुद्धज्ञान का स्वरूप कहा है। कार्यज्ञान की व्याख्या आ गयी। वह शुद्ध है। कारणज्ञान की व्याख्या हुई, वह परमशुद्ध है। यह क्षयोपशमभाव है, वह शुद्धाशुद्ध है। आहाहा! ऐसी बात सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। अज्ञानी ने देखा नहीं, दिखा नहीं और सब धर्म के नाम से कथन किये। समझ में आया? अरे! ऐसी शुद्धाशुद्ध और ऐसी स्पष्टता श्वेताम्बर में भी नहीं है। समझ में आया? न्याय से देखो तो एक-एक शब्द में अन्दर में तुलना की है।

एक ओर कार्यज्ञान पूर्ण बतलाया। एक ओर कार्यज्ञान जैसा कारण बतलाया। कारणज्ञान सर्व शुद्ध है। अब मति-श्रुत आदि के भेद शुद्धाशुद्ध हैं। आहाहा! समझ में आया?... तत्पश्चात् शुद्ध है, अपूर्ण है, इस अपेक्षा से अशुद्ध है। आहाहा! अवधिज्ञान का भेद हुआ। विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

८

श्री नियमसार, गाथा-११-१२, प्रवचन - १५५
दिनांक - १८-०१-१९७६

नियमसार की ११-१२ गाथा। अवधिज्ञान तक आ गया न? क्या कहा? पहले थोड़ा आ गया है कि जो केवलज्ञान है, वह कार्यज्ञान है। पर्याय में जो कार्य उत्पन्न होता है, वह केवलज्ञान-कार्यज्ञान है और अन्तर में जो त्रिकाली ज्ञान है, वह कारणज्ञान है। त्रिकाली आत्मा का ज्ञानस्वभाव चिद्विलास ध्रुवज्ञान जो है, वह कारणज्ञान है और केवलज्ञानपर्याय प्रगट होती है, वह कार्यज्ञान है। ज्ञान के भेद का कथन है न?

पश्चात् शुद्धाशुद्ध ज्ञान का भेद, यह चलता है। उसमें यह आया कि मति और श्रुतज्ञान भी शुद्धाशुद्ध है; अवधिज्ञान भी शुद्धाशुद्ध है। यहाँ तक आ गया। समझ में आया? यह तो ज्ञान के अधिकार में त्रिकाली ज्ञानस्वरूप जो भगवान ध्रुव, वह मोक्ष का मूलकारण है। समझ में आया? भगवान आत्मा में अनन्त-अनन्त अपरिमित ज्ञान शक्तिरूप स्वभाव है। मोक्ष का मूलकारण वह है। आहाहा! बीच में यह चार ज्ञान, तीन अज्ञान इत्यादि, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अपने अवधिज्ञान तक आया है।

अब मनःपर्ययज्ञान की बात है। **ऋजुमति और विपुलमति के भेद के कारण मनःपर्ययज्ञान दो प्रकार का है।** है? **परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि को...** अब क्या कहते हैं? आहाहा! सम्यग्दृष्टि धर्मी, धर्म की शुरुआतवाला धर्मी किसे कहते हैं?—कि जो परमभाव में स्थित है। आहाहा! परमभाव जो ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव... आहाहा! उसमें जिसकी दृष्टि है और स्थिर है। आहाहा! समझ में आया? **परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि को...** व्याख्या देखो न! संक्षिप्त कैसी की है! सम्यग्दृष्टि किसे कहते हैं? धर्म की शुरुआतवाला जीव किसे कहते हैं? - कि जो परमभाव, परमस्वभावभाव, ध्रुव ज्ञायकभाव, उसमें जो स्थित है, दृष्टि वहाँ लगायी है। आहाहा!

श्रोता : परमपारिणामिकभाव में और इसमें क्या अन्तर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एक ही है। परमपारिणामिकभाव परन्तु यहाँ ज्ञानमय लेना है। परमपारिणामिक तो परमाणु में भी परमपारिणामिक है, परन्तु यहाँ ज्ञान का परमपारिणामिकभाव

(लेना है)। आहाहा! यह तो वीतराग-सर्वज्ञ का मार्ग, भाई! अपूर्व मार्ग है। आत्मा जो वस्तु, पदार्थ है, उसमें जो परमपारिणामिकभावस्वभावरूप ज्ञान है, वह सहजज्ञान, कारणज्ञान, कहा जाता है। उसकी दृष्टि होने से सम्यग्दृष्टि हुआ जाता है। आहाहा! समझमें आया? आहाहा!

जिसमें अनन्त-अनन्त ज्ञान है और अनन्त-अनन्त बल है तथा जिसमें अनन्त-अनन्त सुख है और जिसमें अनन्त-अनन्त वीर्य है। ऐसा शक्तिवन्त जो सहजज्ञान... आहाहा! उसमें जिसकी दृष्टि पड़ी है, उस परमभाव में सम्यग्दृष्टि स्थित है। आहाहा! राग में नहीं, निमित्त में नहीं, वर्तमान पर्याय है, उसमें नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि, सत्यदृष्टि उसे कहते हैं कि जो आत्मा में परमज्ञानभाव, त्रिकालभाव है, उसमें जिसकी दृष्टि लगी है, सम्यग्दृष्टि, सत्यदृष्टि। तो त्रिकाल ज्ञानभाव में जिसकी स्थिति है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! कहो, नवरंगभाई! ऐसा कठिन है। मार्ग यह है, भाई! भगवान एक समय की वर्तमान पर्याय-प्रगट अवस्था से भिन्न अन्दर तत्त्व-दल आत्मा वस्तु है। उसमें जो ज्ञानभाव ध्रुवरूप है, उसमें सम्यग्दृष्टि स्थित है। आहाहा! है?

परमभाव में स्थित... सम्यग्दृष्टि निमित्त में नहीं, व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प में स्थित नहीं। आहाहा! वर्तमान चार ज्ञानादि उत्पन्न हुए हों या मति-श्रुतादि (हों), उनमें भी स्थित नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो सर्वज्ञ का पंथ है। सर्वज्ञ के पंथ का अर्थ एक बार कहा था कि आत्मा ज्ञ-स्वभावी है। ज्ञ-स्वभावी कहो या पूर्ण ज्ञ-स्वभाव कहो तो सर्वज्ञस्वभावी कहो। आहाहा! ये जड़-वड़ कहीं दूर रहे। यह वस्तु जो भगवान आत्मा है, वह ज्ञ-स्वभावी है। वस्तु स्वभावी है, परन्तु उसका स्वभाव ज्ञ है। जाननस्वभाव है। अब उस जाननस्वभाव में परिपूर्णता लगाना हो तो वह सर्वज्ञस्वभावी है। क्योंकि जाननस्वभाव अपूर्ण और विपरीत नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसा परमभाव... आहाहा! उसमें स्थित सम्यग्दृष्टि को... आहाहा! सम्यग्दृष्टि की दृष्टि परमभाव में पड़ी है। आहाहा! चन्दुभाई! ऐसी.. है। पर्याय है, राग है, निमित्त-परद्रव्य है, परन्तु सम्यग्दृष्टि की दृष्टि परमभाव में स्थित है। आहाहा! समझ में आया? बात बहुत सूक्ष्म है, इसलिए लोगों को...

श्रोता : दृष्टि तो प्रभु! पर्याय नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय, परमभाव में स्थित।

भगवान चैतन्य हीरा... आहाहा! चैतन्य हीरा! जैसे हीरा में पासा होते हैं न? पासा होते हैं न? वैसे भगवान आत्मा में अनन्त गुण के पासा हैं। क्षेत्र छोटा है, ऐसा मत देखो। समझ में आया? उसमें अनन्त-अनन्त गुण पड़े हैं। उनमें ज्ञानगुण प्रधानगुण हैं। तो परम

भाव, जो स्वभावभाव-जो पर्याय नहीं, राग नहीं, निमित्त नहीं - ऐसा परमस्वभावभाव, ऐसा ज्ञायकभाव, ऐसा ज्ञानस्वभाव, सर्वज्ञ स्वभावभाव। आहाहा! उसमें जिसकी स्थिति है, उसमें जिसकी रुचि से स्थिति हुई है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। नन्नूमलजी! बहुत सूक्ष्म बात, भगवान! यह मार्ग ऐसा है। अभी तो ऐसा चला है कि यह क्रिया करो और व्रत करो। यह मूल वस्तु नहीं मिलती। समझ में आया?

महा भगवान पूर्णानन्द का नाथ, जिसकी शक्ति में अनन्त-अनन्त अपरिमित ज्ञानस्वभाव पड़ा है, ऐसे परमभाव में ज्ञानी समकिती स्थित है। आहाहा! उसकी दृष्टि का विषय जो परमभाव है, उसमें स्थित है। आहाहा! समझ में आया? समझ में आता है? भाषा सादी है, भाव भले ऊँचे हों। मार्ग तो यह है, भाई! समझ में आया? परमभाव में... शुरुआत में ही यह मंगलिक आया। आहाहा! कल कहा था न? लोग महाबलेश्वर जाते हैं न? ये सेठ, पैसेवाले निवृत्त हो, वे वहाँ घूमने जाते हैं। महाबलेश्वर तो यह आत्मा है। महा बल का ईश्वर-धनी। आहाहा! अखण्ड प्रताप से स्वतन्त्ररूप से शोभायमान ऐसी प्रभुत्व शक्ति उसमें पड़ी है। प्रभु-ईश्वर नाम की शक्ति है। आहाहा! यह शक्ति कैसी है? कि अखण्डित प्रताप से स्वतन्त्ररूप से शोभायमान भगवान आत्मा (में) एक ऐसा गुण है। ऐसे अनन्त गुण से अखण्डित प्रतापवन्त स्वतन्त्रता से शोभायमान ऐसा ज्ञानगुण है। आहाहा! समझ में आया?

यह ज्ञानगुण जो त्रिकाली परमभाव है, उसमें सम्यग्दृष्टि स्थित है। आहाहा! यह सम्यग्दृष्टि की व्याख्या। देव-गुरु-धर्म को माने और नव तत्त्व को-भेद को माने, वह समकित नहीं। समझ में आया? दिल्ली में विद्यानन्दजी ने प्रश्न किया था। पण्डितजी! विद्यानन्दजी थे न! तुम दिल्ली में थे? विद्यानन्दजी के पास गये थे। सबको बाहर निकालकर अन्दर दो व्यक्ति रहे। वे और वे जिनेन्द्र वर्णी तथा मैं, तो उन्होंने प्रश्न किया। इसमें समयसार की १५५ गाथा है, उसमें '**जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं**' है न? यह प्रश्न किया था। वे कहे - '**जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं**' कहा ऐसे। '**जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं**' का अर्थ ऐसा है... जीवादि ऐसा नहीं। ज्ञान का परिणमन होना, ऐसा पाठ में है। समयसार की १५५ गाथा है। जीव आदि नव तत्त्वरूप अभेद एक आत्मा, उसकी अन्तर की श्रद्धा होकर ज्ञानरूप परिणमन (होना) अर्थात् स्वभावरूप परिणमन, रागरूप परिणमन नहीं, उस स्वभावरूप परिणमन को सम्यग्दर्शन कहते हैं। १५५ गाथा है। जीवादि नव तत्त्व माने तो समकित हो गया, जाओ। ऐसा नहीं है। आहाहा! १५५ है न? कितना है यह? कलश आया। यह प्रश्न था।

मोक्ष का कारण वास्तव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। उनमें सम्यग्दर्शन तो जीवादि

पदार्थों के श्रद्धानस्वभाव से ज्ञान का होना... जीवादि पदार्थों के रद्धानसवभाव से ज्ञान का होना अर्थात् **परिणमना...** सम्यग्दर्शन है। ऐसे जीवादि नवतत्त्व माने, ऐसा नहीं। जैसा उनका स्वभाव है, वैसा श्रद्धा में ज्ञान का परिणमन होना। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें। है?

जीवादि पदार्थों के श्रद्धानस्वभाव से ज्ञान का होना-परिणमन होना... सम्यग्दर्शन है। पण्डितजी! यह तो बाहर से जीवादि माने, वह सम्यग्दर्शन। ऐसा नहीं है। आहाहा! उसके आत्मा में त्रिकाली जो ज्ञान है, उसमें एकाग्र होकर ज्ञान का परिणमन, शुद्ध का परिणमन होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! तीनों की व्याख्या है। **जीवादि पदार्थों के ज्ञानस्वभावरूप ज्ञान का होना - परिणमन करना ज्ञान है; रागादि के त्यागस्वभावरूप ज्ञान का होना-परिणमन करना सो चारित्र है।** वहाँ त्रस की व्याख्या चली थी। एकान्त में बात चली थी। यह शाहू शान्तिप्रसाद थे। भाई थे, फूलचन्दजी थे, कैलाशचन्दजी थे। सबको बाहर निकाल दिया, फिर एकान्त में यह पूछा। मार्ग यह है, कहा। सभी धर्म समान हैं, ऐसा यहाँ नहीं है। आहाहा! और जैनधर्म में भी नवतत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन नहीं है।

श्रोता : वह तो विकल्प है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प है। आहाहा! भगवान! वीतराग का मूलमार्ग बहुत सूक्ष्म है। मूलमार्ग के बिना इसकी शुरुआत अन्यत्र से करे तो उसमें संसार रहेगा। यहाँ तो परमात्मा, परमात्मा कहते हैं, उसे सन्त आड़तिया होकर कहते हैं। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी का माल आचार्य, मुनि कहते हैं कि माल यह है, भाई! समझ में आया?

परमभाव में स्थित... आहाहा! कितनी संक्षिप्त बात! ऐसे **सम्यग्दृष्टि को...** आहाहा! है? **ये चार सम्यग्ज्ञान होते हैं।** चार सम्यग्ज्ञान होते हैं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान। ये **परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि को...** होते हैं। आहाहा! समझ में आया? परमभाव है, वह त्रिकाली भाव है। स्थितपना, वह सम्यग्दृष्टि पर्याय है, उसे ये चार ज्ञान होते हैं। जो परमज्ञानभाव में स्थित हैं, उसे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान होते हैं। आहाहा!

शास्त्र के लक्ष्य से शास्त्र पढ़े और ज्ञान हो, वह ज्ञान नहीं है। आहाहा! समझ में आया? परमात्मा त्रिलोकनाथ तो ज्ञान उसे कहते हैं कि त्रिकाली ज्ञान रसस्वरूप। आत्मा अर्थात् ज्ञानरसस्वरूप। वह बर्फ की क्या कहलाती है? शिला। मुम्बई में देखी है न! दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह, बीस-बीस मण की बर्फ की शिला। नवनीतभाई! रास्ते में निकलते हैं तो

बर्फ की शिला निकलती है। बर्फ की पन्द्रह-पन्द्रह, बीस-बीस मण की खुली शिला ले जाते हैं। शिला समझे? ऐसा बड़ा दल। इसी प्रकार आत्मा ज्ञान के शान्तरस का दल है। ज्ञान की शिला अन्दर है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वह अरूपी है, इसलिए उसे किस प्रकार कहना? परन्तु अरूपी भी ज्ञान और आनन्द का बड़ा दल... समझे? क्या कहा, बर्फ की? शिला। शिला.. शिला.., बर्फ की शिला होती है। बीस-बीस मण की शिला। ट्रक में ले जाते हैं। यह भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान-आनन्द की शिला है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे **परमभाव में स्थित...** आहाहा! आचार्य, मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव की टीका है। मुनिराज जंगल में बसते थे, आनन्दकन्द में झूलते थे। विकल्प आया तो अक्षर, अक्षर से लिख गये। आहाहा! कहते हैं कि **परमभाव में स्थित...** मुनि भी परमभाव में स्थित, सम्यग्दृष्टि परमभाव में स्थित, श्रावक जो पंचम गुणस्थान में कहते हैं, वह भी परमभाव में स्थित होवे तो श्रावक है, नहीं तो नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह बाहर की क्रिया करे, प्रतिक्रमण करे, पूजा करे, भक्ति करे, व्रत पाले, इसलिए श्रावक है - ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

पर्याय है, वह परमभाव नहीं। पर्याय-पर्याय। चार ज्ञान की लो, केवलज्ञान की पर्याय लो, वह परमभाव नहीं है। वह पर्यायभाव है, अपरमभाव है। उसमें यह आता है। अपरमभाव है। आहाहा! यह १२वीं गाथा का परमभाव यह नहीं है, हों! यहाँ तो परम जो त्रिकाली ध्रुवस्वभावभाव, चैतन्यदल, चैतन्यशिला अरूपी भगवान आत्मा, जो अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु, ऐसे परमभाव में जिसकी स्थिति है। आहाहा! ऐसे सम्यग्दृष्टि को चार ज्ञान होते हैं। आहाहा!

इतने में तो कितना कहा! ओहोहो! सम्यग्दृष्टि का निमित्त में लक्ष्य नहीं, व्यवहार रत्नत्रय, दया, दान आदि के विकल्प उत्पन्न होते हैं, उसमें स्थित नहीं और एक समय की पर्याय में स्थित नहीं; पर्याय परमभाव में स्थित है। आहाहा! मार्ग तो देखो! यह दिगम्बर धर्म के सिवाय ऐसी बात कहीं नहीं है। यह तो सनातन जैनदर्शन है, भाई! मूल अनादि का दर्शन जैनदर्शन। आहाहा! समझ में आया?

परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि को... अर्थात् सम्यग्दृष्टि की व्याख्या भी की और सम्यग्दृष्टि को यह चार ज्ञान होते हैं। है न चार? ये चार सम्यग्ज्ञान होते हैं। नीचे है। **सुमतिज्ञान और सुश्रुतज्ञान, सर्व सम्यग्दृष्टि जीवों को होते हैं।** नीचे नोट है। **सुमतिज्ञान और सुश्रुतज्ञान, सर्व सम्यग्दृष्टि जीवों को होते हैं। सुअवधिज्ञान किन्हीं-किन्हीं सम्यग्दृष्टि जीवों**

को होता है। सबको नहीं और **मन:पर्ययज्ञान किन्हीं-किन्हीं मुनिवरों को-विशिष्टसंयमधरों को होता है।** परन्तु ये तीनों मति-श्रुत हो, अवधि हो या मन:पर्यय हो परन्तु उसकी दृष्टि तो परमभाव में स्थित है। समझ में आया? आहाहा! लो, चन्दुभाई! चन्दुभाई कहते हैं कि बहुत कठिन। पर्याय का ऐसा कठिन। परन्तु यह ऐसा है। ऐसा कहे, पर्याय को ऐसे झुकाना... झुकाना... झुकाना... बात सच्ची। दूसरा सब सीख लेना, धार लेना, वह तो सरल है। मूल तो यह है। वर्तमान पर्याय को त्रिकाल भाव में स्थिर करना, वह वस्तु है। आहाहा! समझ में आया? यह चार ज्ञान उसे होते हैं। देखा?

मिथ्यादर्शन हो, वहाँ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान... होता है। मतिज्ञान को कुमति कहते हैं, श्रुतज्ञान को कुश्रुत कहते हैं, अवधि को विभंगज्ञान कहते हैं। तीनों को नामान्तर कहे। **ऐसे नामान्तरों को (अन्य नामों को) प्राप्त होते हैं।** मिथ्यादृष्टि अर्थात् जिसे आत्मा परमभावस्वरूप में स्थित नहीं है और राग में तथा पुण्य की पर्याय में स्थित है, ऐसे अज्ञानी को **'कुमति ज्ञान', 'कुश्रुतज्ञान' तथा 'विभंगज्ञान' होते हैं।** पहले नाम इस प्रकार कहे कि **मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान...** मिथ्यादृष्टि को। परन्तु उस मतिज्ञान को कुमतिज्ञान कहते हैं, श्रुत को कुश्रुत कहते हैं और अवधि को विभंग कहते हैं। लो। आहाहा! एक बात। वे यह तीन अज्ञान भी शुद्धाशुद्ध हैं, शुद्धाशुद्ध हैं। अपने शुद्धाशुद्ध का भेद चलता है न? कहाँ?

यह (निम्नानुसार) शुद्धाशुद्धज्ञान का स्वरूप और भेद कहे जाते हैं... है पहली लाईन? कल चला था। इसका अर्थ? जितना क्षयोपशम है, इस अपेक्षा से शुद्ध कहा, परन्तु अपूर्ण है, विपरीत है, इस अपेक्षा से अशुद्ध कहा। आहाहा! समझ में आया? यह शुद्धाशुद्ध के भेद चलते हैं। उसमें यह आया या नहीं?

श्रोता : अशुद्ध, शुद्धाशुद्ध और शुद्ध, ऐसे तीन भेद नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ऐसा नहीं। शुद्ध सर्वज्ञपद, सर्वज्ञ पर्याय वह शुद्ध और उसके अतिरिक्त चार ज्ञान तथा तीन अज्ञान शुद्धाशुद्ध। समझ में आया? क्षयोपशम-इतना विकास तो है न? स्वभाव है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है न? कि ज्ञान का जितना क्षयोपशम है, वह तो स्वभाव है। वह स्वभाव बन्ध का कारण नहीं। उसकी विपरीतता बन्ध का कारण है। आहाहा! गजब मार्ग, भाई!

यहाँ (ऊपर कहे हुए ज्ञानों में)... ऊपर कारणज्ञान कहा था। **केवलज्ञान, सकलप्रत्यक्ष...** है। अरिहन्त को जो केवलज्ञान होता है, वह सकलप्रत्यक्ष है। है? **(सम्पूर्ण प्रत्यक्ष) है।**

ओहोहो! नियमसार की शैली ही अलग प्रकार की है। **यहाँ (ऊपर कहे हुए ज्ञानों में) सहजज्ञान, शुद्ध अन्तःतत्त्व परमतत्त्व में व्यापक होने से, स्वरूपप्रत्यक्ष है।** आहाहा! क्या कहते हैं? ये सब ज्ञान के भेद कहे—कारणज्ञान, कार्यज्ञान, मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, कुमति, कुश्रुत, विभंगज्ञान-इनमें जो त्रिकाली सहजज्ञान है-वह **शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप...** शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप, जो वह परमभाव कहा था, वह। **परमतत्त्व में व्यापक होने से,...** आहाहा! स्वाभाविक ज्ञान, त्रिकाली ज्ञान, वह अन्तःतत्त्वरूप परमतत्त्व में व्यापक होने से वह **स्वरूपप्रत्यक्ष है।** उस ध्रुव ज्ञान को स्वरूपप्रत्यक्ष कहा। आहाहा! क्योंकि केवलज्ञान प्रत्यक्ष एक पर्याय उत्पन्न होती है, तो इस त्रिकाली स्वरूपप्रत्यक्ष में से उत्पन्न होती है। समझ में आया? आहाहा! क्या कहा?

फिर से **(ऊपर कहे हुए ज्ञानों में)...** जितने भेद कहे न? कारणज्ञान, कार्यज्ञान, शुद्धाशुद्धज्ञान, मिथ्यादृष्टि का या सम्यग्दृष्टि का, उस ज्ञान में सहजज्ञान, स्वभाविकज्ञान, पर्यायरहित ज्ञान। अन्दर ध्रुवस्वरूप भगवान में जो ज्ञान है, वह शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप **शुद्ध अन्तःतत्त्व परमतत्त्व में...** सहजज्ञान **व्यापक होने से, स्वरूपप्रत्यक्ष है।** आहाहा! पर्याय? गुण।

श्रोता : कारणशुद्धपर्याय.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, यह अभी यह बात नहीं। यह बाद में आयेगी।

यहाँ तो भगवान आत्मा में जो सहज त्रिकाली ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... स्वभाव जो वस्तु आत्मा, उसका ज्ञानस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, नित्यस्वभाव, जो ज्ञान-सहजज्ञान, वह **शुद्ध अन्तःतत्त्व स्वरूप...** पूर्ण सब शुद्ध अन्तःतत्त्व, पूर्ण शुद्ध अनन्त गुण का रूप, शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप, ऐसा परमतत्त्व। इसमें सहजज्ञान, स्वभाविकज्ञान, वह अन्तःतत्त्वरूप परमतत्त्व में व्यापक होने से। सबमें पसरा हुआ है। टीका भी की है न!

सहजज्ञान,... ध्रुवज्ञान, नित्यानन्द प्रभु ऐसा नित्यज्ञान। जिसकी आदि नहीं, अन्त नहीं। जिसकी उत्पत्ति नहीं, ऐसा त्रिकाली **सहजज्ञान, शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप...** परमतत्त्व। वह **सहजज्ञान, शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप परमतत्त्व...** शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप परमतत्त्व में सहजज्ञान **व्यापक होने से, स्वरूपप्रत्यक्ष है।** आहाहा! कितनों ने तो स्वरूपप्रत्यक्ष क्या होगा, यह भी सुना नहीं होगा। केवलज्ञान, मनःपर्ययज्ञान... आहाहा! यह तो सब पर्याय की बातें हैं। वह तो अन्तःतत्त्वस्वरूप खान, निधान, ज्ञान का निधान... आहाहा! अनन्त-अनन्त परमस्वभावभावज्ञान, वह अन्तःतत्त्वस्वरूप परमतत्त्व में व्यापक-व्यापक होने से, पूरे

अन्त:तत्त्वरूप परमतत्त्व में वह सहजज्ञान व्यापक होने से, पसरा होने से उसे स्वरूपप्रत्यक्ष कहा जाता है। आहाहा! ऐसा उपदेश किस प्रकार का? वीतराग का मार्ग ऐसा है, बापू! आहाहा!

श्रोता : ऐसा स्वरूप....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं नहीं... यहाँ ही आता है। खास-खास बोल कितने लिखे हैं? यह इसमें ही है। यह मोक्षमार्ग की पर्याय का अधिकार है न! नियमसार अर्थात् पर्याय के अधिकार में कारणपर्याय भी इसमें आयी, अन्यत्र नहीं आयी। समझ में आया? और उस कारणपर्याय के साथ जो त्रिकाल ज्ञान है, उसे यहाँ स्वरूपप्रत्यक्ष कहा गया है। आहाहा! कार्य का कारण, केवलज्ञानरूपी मोक्ष की पर्याय का कारण त्रिकाली ज्ञान, वह यहाँ ही कहा गया है। आहाहा! भगवान आत्मा में जो ज्ञानस्वभावभाव है, वह त्रिकाली ध्रुव प्रवाह ज्ञान का सागर है। यह एक-एक आत्मा की बात चलती है, हों! सभी आत्मा भिन्न-भिन्न हैं। आहाहा! वीतराग का मार्ग इतना सूक्ष्म है। लोगों को जैन के नाम पर अजैनपना मिला है। अजैन की बातें मिलीं और मानते हैं कि जैन हैं। नन्नूमलजी! आहाहा!

सर्वज्ञ वीतराग-परमेश्वर जिनेन्द्रदेव के श्रीमुख से निकली हुई दिव्यध्वनि में से मुनिराज ज्ञान का कथन करते हैं। आहाहा! कहते हैं, सहजज्ञान। ऊपर कहा था न परमभाव? वह पूरा परमभाव। सब त्रिकाली। यह अकेला ज्ञान। सहजज्ञान, स्वभाविक, प्रगटरूप पर्यायरहित ज्ञान समझ में आया? निधान भगवान आत्मा का ज्ञान, वह शुद्ध अन्त:तत्त्वस्वरूप। पूर्ण जो शुद्ध अन्त:तत्त्व अनन्त गुण का पिण्ड जो है, ऐसा जो परमतत्त्व में वह सहजज्ञान व्यापक है, सब व्यापक है। विभुक्तशक्ति है न उसमें? तो वह गुण सर्व में व्यापक है। विभुशक्ति। आहाहा! सैंतालीस शक्ति में विभुशक्ति आती है। एक सहजगुण अन्त:तत्त्वस्वरूप पूर्ण, ऐसा जो शुद्ध परमतत्त्व।

पर्यायें हैं, वह चाहे तो केवलज्ञान हो तो भी अपरमतत्त्व है। चार भाव है न वे? क्षायिकभाव है न? चार भाव को अपरमभाव कहा है और त्रिकाली भाव को परमभाव कहा है। आहाहा! फिर से। राग-द्वेष आदि उदयभाव, ज्ञान का क्षयोपशमभाव समकित का उपशमभाव, ज्ञान का केवलज्ञानभाव, इन चारों को अपरमभाव कहा है। इसमें आगे आयेगा। है, चल गया है। यह तो बहुत बार चला है न। आहाहा! और एक त्रिकाली भाव को ही परमभाव कहा गया है। आहाहा! समझ में आया?

(ऊपर कहे हुए ज्ञानों में) सहजज्ञान, शुद्ध अन्त:तत्त्व परमतत्त्व... यही है। उसमें ही

सहजज्ञान **व्यापक होने से, स्वरूपप्रत्यक्ष है।** नीचे (फुटनोट) **स्वरूपप्रत्यक्ष=स्वरूप से प्रत्यक्ष;...** त्रिकाली स्वरूप से अन्दर प्रत्यक्ष ही है। **स्वरूप-अपेक्षा से प्रत्यक्ष;...** कार्य की अपेक्षा से लिया था न वह! **स्वभाव से प्रत्यक्ष।** स्वभाव से प्रत्यक्ष है। आहाहा! त्रिकाली स्वभाव से वह स्वरूपप्रत्यक्ष है। आहाहा! यह भाव नियमसार की इस गाथा के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। समझ में आया? और अभी कारणपर्याय आयेगी, वह भी इसमें ही है, अन्यत्र नहीं। आहाहा! स्वरूप से प्रत्यक्ष, स्वरूप से प्रत्यक्ष कायम। **स्वरूप-अपेक्षा से प्रत्यक्ष; स्वभाव से प्रत्यक्ष।** यह स्वरूपप्रत्यक्ष है।

केवलज्ञान, सकलप्रत्यक्ष... भगवान को, केवली को, जिनेन्द्र को, अरिहन्त को केवलज्ञान होता है, वह केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष है। '**रुपिष्ववधेः (अवधि-ज्ञान का विषय-सम्बन्ध रूपी द्रव्यों में है)**' सम्पूर्ण में नहीं, रूपी में है, **ऐसा (आगम का) वचन होने से अवधिज्ञान, विकलप्रत्यक्ष (एकदेशप्रत्यक्ष) है।** एकदेशप्रत्यक्ष अवधि। और **उसके अनन्तवें भाग में वस्तु के अंश का ग्राहक (ज्ञाता) होने से मनःपर्ययज्ञान भी विकलप्रत्यक्ष है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, दोनों परमार्थ से परोक्ष हैं और व्यवहार से प्रत्यक्ष हैं।** मति-श्रुत अपने स्वरूप को प्रत्यक्ष करता है न? इस अपेक्षा से उसे प्रत्यक्ष कहते हैं परन्तु प्रत्यक्ष पूर्ण नहीं जानता, इस अपेक्षा से परोक्ष कहते हैं।

और विशेष बात यह है... खास बात तो यह है कि... ऐसा। विशेष कहते हैं न? खास बात यह है कि... सन्तों की लहरी तो देखो! **(ऊपर कहे हुए) ज्ञानों में साक्षात् मोक्ष का मूल, निजपरमतत्त्व में स्थित ऐसा एक सहजज्ञान ही है...** लो। खास बात यह है कि इन ज्ञानों के भेद में साक्षात् मोक्ष का मूलकारण निजपरमतत्त्व में स्थित ऐसा सहजज्ञान, मोक्ष का कारण है। आहाहा! यहाँ तो चार ज्ञान को मोक्ष का कारण नहीं गिनने में आया। त्रिकाल ज्ञान, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! मोक्ष के कारण का कारण। मोक्ष का कारण मति-श्रुतज्ञान, उसका कारण परमभाव त्रिकाली ज्ञान। आहाहा! अरे! वीतरागमार्ग के अतिरिक्त ऐसी चीज़ कहाँ मिले, भाई! आहाहा! जिसने अकेला अमृत बहाया है। लो, कहाँ गये? कैलाशभाई! भाई यहाँ बैठे हैं। समझ में आया? आहाहा!

श्रोता : कारण का कारण।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; वह व्यवहारकारण था। पहले आया था न? कि आगम, वह मोक्ष के कारण का कारण है। मोक्ष का कारण सम्यग्ज्ञान आदि, उसका कारण / निमित्त आगम। यहाँ दूसरी बात है कि जो वास्तव में मोक्ष है, उसका कारण जो है, वह मति-श्रुतज्ञान;

परन्तु उनका कारण मूल सहजज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? भगवान नित्यानन्द प्रभु, स्वभाविकज्ञान, ज्ञान शब्द से आत्मा ज्ञानस्वभाव है, ज्ञानस्वभाव है, सहजज्ञान है, ज्ञ-स्वभाव है, सर्वज्ञस्वभाव है, ज्ञानमात्र परमतत्त्वरूप भाव वह है। आहाहा! अरे! उसकी क्या बात! यह भगवान शब्द से कहा, परन्तु उनका माल तो पीछे रह गया। आहाहा! बारह अंग में स्थूल कथन है। पंचाध्यायी में आता है। पण्डितजी! पंचाध्यायी में आता है कि बारह अंग में भी स्थूल कथन है। बारह अंग, वह स्थूल कथन है। बहुत सूक्ष्म बात रह गयी है। पंचाध्यायी में है। पण्डितजी ने पंचाध्यायी देखा है न? आहाहा!

इन सब ज्ञानों में साक्षात् मोक्ष परमानन्दरूपी, परम आनन्द का लाभरूपी मोक्ष, परम अतीन्द्रिय आनन्द के लाभरूपी मोक्ष का मूल **निजपरमतत्त्व में स्थित ऐसा एक सहजज्ञान ही है...** 'ही' है। एकान्त कर डाला। यह सम्यक् एकान्त ही है। आहाहा! भाई! अनन्त संसार का अन्त लाकर अनन्त आनन्द की प्राप्ति हो, वह वस्तु कैसी होगी? समझ में आया?

कहते हैं कि सहजज्ञान **मोक्ष का मूल, निजपरमतत्त्व में स्थित ऐसा एक सहजज्ञान ही...** मोक्ष का कारण है। एक बात। व्यवहाररत्नत्रय, दया, दान, व्रत, भक्ति तो मोक्ष का कारण नहीं, वह तो स्थूल रीति से बन्ध का कारण है और पर्याय में जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि प्रगट हुए, वह मोक्ष का कारण कहा, वह पर्याय तो उपाय और उपेय की अपेक्षा से कहा, परन्तु उस सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति और उसके फलरूप केवलज्ञान का मूलकारण त्रिकाली ज्ञान है। आहाहा! यहाँ तो द्रव्य पर जोर है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा एक सहजज्ञान ही है... ऐसा है न? **एक सहजज्ञान ही है...** कथंचित् त्रिकाली ज्ञान और कथंचित् वर्तमान ज्ञान, ऐसा क्यों नहीं कहा? वह एक ही है। आहाहा! समझ में आया? **तथा सहजज्ञान, (उसके) पारिणामिकभावरूप स्वभाव के कारण,...** आहाहा! यह त्रिकाली ज्ञान, ज्ञान के नूर का तेज जो स्वरूप भगवान ध्रुव, वह सहजज्ञान। **पारिणामिक-भावरूप स्वभाव के कारण,...** आहाहा! वह तो सहज स्वभावरूप है। ऐसे पारिणामिकभावरूप है। वह क्षायिकभावरूप, उपशमभावरूप नहीं है। समझ में आया? केवलज्ञान, वह क्षायिकभाव है। यह तो पारिणामिकभावरूप स्वभाव के कारण। आहाहा! गजब नियमसार यह...! यह **सहजज्ञान, (उसके) पारिणामिकभावरूप स्वभाव के कारण, भव्य का परमस्वभाव होने से,...** भव्य जीव का परमस्वभाव है। अभव्य को है परन्तु प्रगट नहीं होता, इसलिए इनकार किया। समझ में आया? ऐसी सूक्ष्म बात, इसलिए लोगों को (कठिन लगता है)। यह तो भव्य जीव का परमस्वभाव है। **सहजज्ञान, (उसके) पारिणामिकभावरूप...** समझ में

आया ? **स्वभाव के कारण, भव्य का परमस्वभाव होने से,...** आहाहा ! वह तो परमस्वभाव ही भव्यजीव का स्वभाव है। समझ में आया ?

सहजज्ञान के अतिरिक्त... स्वभाविक त्रिकाली ज्ञान से अन्य **अन्य कुछ उपादेय नहीं है।** मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, केवलज्ञान, वह उपादेय नहीं है, ऐसा कहा। यह तो मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में लिया है न ? संवर है, वह उपादेय है; निर्जरा हितकर है; मोक्ष परम उपादेय है। वह प्रगट करने की अपेक्षा से, प्रगट करने की अपेक्षा से। परन्तु उस प्रगट का कारण, वह त्रिकाली है, वह उपादेय है। आहाहा !

श्रोता : साक्षात् मोक्ष का मूल सहजज्ञान...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उपादान त्रिकाली, पर्याय नहीं।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणमे, वह पर्याय नहीं। यहाँ तो त्रिकाली उपादान है, वह उपादेय है।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव कहाँ परिणमता है ? परिणमे, वह तो पर्याय हुई। आहाहा ! उसे उपादेयरूप से स्वीकार हुआ, वही पर्याय का परिणमन हो गया। त्रिकाली ज्ञायकभाव ध्रुव, वह उपादेय है, ऐसा आदरभाव हुआ, वही पर्याय हुई। आहाहा ! भाई ! यह तो वीतरागमार्ग है। उसमें भी दिगम्बर धर्म, अर्थात् सनातन अनादि अनादि-अनन्त तीर्थंकरों ने जो मार्ग कहा, वह मार्ग है। आहाहा !

श्रोता : सरल करके बताते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सरल करके बताते हैं।

श्रोता : .....बताया यह।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो किस प्रकार बतावे ? इसे ग्रास करके बताया परन्तु ग्रास चबाना तो पड़ेगा या नहीं ? दाँत न हो तो भी मक्खन चबाये। हलुवे को दाँत की आवश्यकता नहीं है। हलुवे को क्या कहते हैं ? हलुवा। गजब बात आयी, हों !

(**श्रोता :** निहालभाई कहते हैं कि हमको तो गुरुदेव मिल गये तो पका पकाया हलुवा मिल गया) !

सहजज्ञान के अतिरिक्त अन्य... भगवान पूर्णानन्द में सहजज्ञान परमतत्त्व में विद्यमान

है, उसके सिवाय **अन्य कुछ उपादेय नहीं है।** आहाहा! कितना जोर है। आहाहा! केवलज्ञान, वह उपादेय नहीं – ऐसा कहते हैं। क्योंकि पर्याय है। मति-श्रुतज्ञान, बारह अंग का ज्ञान भी उपादेय नहीं है क्योंकि वह पर्याय है। आहाहा! अमृत बहाया है, अमृत!! आहाहा! इसके **अतिरिक्त अन्य कुछ उपादेय नहीं है।**

अब **इस सहजचिद्विलासरूप...** यह त्रिकाली। त्रिकाली सहज चिद्विलासरूप ऐसी वस्तु। वह **(१) सदा सहज परमवीतराग सुखामृत,...** साथ में। सदा सहज परम वीतराग सुखामृत, इसके साथ में है न? **सहजचिद्विलासरूप...** सहित है। आत्मा ऐसा जो सहजचिद्विलासरूप है, वह **(१) सदा सहज परमवीतराग सुखामृत,...** सहित है। आहाहा! **सहजचिद्विलासरूप...** स्वभाविक ज्ञान समझण.. समझण.. समझ.. समझ.. समझ.. ज्ञान.. ज्ञान.. का पिण्ड त्रिकाल। वह **सहजचिद्विलासरूप (१) सदा सहज परमवीतराग सुखामृत,...** स्वभाविक सदा परम वीतरागरूपी आनन्द का अमृत, उससे आत्मा सनाथ है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे आत्मा को, ऐसा कहते हैं। सहजचिद्विलासरूप, उसके साथ सदा सहज परम वीतराग सुखामृत, सदा सुख-अमृत, अतीन्द्रिय अमृत। आहाहा!

कल दोपहर को कहा था न? 'गगन मण्डल में अधबिच कुआँ, वहाँ है अमी का वासा...' आत्मा अध बीच कुआँ है 'गगन मण्डल में गौआ वियाणी वसुधा दूध जमाया, माखन था सो विरला रे पाया सन्तो, छाछे जगत भरमाया।' छाछ समझे? मट्ठा। 'गगन मण्डल में गौआ वियाणी वसुधा दूध जमाया,...' भगवान की वाणी दिव्यध्वनि निकली 'माखन था सो विरला रे पाया सन्तो,... छाछे जगत भरमाया। अब सु जोगी रे गुरु मेरा, इन पद का करे रे निबेड़ो, जोगी रे गुरु मेरा। गगन मण्डल में अधबिच कुआँ।' आत्मा अधबिच कुआँ है, देखो! 'वहाँ है अमी का वासा।' वहा अमृत भरा है। 'सगुरा होवे सो भर भर पीवे सन्तो, नुगरा जावे प्यासा। अवधू सो जोगी रे गुरु मेरा।' आहाहा! समझ में आया? यह तो मस्ती की बातें हैं, मस्ती! आहाहा!

कहते हैं कि भगवान आत्मा में जो **सहजचिद्विलासरूप (१) सदा सहज परमवीतराग सुखामृत,...** के साथ आत्मा रहता है। **अप्रतिहत निरावरण परमचित्शक्ति का रूप,...** वीर्य। जिसका बल अप्रतिहत, विमुख न हो। **निरावरण परमचित्शक्ति का रूप,...** ज्ञानशक्तिरूप बल। यह त्रिकाल की बात चलती है। **सदा अन्तर्मुख ऐसा स्वस्वरूप में अविचल...** आहाहा! **सदा अन्तर्मुख ऐसा स्वस्वरूप में अविचल...** चलित नहीं, ऐसा। **स्थितिरूप सहज परमचारित्र,...** त्रिकाली, हों! त्रिकाली। आहाहा!

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र पिण्ड त्रिकाल है। यह चारित्र पर्याय नहीं। कहते हैं कि ज्ञान की पर्याय केवलज्ञान उत्पन्न होता है तो उसका चिद्विलास त्रिकाली ज्ञान कारण है। श्रद्धा की -सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है तो त्रिकाली श्रद्धा, त्रिकाली दर्शन उसका कारण है। त्रिकाली श्रद्धाशक्ति, वह कारण है। अभी आयेगा। और पर्याय में चारित्र उत्पन्न होता है, वह त्रिकाली अविचल चारित्रशक्ति में से प्रगट होता है। समझ में आया? **स्थितिरूप सहज परमचारित्र,...** त्रिकाली चारित्र, हों! वीतरागभाव। आहाहा! भगवान आत्मा में त्रिकाल वीतरागभाव ही पड़ा है। चारित्रस्वरूप ही भगवान है। पर्याय में प्रगट होता है, वह चारित्र के स्वभाव में से चारित्रपर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! समझ में आया?

अब श्रद्धा कहते हैं, देखो! श्रद्धा। **(४) त्रिकाल अविच्छिन्न (अटूट) होने से सदा निकट, ऐसी परम चैतन्यरूप की श्रद्धा...** आहाहा! यह त्रिकाल की बात है। बात तो देखो! **त्रिकाल अविच्छिन्न (अटूट) होने से...** कौन? अन्दर श्रद्धा। त्रिकाल ध्रुव, हों! **सदा निकट, ऐसी...** अनन्त गुण के साथ अन्दर निकट श्रद्धा पड़ी है। **परम चैतन्यरूप की श्रद्धा...** आहाहा! परम चैतन्यरूप की श्रद्धा। यहाँ पर्याय की बात नहीं है, त्रिकाल की बात है। आहाहा! आज तो सब अच्छा आया। पण्डितजी बराबर आया न?

श्रोता : चन्दुभाई चमत्कार करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चन्दुभाई का निदान... ऐसा है। हम तो बहुत वर्ष से जानते हैं।

यहाँ कहते हैं, आहाहा! सहज चिद्विलासरूप भगवान आत्मा के साथ वीतराग सुखामृत रूप ऐसा आत्मा, सहज अविचलचारित्ररूप आत्मा। त्रिकाल, हों! और चित्शक्तिरूप वीर्य। ज्ञान की शक्तिरूप त्रिकाल वीर्य, उसके साथ अन्दर आत्मा है। आज तो बहुत आया और **त्रिकाल अविच्छिन्न (अटूट) होने से सदा निकट,...** त्रिकाल श्रद्धा की बात है। **ऐसी परम चैतन्यरूप की श्रद्धा...** परम चैतन्यरूप की श्रद्धा, त्रिकाल में-त्रिकाल में, हों! आहाहा! **त्रिकाल अविच्छिन्न...** प्रत्येक की भिन्न-भिन्न व्याख्या करते हैं। श्रद्धा को त्रिकाल अविच्छिन्न कहा। त्रिकाल—न टूटे ऐसी। त्रिकाल चैतन्य के नजदीक, सर्व गुण में नजदीक रहे ऐसी चैतन्यरूप की श्रद्धा। आहाहा!

इस स्वभाव-अनन्त चतुष्टय से... ये चार त्रिकाल स्वभाव लिये। आहाहा! **जो सनाथ (सहित) है...** जो आत्मा सनाथ है, उनसे रक्षित है। सहज चिद्विलासरूप आत्मा, वह अनन्त सुखामृत और अनन्त वीर्य चित्शक्तिरूप और अन्तर अविचल चारित्ररूप और त्रिकाल अटूट ऐसी चैतन्य के निकट में रही हुई श्रद्धा, ऐसे अनन्त चतुष्टय ध्रुव, उनसे आत्मा सनाथ है। आहाहा! समझ में आया? **इस स्वभाव-अनन्त चतुष्टय से जो सनाथ (सहित) है...** देखो! **ऐसे आत्मा को,...** आहाहा! **अनाथ मुक्तिसुन्दरी के नाथ को भाना...** चाहिए।

९ **श्री नियमसार, श्लोक-१८-२०, प्रवचन - १५६**
दिनांक - १९-०१-१९७६

नियमसार का १८वाँ कलश चलता है। ११-१२ गाथा के बाद है न? १८वाँ कलश है। यह है न?

इस प्रकार संसाररूपी लता का मूल छेदने के लिए हँसियारूप इस उपन्यास से ब्रह्मोपदेश किया। यहाँ से शुरु किया है। यह क्या कहा? संसाररूपी राग, द्वेष और मिथ्यात्व इस संसाररूपी लता की बेल। बेल कहते हैं? उसका मूल छेदने के लिए। उसका मूल। हेंसियारूप। हँसियारूप समझते हो न? **इस उपन्यास से ब्रह्मोपदेश किया।** यह क्या कहा? कि यह आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द और अनन्त चारित्र तथा अनन्त सुखरूप से जो द्रव्यस्वभाव भरा है... आहाहा! उसकी अन्तरभावना करना, वह ब्रह्मोपदेश है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। ये लोग दया, दान, दमन, तप करते हैं, वह तो सब राग है, वह कोई धर्म नहीं। आहाहा!

धर्म तो यहाँ से उत्पन्न होता है कि भगवान आत्मा अनन्त आनन्द, अनन्त... ऊपर आया था न? चतुष्टय आ गया। सुखामृत से भरपूर आत्मा, अनन्त चारित्र, अनन्त चित्शक्ति वीर्य और त्रिकाल दृष्टि है न? **(अटूट) होने से सदा निकट, ऐसी परम चैतन्यरूप की श्रद्धा...** वस्तु में त्रिकाल श्रद्धास्वभाव, हों! आहाहा! **इस स्वभाव-अनन्त चतुष्टय से जो सनाथ (सहित) है...** आहाहा! अपने स्वभाव में अनन्त सुख है, अनन्त चारित्र है। स्वभाव-स्वभाव। चारित्र पर्याय भिन्न है। आहाहा! चारित्र है। अनन्त दृष्टि है। चैतन्यरूप श्रद्धा की अन्तर्दृष्टि त्रिकाल में पड़ी है। ऐसे अनन्त चतुष्टयसहित आत्मा सनाथ है। आहाहा! उसमें अनन्त चतुष्टय विद्यमान हैं, इस कारण से आत्मा सनाथ है। रक्षा सहित है। आहाहा! मूल चीज़ की दृष्टि और अनुभव बिना सब व्यर्थ है। यह व्रत, तप, त्याग वे इकाई रहित शून्य है, वह संसार है। ऐसी बात है।

जहाँ अनन्त आनन्द, अनन्त चारित्र-स्वरूपलीनता-रमणता, अन्दर शक्ति, हों! ऐसी निकट श्रद्धा अटूट त्रिकाली अन्दर श्रद्धा, चैतन्य के स्वभाव में, हों! त्रिकाल स्वभाव में। ऐसे स्वचतुष्टय सहित आत्मा सनाथ है। आहाहा! समझ में आया? उस द्रव्यस्वभाव में चतुष्ट

विद्यमान है, इसलिए आत्मा सनाथ है। आहाहा! इस कारण से... आहाहा! आया न?

अनाथ मुक्तिसुन्दरी के नाथ को भाना... चाहिए। आहाहा! मुक्तिसुन्दरी को जो वर सके, वह त्रिकाल सनाथ है। उसे सनाथ आत्मा वर सकता है। अन्तर आनन्द सुखस्वभाव पड़ा है, अनन्त चित्शक्ति ध्रुव में पड़ी है। अनन्त निकट अटूट श्रद्धा अन्दर पड़ी है और अनन्त चित्शक्ति अन्दर में पड़ी है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा अपनी शक्ति से, स्वभाव से सनाथ है। यह व्याख्या कैसी! यह सनाथ आत्मा, मुक्ति हो अनाथ है, उसे वर सकता है - प्राप्त कर सकता है। समझ में आया?

इस प्रकार संसाररूपी लता का मूल छेदने के लिए... संसाररूपी बेल का मूल नाश करने के लिए **हँसियारूप...** तुम्हारी भाषा में क्या कहलाता है? दांता। लोहे का होता है, मूल छेदने के लिए। **इस उपन्यास से ब्रह्मोपदेश किया।** ब्रह्मोपदेश किया। आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का उपन्यास, उसकी कथा कही। आहाहा! अब १८वाँ कलश।

[अब, इन दो गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज पाँच श्लोक कहते हैं—] गाथाएँ दो, उनके श्लोक पाँच। आहाहा! दिगम्बर मुनि हैं न! मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव वनवास में थे। आनन्द-आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन था। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का भरचक-भरपूर आत्मा, उसमें डुबकी लगाते थे। जैसे स्नान करने को जल में डुबकी मारे, वैसे मैल निकालने के लिए आनन्दस्वरूप में डुबकी मारते थे। ऐसा विकल्प आया और शास्त्र लिख गया। यह १८वाँ श्लोक कहते हैं।

इति निगदित-भेदज्ञान-मासाद्य भव्यः,
परिहरतु समस्तं घोर-सन्सार-मूलम्।
सुकृतमसुकृतं वा दुःखमुच्चैः सुखं वा,
तत उपरि समग्रं शाश्वतं शं प्रयाति।।१८।।

आहाहा! **इस प्रकार कहे गये भेदज्ञान को पाकर,...** सर्व वस्तु से भिन्न और राग, दया, दान के विकल्प से भी भगवान भिन्न है। आहाहा! इस शरीर से भिन्न। धूल यह पैसा-वैसा है न? वह जड़, मिट्टी, धूल - उससे भी भगवान भिन्न है और अन्दर में पुण्य और पाप के सुकृत, दुष्कृत अर्थात् व्रत का, भक्ति का, पूजा का विकल्प होता है, उस राग से भी भगवान अन्दर भिन्न है। है? **भेदज्ञान को पाकर,...** पर से भिन्न, अपने स्वभाव में अभिन्न, ऐसे भेदज्ञान को प्राप्त करके। आहाहा!

भव्यजीव घोर संसार के मूलरूप... सुकृत और दुष्कृत। नीचे अर्थ है। **सुकृत या**

दुष्कृत=शुभ या अशुभ। यह शुभभाव और अशुभभाव संसार का मूल है। आहाहा! घोर संसार का मूल है। चिल्लाहट मचाते हैं। उसे तो धर्म मानते हैं। दया, दान, व्रत, तप, यात्रा, भक्ति आदि के शुभभाव हैं न? वह घोर संसार का मूल है। नन्नूमलजी! कठिन बात। आहाहा! है? नीचे है? **सुकृत या दुष्कृत...** सुकृत अर्थात् शुभ और दुष्कृत अर्थात् अशुभ। दोनों भाव संसार का घोर मूल है। आहाहा! चिल्लाहट मचावे। यहाँ तो अभी तो व्रत पाले, भक्ति करे, पूजा करे, शास्त्र लिखे, उस भाव को धर्म माने, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? कठिन बात है, भाई! जगत ने वर्तमान जैनदर्शन को ऐसा विकृत कर डाला है कि खबर नहीं कि जैनदर्शन का मार्ग क्या है? समझ में आया? क्या कहते हैं?

इस प्रकार से राग, पुण्य का भाव - उससे भिन्न भगवान आत्मा अन्दर, शरीर और लक्ष्मी, इज्जत-कीर्ति तो जड़ कहीं रह गये। वे तो आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! यहाँ तो पुण्य और पाप के दो भाव, उनसे भेदज्ञान करके... आहाहा! उनसे भेद करके, इसका अर्थ कि स्वभाव पर दृष्टि पड़ने से राग से भिन्न हो जाता है। सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त काल में किया नहीं। व्रत, तप, भक्ति यह अनन्त बार किया, यह कोई चीज़ नहीं, यह तो संसार है। आहाहा!

भेदज्ञान को पाकर,... भिन्न पाकर। राग के विकल्प से भिन्न भगवान को पाकर। आहाहा! **भव्यजीव...** मोक्ष के लिए योग्य आत्मा। आहाहा! **घोर संसार के मूलरूप समस्त सुकृत या दुष्कृत को,...** समस्त सुकृत, दुष्कृत - चाहे जिस प्रकार का शुभभाव हो और अशुभभाव हो, वह तो संसार का मूल है, संसार है। आहाहा! यह अभी तो सम्प्रदाय में तो यही बात चलती है। ऐई! नन्नूमलजी! तुमने सुना है या नहीं। यह तो '...' तुम्हारे फूई हैं, उन्होंने दीक्षा ली थी।...है? तुम्हारे फूई थे न? यह फूई, वह... बुआ है। हमारे यहाँ बुआ है। वह ....मलजी के बुआ होती हैं। हमारे फई कहते हैं, तुम्हारे हिन्दी में बुआ कहते हैं।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान! एक बार सुन तो सही, भाई! तूने सुना नहीं। आहाहा! कहते हैं कि शुभभाव चाहे जितने हों, चाहे तो गुण-गुणी के भेद का विकल्प शुभ हो, चाहे तो पंच महाव्रत का शुभभाव हो, चाहे तो भगवान की भक्ति करने का शुभभाव हो, चाहे तो भगवान णमो अरिहंताणं, ऐसा स्मरण करने का शुभभाव हो और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, यह अशुभभाव, दोनों भाव घोर संसार का मूल है। है? यह दिगम्बर सन्तों की कथनी तो देखा!

इस प्रकार कहे गये... आहाहा! **भेदज्ञान को पाकर,...** शुभ-अशुभ विकल्प से भिन्न आत्मा को पाकर **भव्यजीव घोर संसार के मूलरूप समस्त सुकृत या दुष्कृत...** शुभ के

असंख्य प्रकार, अशुभ के असंख्य प्रकार हैं। आहाहा! शुभभाव, पुण्यभाव के असंख्य प्रकार हैं। दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा नामस्मरण के असंख्य प्रकार हैं और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, मान, माया, लोभ आदि अशुभ के असंख्य प्रकार हैं। ऐसे सब शुभ और अशुभभाव घोर संसार का मूल है। आहाहा! **सुख या दुःख...** कल्पना में इन्द्रिय का, पैसे का सुख है, स्त्री के सुख की कल्पना और दुःख-राग। **अत्यन्त परिहरो।** सुख-दुःख की कल्पना और सुकृत तथा दुष्कृत ऐसा शुभ-अशुभभाव, दृष्टि में से छोड़ दो। अन्दर भगवान को प्राप्त करो। आहाहा! ऐसी बात होवे तो फिर लोगों को कठिन लगे न! समझ में आया? यह दृष्टि में प्राप्त करना, ऐसा हुआ न! उसे प्राप्त करके, भगवान आत्मा को प्राप्त करके, **भेदज्ञान को पाकर,...** ऐसा आया है न? तो राग से, पर्याय से भी भिन्न भगवान आत्मा, ऐसे अनन्त चतुष्टय स्वभाव को प्राप्त करके... यह तो सन्तों की अध्यात्मवाणी है। यह कहीं कथा-वार्ता नहीं है। आहाहा!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें तो सब आ जाता है। भेदज्ञान में दर्शन, ज्ञान, स्थिरता सब आ गया। उसे प्राप्त करके संसार के (मूल को) नाश करने की चीज़ क्या है? भगवान अनन्त चतुष्टय सम्पन्न को अन्दर प्राप्त करके, घोर संसार के मूल शुभ-अशुभभाव, **सुख या दुःख को अत्यन्त परिहरो।** उसे प्राप्त करो और यह सुख-दुःख की कल्पना तथा शुभ और अशुभभाव को छोड़ो। आहाहा!

भगवान आत्मा अन्दर अनन्त आनन्द है। अतीन्द्रिय आनन्द से प्रभु लबालब भरा है। छलाछल को हिन्दी में क्या कहते हैं? लबालब। आहाहा! प्रभु अन्दर आत्मा है, वह अतीन्द्रिय आनन्द से छलाछल भरा है। उसे पर से भिन्न करके, प्राप्त करके। आहाहा! कहो, भगवानजीभाई! इसमें कुछ पैसे-वैसे की कीमत नहीं आती। अपने महाजन लोग अफ्रीका में जाकर बहुत करोड़पति हो गये हैं। सब धूल के धनी हैं।

श्रोता : इस धूल के बिना चलता नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस धूल के बिना ही चलता है। यह तो एक बार कहा था न! (संवत्) २०१० के वर्ष। २२ वर्ष हुए। बोटाद गये थे न? बोटाद। म्युनिसिपेलिटी में व्याख्यान चलता था। मकान नहीं था इसलिए। वहाँ हरजीवनभाई है न? हरजीवनभाई थे न? समढियाला के नागरभाई नहीं आते थे? उनके बड़े भाई थे। ...मकान में... वे कहे, महाराज! सब सुनने आते हैं, सबको प्रेम। महाराज! पैसे की तुम... पैसा बिना एक घड़ी भी नहीं

चलता। ऐसा प्रश्न किया था। बाईस वर्ष हुए। २०१० का वर्ष था। कहा, भाई! ऐई! शिवलालभाई! तुम्हें खबर नहीं होगी। थे? वीरचन्दभाई थे। कहा, सुनो! इस अंगुली ने इस अंगुली बिना चलाया है या नहीं? यह अंगुली अंगुलीरूप है और इस रूप नहीं तो यह पर बिना ही इसने चलाया है। इसी प्रकार भगवान आत्मा स्वयं से है और पर से नहीं, तो पर से नहीं, ऐसा ही इसने चलाया है। ऐसे भगवान आत्मा अपने से है, और पर से नहीं तो पर से नहीं ऐसा ही इसने चलाया है।

श्रोता : लॉजिक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लॉजिक। नि धातु।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में यह रखना। नि धातु है। न्याय की धातु है। नि धातु। ले जाए, सत्यवस्तु कैसी है, वहाँ ज्ञान को ले जाना। अन्तर में ले जाना कि मैं आत्मा हूँ, और रागादि, शरीरादि या लक्ष्मी आदि मुझमें नहीं है। उसका नाम पर बिना आत्मा ने चलाया है। उसकी मान्यता में बड़ी भूल है। उसके बिना नहीं चलता, राग के बिना नहीं चलता। धूल के बिना नहीं चलता, यह तो मान्यता भ्रम है। समझ में आया? आहाहा! दिगम्बर सन्तों की ऐसी कड़क भाषा है।

इस प्रकार कहे गये... ऊपर कहा न? **भेदज्ञान को पाकर,...** राग से, पुण्य से, दया, दान के विकल्प से भेदज्ञान करके **भेदज्ञान को पाकर,...** भेदज्ञान को पाकर। इसमें शुद्ध चैतन्यघन आत्मा आया। **भव्यजीव घोर संसार के मूल...** आहाहा! जिस इस शुभक्रियाकाण्ड को लोग धर्म मानते हैं... पंच महाव्रत। इसे तो अभी पंच महाव्रत भी कहाँ है? सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ पंच महाव्रत कहाँ से होंगे? और पंच महाव्रत भी कहाँ है? उसके लिए भोजन बनाकर लेते हैं, चौका बनाकर लेते हैं, वह पंच महाव्रत के परिणाम इस व्यवहार से भी नहीं है। समझ में आया? यह बात है। यह सत्य बात है। जगत को रुचे, न रुचे, वह जगत के पास रहा। आहाहा! समझ में आया?

हम तो पहले सम्प्रदाय में थे, वहाँ ऐसी कड़क क्रिया थी, बहुत कड़क क्रिया थी। हम तो मानते थे न कि यह साधु के लिए बनाया हो, वह नहीं लेना, एक पानी की बूँद नहीं लेते थे। छोटे गाँव में जाएँ, आठ-दस घर हों तो वहाँ हम साढ़े नौ बजे जाएँ। जल्दी नहीं जाएँ, क्योंकि जल्दी जाएँ तो बना दे तो, दाल-भात हो गया हो और रोटी का आटा बँध गया हो और

रोटी बनाते हों तब जाएँ। निर्दोष हो वह लें। हमारे लिए एक रोटी भी बनावे या पानी बनाया (तैयार किया) होवे (तो नहीं लें)। इतने कड़क व्रत थे परन्तु वह क्रियाकाण्ड था।

श्रोता : धर्म नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म-बर्म बिल्कुल नहीं। सख्त क्रिया। फिर कपड़े भी मैले बहुत, धोते नहीं। आठ माह में एक बार धोएँ। चातुर्मास आवे तब... मैल... दिखाव अच्छा लगे। शरीर अच्छा था न इसलिए। कपड़ा मैला भी लगता रेशम जैसा।

श्रोता : आजकल तो सब करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब करते हैं, हमें तो खबर है न। हम तो आठ-आठ महीने तक धोते नहीं तो भी कपड़े अच्छे लगें। शरीर... जैसा है। कैसा लगे? साटन जैसा लगे परन्तु वह तो क्रियाकाण्ड, मिथ्यात्वसहित राग की मन्दता। यह धर्म है, ऐसा मानते थे। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि एक बार सुन तो सही नाथ! अनन्त शक्ति का सनाथ परमात्मा तू है, तू अनाथ नहीं है। समझ में आया? तू अनाथ नहीं है। अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान, शान्ति से भरपूर भण्डार है न! आहाहा! ऐसा तू सनाथ है। ऐसी शक्ति को पर से भिन्न है, ऐसे आत्मा को पाकर, घोर संसार का मूल, पुण्य और पाप के भाव को **अत्यन्त परिहरो।** आहाहा! है? **अत्यन्त परिहरो।** पहले दृष्टि में तो निर्णय करो कि शुभाशुभभाव, वह संसार का मूल है। होता है। जब तक वीतराग न हो, तब तक शुभभाव होता है, परन्तु वह है संसार। वह धर्म नहीं है तथा धर्म का कारण नहीं है। समझ में आया?

अत्यन्त परिहरो। भाषा तो देखो! मात्र परिहरो शब्द नहीं लिया। **अत्यन्त परिहरो।** सम्पूर्ण पूरा परिहरो। अत्यन्त छोड़ दो। शुभभाव को लेश भी अन्दर न रखो। आहाहा! श्रीपालजी! ऐसा है, भगवान! वीतराग का मार्ग (ऐसा है)। सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ जिनेन्द्र का मार्ग ऐसा है। वीतरागभाव, जिसमें राग का अत्यन्त परिहार और पूर्णानन्द का अत्यन्त शरण। इसका आदर और उसका त्याग। आहाहा! समझ में आया? अनन्त-अनन्त आनन्द और ज्ञान से पूर्ण भरपूर प्रभु की खबर नहीं। क्योंकि एक समय की व्यक्त / प्रगट पर्याय है, उसके पीछे पूरी चीज़ अव्यक्त पड़ी है। पर्याय की अपेक्षा से अव्यक्त है। स्वभाव की अपेक्षा से वस्तु प्रगट ही है। ऐसी चीज़ है परन्तु उसकी ओर कभी नजर नहीं की और सुनने में भी ऐसा क्रियाकाण्ड करो तो धर्म होगा, ऐसा सुना। यह तो सब मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? मांगीलालजी! आहाहा! कितना संक्षिप्त।

इस प्रकार कहे गये... ११-१२ गाथा में उपदेश दिया न? **भेदज्ञान को पाकर, भव्यजीव...** योग्य जीव। अभव्य तो प्राप्त नहीं कर सकता। **घोर संसार...** आहाहा! चाहे तो स्वर्ग मिले, वह भी संसार है। स्वर्ग में दु:ख-आकुलता है। समझ में आया? वहाँ सुख नहीं है। सुख तो भगवान आत्मा में है। आहाहा! स्वर्ग में भी दु:ख है। ये सेठ सब करोड़पति और अरबोंपति कहलाते हैं ये बेचारे सब दु:खी प्राणी हैं। '...'! इनके ससुर तो पैसेवाले थे। बहुत पैसा खर्च किया था। बत्तीस सूत्र। धर्म थे। प्रकृति नरम। प्रार्थना करने आये थे, परन्तु यह चीज़ क्या है, इसकी खबर नहीं होती। (संवत्) १९८८ के वर्ष में दिल्ली से जामनगर प्रार्थना करने आये। उसमें गोकुलचन्दजी एक झवेरी थे, वे होशियार थे। वे कहें, यह महाराज कुछ अलग बात करते हैं। अपन जो सम्प्रदाय चलाते हैं, उससे दूसरी बात करते हैं। यह सम्प्रदाय में रह नहीं सकते। वीरजीभाई को कहा। यह सम्प्रदाय में नहीं रह सकते। सम्प्रदाय में यह बात नहीं है। होशियार थे। पगड़ी बाँधते थे। गोकुलचन्द झवेरी। गोकुलचन्द झवेरी थे, खबर है? श्रीपालजी नहीं पहिचानते। बहुत वर्ष हो गये। ४४ वर्ष हो गये। बहुत समय हो गया। आहाहा! हमें तो आजकल आये हों, ऐसा लगता है, क्योंकि उस समय शरीर की ४२ वर्ष की उम्र और ४४ वर्ष ये। ८६ वर्ष हुए। आहाहा!

कहते हैं कि हे भगवान! एक बार तू राग से भिन्न होकर अपने स्वरूप को प्राप्त करके **संसार के मूलरूप समस्त सुकृत या दुष्कृत को, सुख या दु:ख को अत्यन्त परिहरो। उससे ऊपर (अर्थात्, उसे पार कर लेने पर), जीव समग्र (परिपूर्ण) शाश्वतसुख को प्राप्त करता है।** लो! आहाहा! ऊपर अर्थात् उसे उल्लंघकर। जीव सम्पूर्ण। भगवान अनन्त आनन्द का नाथ, उसमें अन्तर एकाग्र होकर, उसे प्राप्त करके और पुण्य-पाप के भाव को अत्यन्त छोड़कर, अत्यन्त सुख को प्राप्त करता है। **(परिपूर्ण) शाश्वतसुख को प्राप्त करता है।** लो! एक गाथा में तो संसार का नाश, मोक्ष की उत्पत्ति और पूर्णानन्द की प्राप्ति (सब बातें की हैं।) आहाहा! समझ में आया? भाई! यहाँ तो कायर का काम नहीं, वीर का काम है। ऐसी बात है। साधारण को तो ऐसा लगे कि यह तो निश्चय.. निश्चय.. निश्चय.. परन्तु व्यवहार क्या? तेरा व्यवहार कहाँ है? निश्चय बिना व्यवहार आया कहाँ से? समझ में आया?

यहाँ तो वीतराग सन्त-मुनि जंगल में रहते थे और यह टीका बनायी, वे ऐसा कहते हैं कि **शाश्वतसुख को प्राप्त करता है।** लो। यह १८वाँ कलश हुआ। १९वाँ कलश है न!

परिग्रहाग्रहं मुक्त्वा कृत्वोपेक्षां च विग्रहे।
निर्व्यग्रप्रायचिन्मात्रविग्रहं भावयेद् बुध:।।१९।।

परिग्रह का ग्रहण छोड़कर... रागादिभाव, वह परिग्रह है। पैसा और धूल तो कहीं रह गये। आहाहा! शरीर-मिट्टी, यह तो धूल है। रागादि का परिग्रह छोड़कर। आहाहा! **शरीर के प्रति उपेक्षा करके,...** आहाहा! शरीर में क्या होता है, उसकी उपेक्षा कर दे। उसकी पर्याय, पर्याय से उसके कारण से होती है। आहाहा! **उपेक्षा करके, बुध पुरुष को...** आहाहा! ज्ञानी पुरुष को, धर्मी जीव को.. आहाहा! **अव्यग्रता से (निराकुलता से) भरा हुआ, चैतन्य...** आहाहा! अन्दर चैतन्यभगवान निराकुल आनन्द से भरपूर है। आहाहा! समझ में आया? यह दृष्टान्त देते हैं न? शकरकन्द। शकरकन्द कहते हैं? शकरकन्द। उसके ऊपर लाल छाल और अन्दर पूरा शकरकन्द, शक्कर अर्थात् मिठास का पिण्ड है। इतना होता है न? ऊपर लाल छाल होती है। छाल को क्या कहते हैं? जरा छाल होती है, उसके अतिरिक्त पूरा शकरकन्द है। शक्कर अर्थात् शाकर का कन्द, मिठास का कन्द है। शकरकन्द कहते हैं न? शकरकन्द। आहाहा! इसी प्रकार यह भगवान आत्मा, पुण्य और पाप की छाल का लक्ष्य छोड़ दे, तो अन्दर में अकेला अनाकुल निराकुल आनन्द से भरपूर पड़ा है। उस शकरकन्द की भाँति भगवान अनन्त आनन्द का कन्द अन्दर पड़ा है। आहाहा! नौ बजे। समभाव में आनन्द ऐसा होता है। आहाहा!

परिग्रह का ग्रहण छोड़कर... रागादि! **शरीर के प्रति उपेक्षा करके, बुध पुरुष को अव्यग्रता से (निराकुलता से) भरा हुआ,...** '**पाय**' प्रश्न पूछा था। पाय शब्द है न? भरा हुआ। उस शकरकन्द में जैसे अकेली मिठास का दल पड़ा है। उसमें अन्दर लकड़ी का टुकड़ा, पत्थर का टुकड़ा नहीं है। अकेला मिठास का पिण्ड है, इसलिए शकरकन्द कहते हैं, शाकर का कन्द! इसी प्रकार भगवान अनाकुल आनन्द का कन्द है। आहाहा! कैसे जँचे? सम्यग्दृष्टि को अनाकुल आनन्द का कन्द आत्मा भासित होता है। समझ में आया? वीतराग का मार्ग ऐसा है, भाई! जिनेन्द्रदेव का ऐसा मार्ग अन्यत्र कहीं नहीं है। यह बात सुनने को मिलती नहीं, वह मार्ग कहाँ से लावे? आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा **(निराकुलता से) भरा हुआ, चैतन्यमात्र जिसका शरीर...** आत्मा का चैतन्यशरीर। यह (जड़) शरीर नहीं, यह शरीर। चैतन्यमात्र आनन्दकन्द जिसका शरीर है। आहाहा! शरीर अर्थात् स्वरूप। आहाहा! इस (जड़) शरीर की उपेक्षा करके चैतन्यमात्र शरीर को पकड़ ले। आहाहा! ऐसा धर्म कैसा? वह तो यात्रा करना, भक्ति करना, दान करना, पैसेवाला होवे तो पाँच-पचास लाख, दो लाख पैसा (रुपये) खर्च करना, उनसे धर्म होगा। लो, इसमें छब्बीस लाख खर्च किये। हमने तो कहा, इसमें कुछ धर्म-बर्म नहीं है।

हम तो पहले से ही कहते हैं। समझ में आया? इतने पैसे खर्च किये, इसलिए करनेवाले को धर्म होगा, (ऐसा नहीं है)। राग मन्द होवे तो पुण्य है।

श्रोता : धर्म नहीं परन्तु साधन तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन-बाधन नहीं। बाहर में साधन नहीं, साधन अन्दर है। समझ में आया? अन्दर साधन है। आत्मा में साधन नाम की शक्ति पड़ी है। कर्ता, कर्म, करण, करण वह साधन है। षट्कारक है न? कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, षट्कारक की क्रिया है, उसमें करण-साधन नाम का गुण आत्मा में है। त्रिकाल, हों! जैसे आनन्द त्रिकाल है, वैसे करण नाम का गुण आत्मा में त्रिकाल है। यह सैंतालीस शक्ति में आ गया है। आहाहा! वह अन्दर साधन नाम का गुण है, उसे पकड़कर वीतरागी निर्मल दशा हो, वह मोक्ष का साधन है। आहाहा! मार्ग बहुत अलग, बापू! आहाहा! पहले श्रद्धा में तो ले कि चीज़ यह है और इस चीज़ को प्राप्त करके उसमें रमणता करना, वह मोक्ष का मार्ग है। बाकी सब बातें हैं। समझ में आया? आहाहा! क्या कहा?

(निराकुलता से) भरा हुआ, चैतन्यमात्र जिसका शरीर है,... दो लिये, ज्ञान और आनन्द। सब जगह यही लिया है। अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द और चैतन्य जाननस्वभाव, उससे भरपूर चैतन्य शरीर है। इस शरीर से भिन्न वह चैतन्यशरीर है। आहाहा! समझ में आया? **उसे (आत्मा को) भाना चाहिए।** ऐसी निराकुलता से भरा हुआ चैतन्यमात्र जिसका स्वरूप-शरीर है, उसकी भावना करनी चाहिए। उसकी दृष्टि करके, उसे दृष्टि में प्राप्त करके, उसमें एकाग्रता की भावना करनी चाहिए। यह मोक्ष का उपाय है। बहुत संक्षिप्त में परन्तु अकेला माल भरा है, माल।

आता है न? अन्यमति नहीं? भाषा भूल गये। नाम सब भूल गये। वह अन्यमति नहीं? 'दादु कहे दुंद फाटी, सवणी हाली सेर; भटकवुं तो मटी गयुं अने वस्तु जड़ी घेर' अन्यमति में है। 'दादु कहे...' उसका नाम दादु है। दादु नाम था। 'दादु कहे दुंद फाटी...' यह दुंद होती है न? शरीर में मोटी दुन्द। इसी तरह आत्मा में अनन्त आनन्द की दुंद अन्दर पड़ी है। दुंद कहते हैं। दादु कहे दुंद फाटी, सवणी चाली सेर...' अन्दर आत्मा आनन्द और ज्ञान से भरपूर भगवान जहाँ अन्तर में जाता है, वहाँ उसकी शक्ति प्रस्फुटित हुई। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा प्रगट हुई। आहाहा! 'दादु कहे दुंद फाटी,...' दुंद अर्थात् ऊँचा स्थूल-स्थूल शरीर होता है न? उसे दुंद कहते हैं। इसी प्रकार आत्मा बड़ी दुंद है। अनन्त आनन्द है।

'सवणी हाली सेर...' सेर समझे? धारा... निर्मल धारा अन्तर में से निकली। 'भटकवुं तो मटी गयुं ने वस्तु जड़ी घेर' अन्दर में है। अन्यमति में है। ये वेदान्त को माननेवाला। वस्तु की खबर नहीं परन्तु वेदान्त में ऐसा लोगों ने बहुत गाया है। वस्तु नहीं। समझ में आया?

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं **उसे (आत्मा को) भाना चाहिए।** ऐसे आत्मा की भावना करनी चाहिए। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ, चैतन्यमात्र जिसका शरीर है, पर शरीर और पर परिग्रह का आग्रह छोड़कर, रागादि का भी आग्रह छोड़कर स्वरूप की भावना करनी चाहिए। आहाहा! स्वरूप आनन्द के नाथ को भाना चाहिए। उसमें एकाग्रता की भावना करनी चाहिए। यह भावना मोक्ष का कारण है। ओहोहो! श्लोक बनाये हैं न! दिगम्बर सन्तों की क्या बात करना!

२०। दो श्लोक हुए न? बीसवाँ श्लोक।

शस्ताशस्तसमस्तरागविलयान्मोहस्य निर्मूलनाद्,
द्वेषाम्भ:परिपूर्ण-मानसघटप्रध्वन्सनात् पावनम्।
ज्ञानज्योतिरनुत्तमं निरुपधि प्रव्यक्ति नित्योदितं,
भेदज्ञानमहीजसत्फलमिदं वन्द्यं जगन्मङ्गलम्।।२०।।

'**महीज**' अर्थात्... '**महीज**' महिमा उत्पन्न होना।

मोह को निर्मूल करने से,... कहते हैं कि भगवान पूर्णानन्द के नाथ की प्रतीति अनुभव करने से **मोह को निर्मूल करने से, प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त राग...** प्रशस्त अर्थात् शुभराग, अप्रशस्त अर्थात् अशुभराग। उसमें सुकृत-दुष्कृत कहा था न? यह प्रशस्त अर्थात् शुभराग। आहाहा!

मुमुक्षु : शुभभाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : अप्रशस्त की अपेक्षा से शुभ कहा जाता है न! पापराग वह अशुभ, पुण्यराग वह शुभ। दोनों बन्ध का कारण है। है?

प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त... भाषा देखो! है? **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त...** उसमें आया था सुकृत-दुष्कृत समस्त। उसमें भी समस्त आया था। शुभ-अशुभभाव। **समस्त राग का विलय करने से,...** यह प्रशस्त-अप्रशस्त सब राग है। आहाहा! दया पालना, सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य पालना, यह सब भाव शुभराग है। आहाहा! और हिंसा, झूठ, विषय, भोग-वासना, वह अशुभराग है। इस **समस्त राग का विलय करने से,...** विलय अर्थात् नाश करने से। वि-लय। विशेष, लय=नाश। आहाहा! शास्त्र के स्वाध्याय ऐसी अध्यात्म की बात करे तो कुछ

खबर पड़े। स्वाध्याय करे नहीं और ऊपर से मान ले। आचार्य क्या कहते हैं ? शास्त्र में सन्त उत्तराधिकार छोड़ गये हैं। पिता का उत्तराधिकार छोड़ा हो तो पुत्र तुरन्त खोज करता है कि पैसे कितने हैं ? दस लाख हैं या बीस लाख हैं। चाबी रखकर। मर गया तुरन्त चाबी उठा ली। यह सन्त उत्तराधिकार छोड़ गये हैं।

श्रोता : साथ में थोड़े से रुपये छोड़ गये होते तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह रुपये—अनन्त लक्ष्मी अन्दर पड़ी है। वे रुपये तो करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ या अरब, दो अरब या पाँच अरब (होते हैं)। समझने जैसा होता है। पोपटभाई ! यह पोपटभाई रहे। इनके साले के पास दो अरब चालीस करोड़ हैं। ये पोपटभाई लींबड़ी से आये थे। खुशाल, कैसा कहा ? शान्तिलाल खुशाल। इनके साले हैं, ये उनके बहनोई हैं। लींबड़ी। देखो बैठे। इनके साले के पास दो अरब चालीस करोड़। गोआ में है। अभी दस महीने पहले मर गया।

श्रोता : छोड़कर गया या ले गया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़कर गया और दस मिनिट में शोर मचाकर गया। हाय.. हाय.. मुझे दुखता है, कहे। यह उसके बहनोई बैठे। अकेले आये हो ? बहिनें आयी हैं ? नहीं आयी। ठीक। उनके ये बहनोई हैं। इनके साले के पास दो अरब चालीस करोड़ रुपये हैं। दस महीने पहले गुजर गये। उनकी बहू को जरा यह हुआ था... क्या कहलाता है ? हेमरेज। गोआ में रहते हैं। बहुत बड़े सेठ हैं। चालीस-चालीस लाख के बँगले हैं। दस-दस लाख के दो बँगले हैं, एक चालीस लाख का बँगला है। परन्तु वे दो अरब चालीस करोड़ वापस मरते हुए... ऐई ! चन्दुभाई ने सुना नहीं होगा। मरते बीस लाख, डेढ़ प्रतिशत के ब्याज से लिए हुए। उस जमीन में, मशीन में रुपये घुस गये। उसमें जमीन में और मशीन में रुपये रुक गये। इसलिए बाहर छूट से प्रयोग करने को चाहिए उतने लिए थे। धूल में कहीं नहीं है। ऐसे अरबपति अभी हैं, परन्तु उसमें धूल में क्या है ? आहाहा !

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दुनिया को बतलाना कि देखो ! ऐसे करोड़पति भी मर गये। दस मिनिट में मर गया। वह कहे, डॉक्टर को बुलाओ, मुझे दुःखता है। भाई कहता था। इनके रिश्तेदार मुम्बई में नहीं ? उनका क्या नाम ? हम उनके घर गये थे। वे श्वेताम्बर-मन्दिर, मुम्बई ! पीछे मकान है। मुम्बई में उनके घर गये थे। वे कहे, मैं खड़ा था। उनके रिश्तेदार होते हैं। रात्रि को डेढ़ बजे उसे दुखने लगा, एकदम दर्द उठा। ६१ वर्ष की उम्र, ६० और १। नाम

भूल गये। कान्तिभाई! तुम नहीं पहिचानते? इनके रिश्तेदार हैं।

श्रोता : श्वेताम्बर के मन्दिर के पास उनका घर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुम्बई है, इस ओर श्वेताम्बर का मन्दिर है, इस ओर मकान है। उनके घर गये थे। वे कहते थे कि मैं वहाँ खड़ा था। वे कहें, भाई! मुझे दुखता है। मैं डॉक्टर को बुलाने गया। जहाँ डॉक्टर आया वहाँ भाईसाहब चल दिये... डॉक्टर हॉल डाल देता, ऐसा कहते हैं। उसमें जल्दी और देरी कहाँ होती है? आहाहा! दस मिनिट या पाव घण्टे में तो समाप्त हो गया, देह छूट गयी। अरबों रुपये और कुटुम्ब-कबीला सब। आहाहा! कहाँ ले गये? गृहस्थ लोग थे न? मुम्बई (में) गुजर गये और वहाँ गोवा ले गये। बड़ी इज्जतवाले हैं न? धूल में क्या है? वह मरकर कहीं चला गया। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! एक बार सुन तो सही! तुझमें अनन्त लक्ष्मी पड़ी है। आहाहा! यह तो कुछ अरबों और खरब, निखरब आता है न? यह हमारे समय में आता था। ....आता था। ....हमारे विद्यालय के समय अरब के ऊपर के बोल आते थे। यह तो सत्तर वर्ष पहले की बात है। अरब के बाद खर्व, निखर्व आता है न? सौ करोड़ का एक खर्व, सौ अरब का एक खर्व, सौ खर्व का एक निखर्व। ऐसे खर्व, निखर्व इसके बाद भूल गये... ऐसे बोल आते थे। सब इतने, हों! करोड़ अरब का एक खरब। लाख-लाख और... आहाहा! कहाँ के कहाँ अठारहवाँ आँकड़ा चलता। तो भी क्या? धूल में है क्या? यह तो अनन्त आँकड़ा। आत्मा में तो अनन्त आनन्द। आहाहा!

जिसका स्वभाव है, उसकी शक्ति के सामर्थ्य की हद क्या? आहाहा! भगवान आत्मा का आनन्दस्वभाव, अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव उस स्वभाव की शक्ति का सामर्थ्य का माप क्या? अमाप.. अमाप.. अमाप.. ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड भगवान, वह निज लक्ष्मी का सनाथ है, निज लक्ष्मी से भरपूर है। आहाहा! उस लक्ष्मी के समक्ष यह धूल की लक्ष्मी, व्यर्थ का भिखारी है। रंक मनुष्य अन्तर की लख्मी को छोड़कर बाहर की लक्ष्मी में हैरान होता है। ऐई! शास्त्र में उसे वरांका कहा है। वरांका अर्थात् रांका। स्वरूप लक्ष्मी का जहाँ भान नहीं और परलक्ष्मी की जहाँ भावना तथा गरज है, वह रांका, वरांका, भिखारी है। यहाँ ऐसी बात है। ऐई! ....भाई!

यहाँ कहते हैं, **मोह को निर्मूल करने से,...** मिथ्यात्व का नाश करने से। आहाहा! पर की कीमत की दृष्टि छोड़कर। **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त राग का विलय करने से, तथा द्वेषरूपी जल से भरे हुए मनरूपी घड़े का नाश करने से,...** आहाहा! मनरूपी घड़ा। उसमें

द्वेषरूपी जल भरा है, उसका नाश करने से। आहाहा! **पवित्र,...** भगवान आत्मा अन्दर पवित्र.. आहाहा! **अनुत्तम... ...जिससे अन्य कोई उत्तम नहीं है, ऐसी सर्वश्रेष्ठ। निरुपधि=उपाधिरहित, परिग्रहरहित, बाह्यसामग्री रहित, उपाधिरहित छलकपटरहित-सरल।** नीचे अर्थ है। **और नित्य-उदित (सदा प्रकाशमान), ऐसी ज्ञानज्योति...** सदा प्रकाशमान भगवान चैतन्यज्योति **प्रगट होती है।** पर्याय में प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया?

पवित्र, अनुत्तम, निरुपधि और नित्य-उदित (सदा प्रकाशमान), ऐसी ज्ञानज्योति प्रगट होती है। भेदज्ञानरूपी वृक्ष का यह सत्फल, वंद्य है;... आहाहा! क्या कहा? कि ज्ञानज्योति जलहल भगवान आनन्द का नाथ! राग का नाश करके... आहाहा! द्वेष का नाश करके पवित्र उत्तम वीतरागीस्वरूप निरुपधि-रागरहित चीज़, नित्य प्रकाशमान ऐसी ज्ञानज्योति प्रगट होती है। पर्याय में जलहल ज्योति प्रगट प्रकाशमान (होती है)। आहाहा! **भेदज्ञानरूपी वृक्ष का यह सत्फल, वंद्य है;...** आहाहा! त्रिकाल में एकाग्र होकर, पर का नाश करके जो आनन्द का फल आया, वह। **भेदज्ञानरूपी वृक्ष का यह सत्फल, वंद्य है;...** आहाहा! राग का नाश करके, स्वभाव की शरण का आश्रय करके जो पर्याय में निर्मल आनन्द की दशा प्रगट हुई, वह भेदज्ञानरूपी वृक्ष का फल है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश। वे तो कहें दया पालनी, व्रत करना, छह काय के जीव की दया पालना.... यह तो राग की क्रिया है। पर की (दया) कौन पाल सकता है? सब दाल, भात, सब्जी सब खाते हैं या नहीं? ढ़ेर के ढ़ेर सब खाते हैं या नहीं? दाना भी नहीं खाता। कौन खाता है? आहाहा! तुझे भान कहाँ है? इतना डाँगर पकते हैं, चावल पकते हैं, अमरूद, अनार, क्या कहलाता है? लोग सब खाते हैं या नहीं? पर को कौन खाये? वह तो उस समय में राग खाता है - राग का अनुभव करता है। वह तो जड़ की क्रिया है। जड़ की क्रिया करे कौन? आहाहा! दुनिया को चीज़ की खबर नहीं और साधु होकर त्याग करके निकल पड़े।

कहते हैं **सत्फल, वंद्य है; जगत को मंगलरूप है।** आहाहा! मं-गल। मम् अर्थात् अहंकार और गल अर्थात् मोह का नाश करके। मंग अर्थात् पवित्र का और ल अर्थात् लाती। मंगल - अन्तर पवित्र स्वरूप मंग, उसे ल अर्थात् पर्याय में प्राप्त करके तथा मम् अर्थात् पर के अहंकार को गल अर्थात् नाश कर दिया, वह मंगल है। आहाहा! **जगत को मंगलरूप है।** आहाहा! मुनिराज ने भी... **भेदज्ञानरूपी वृक्ष का यह सत्फल, वंद्य है;...** राग से भिन्न होकर पूर्णानन्द के नाथ की अनुभवदशा को प्राप्त करके। जो आनन्द की दशा हुई, वह सत्फल वन्द्य है। सच्चा फल, वह वन्दनीय है और वह जगत को मंगलरूप है। अतीन्द्रिय आनन्द की

पर्याय में प्राप्ति हो, वह मंगल है। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह आनन्दरूप दशा है। वह अन्तर के आश्रय से जो प्रगट हुआ, वह सत्फल, वह मंगल है और वह वंद्य है। वह वन्दनीय है, कहते हैं। रागभाव आता है, वह वन्दनीय नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह तो वीतरागमार्ग है, भाई! इसमें साधारण का काम नहीं। आहाहा!

नौ सौ वर्ष पहले टीका हुई है। पद्मप्रभमलधारिदेव ९०० वर्ष पहले हुए हैं। यह मूल श्लोक दो हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य ने बनाये हैं। समझ में आया? ओहोहो! अमृत भरा है, अमृत!! कहते हैं कि अमृत का सागर तेरा आत्म-शरीर। इस शरीर में भिन्न अमृत का सागर तेरा चैतन्य शरीर। आहाहा! उसका अनुभव करके, पर से भिन्न भेदज्ञान करके तेरा अनुभव करके, राग का अनुभव छोड़कर तेरा अनुभव करके जो आनन्द का फल आया, वह वन्द्य है। आहाहा! वह जगत को मंगलिक है। आहाहा! उसे केवलज्ञान लेने की तैयारी हुई। उसने मांगलिक किया। उसे सिद्धपद होने की तैयारी हो गयी। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश!

श्रोता : ब्रह्म उपदेश।

पूज्य गुरुदेवश्री : ब्रह्म उपदेश। यह पहले आया न? १२ गाथा में ब्रह्म उपदेश है। अपने आता है न १२ गाथा। पीठिका। समयसार की १२ गाथा, पीठिका, ऐसा यह है। आहाहा!

जगत को मंगलरूप है। आहाहा! क्या मंगलरूप है?-कि मिथ्यात्व का नाश करके,... दया, दान, व्रत, विकल्प वह धर्म है, ऐसा मिथ्यात्वभाव का नाश करके और अन्तर में स्वरूप की शरण लेकर, द्वेषरूपी मन के घड़े का नाश करके, **पवित्र, अनुत्तम, निरुपधि...** जिसमें राग की उपधि नहीं, ऐसा वीतरागस्वरूप, **नित्य-उदित (सदा प्रकाशमान), ऐसी ज्ञानज्योति...** त्रिकाल। उसे **प्रगट होती है।** दियासलाई को घिसने से अग्नि प्रगट होती है, वैसे भगवान की शक्ति में आनन्द पड़ा है, उसे घिसकर पर्याय में आनन्द प्रगट कर। नवरंगभाई! ऐसा है। आहाहा!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह दियासलाई। दियासलाई में अग्नि है या नहीं? उसे घिसने से प्रगट होती है या नहीं? अन्दर है वह आती है या नहीं? और आती है? इसी प्रकार भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्दरूपी शक्ति पड़ी है। अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता। उस शक्ति में एकाग्र होकर घिसावट दे। पर से भिन्न होकर उसमें एकाग्रता लगा दे। अन्दर से निकलेगी... तुझे शक्ति में से आनन्द की व्यक्ति होगी। यह सत्य वन्द्य है, यह फल वन्द्य है और यह फल आनन्ददायक है, यह मांगलिक है। गजब बात की, भाई! विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१०

श्री नियमसार, गाथा-१३, श्लोक- २१-२२ प्रवचन - १५७
दिनांक - २०-०१-१९७६

यह नियमसार, जीव अधिकार। १३वीं गाथा के ऊपर १२वीं गाथा के अन्तिम दो कलश हैं न? २१ और २२ (कलश)।

मोक्षे मोक्षे जयति सहज-ज्ञान-मानन्दतानं,
निर्व्याबाधं स्फुटित-सहजावस्थ-मन्तर्मुखं च।
लीनं स्वस्मिन्सहज-विलसच्चिच्चमत्कारमात्रे,
स्वस्य ज्योति:प्रतिहततमोवृत्तिनित्याभिरामम्।।२१।।

मोक्ष की पर्याय की बात करते हैं। ज्ञान, आनन्द। **आनन्द में जिसका विस्तार है,...** भगवान मोक्ष की दशा में जिसका आनन्द में विस्तार है। केवलज्ञान के साथ पूर्ण आनन्द का विस्तार-शक्ति प्रगट हो गयी है। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप जो अन्दर है, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द, अनाकुल अतीन्द्रिय आनन्द का विस्तार प्रगट हुआ है। आहाहा! **जो अव्याबाध...** जिसे कोई बाधा, पीड़ा, विघ्न नहीं, ऐसी केवलज्ञानदशा।

जिसकी सहजदशा विकसित हो गयी है,... केवल सहजज्ञानस्वरूप। मोक्षदशा की बात है, हों! **दशा विकसित हो गयी है,...** पूर्ण स्वाभाविक दशा प्रगट हो गयी है और **जो अन्तर्मुख है, जो अपने में...** - देखो! यहाँ तो केवलज्ञान को भी अन्तर्मुख कहा है। आहाहा! **जो अपने में सहज विलसते (खेलते; परिणमते) चित्चमत्कारमात्र में लीन है,...** केवलज्ञान चित्चमत्कार में पर्याय में लीन है। समझ में आया? अथवा **(खेलते; परिणमते) चित्चमत्कारमात्र में लीन है,...** पर्याय में, ऐसा कहते हैं न? भाषा अलौकिक है!

जिसने निजज्योति से तमोवृत्ति को (अन्धकारदशा को; अज्ञानपरिणति को) नष्ट किया है... जिसने केवलज्ञान की ज्योति से अन्धकारदशा, अज्ञानपरिणति का नाश किया है। **और जो नित्य अभिराम (सदा सुन्दर) है — ऐसा सहजज्ञान, सम्पूर्ण मोक्ष में जयवन्त वर्तता है।** मोक्ष की दशा। **ऐसा सहजज्ञान,...** पर्याय की बात है, हों! **सम्पूर्ण मोक्ष में जयवन्त वर्तता है।** यह मोक्ष का तत्त्व, मोक्ष की दशा।

सहज-ज्ञान-साम्राज्य-सर्वस्वं शुद्ध-चिन्मयम्।
ममात्मानमयं ज्ञात्वा निर्विकल्पो भवाम्यहम्।।२२।।

आहाहा! **सहजज्ञानरूपी साम्राज्य जिसका सर्वस्व है...** त्रिकाली, स्वाभाविक ज्ञानस्वरूप **साम्राज्य जिसका सर्वस्व है — ऐसा शुद्धचैतन्यमय....** ऐसा शुद्धचैतन्यमय त्रिकाली की बात है। **अपने आत्मा को जानकर,...** आहाहा! मुनिराज कहते हैं कि हम अभी क्या करते हैं? धर्मरूपी मोक्षदशा, मोक्ष का कारण। कि **सहजज्ञानरूपी साम्राज्य जिसका सर्वस्व है...** यह आत्मा। **ऐसा शुद्धचैतन्यमय अपने आत्मा को...** ऐसे आत्मा को जानकर। स्वाभाविक ज्ञानरूपी राज्य जिसका सर्वस्व साम्राज्य है। आहाहा! ऐसे **शुद्धचैतन्यमय अपने आत्मा को जानकर, मैं यह निर्विकल्प होऊँ।** बस। जानकर मैं उसमें स्थिर हो जाऊँ। वीतरागी पर्याय प्रगट करके निर्विकल्प हो जाऊँ, यह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! आत्मा को, (ऐसा कहकर) यहाँ तक त्रिकाल की बात की, वर्तमान पर्याय में जानकर मैं यह निर्विकल्प वीतराग पर्यायमय हो जाऊँ। अब जरा सूक्ष्म अधिकार आयेगा।

१३वीं गाथा। थोड़ा सूक्ष्म अधिकार है। **यह दर्शनोपयोग के स्वरूप का कथन है।** ज्ञान की व्याख्या हो गयी। मोक्ष की और त्रिकाल की दो की बात हुई।

तह दंसणउवओगो ससहावेदरवियप्पदो दुविहो।
केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावमिदि भणिदं।।१३।।

दर्शनपयोग स्वभाव और विभाव दो विधि जानिये।
इन्द्रिय-रहित, असहाय, केवल, दृग्स्वभाविक मानिये॥१३॥

तह अर्थात् ज्ञान की बात की। अब दर्शन।

टीका :—**यह दर्शनोपयोग के स्वरूप का कथन है। जिस प्रकार ज्ञानोपयोग बहुविध भेदोंवाला है,...** ज्ञान की व्याख्या आ गयी न? मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, केवलज्ञान। मतिज्ञान में बहुविध आदि भेद आ गये। **जिस प्रकार ज्ञानोपयोग बहुविध भेदोंवाला है, उसी प्रकार दर्शनोपयोग भी वैसा है;...** सूक्ष्म है, जरा ध्यान देना। **(वहाँ प्रथम, उसके दो भेद हैं)...** दर्शनोपयोग के दो भेद : (१) **स्वभावदर्शनोपयोग और विभावदर्शनोपयोग। स्वभाव-दर्शनोपयोग भी दो प्रकार का है—कारणस्वभावदर्शनोपयोग और कार्यस्वभावदर्शनोपयोग।** अन्दर में कारणस्वभावदर्शनोपयोग, वह त्रिकाली सहज और उसमें केवलदर्शन कार्य प्रगट होता है वह कार्यस्वभावदर्शनोपयोग है। क्या कहा?

दर्शन (अर्थात्) देखना और श्रद्धा करना, ऐसे दो प्रकार लिये हैं। दर्शन जो ज्ञानोपयोग की बात की त्रिकाली की और चारित्र की। अब यहाँ दर्शनोपयोग त्रिकाल में है, वह कारणस्वभाव दर्शनोपयोग है। दर्शनोपयोग के दो भेद : कारणस्वभावदर्शनोपयोग और कार्यस्वभावदर्शनोपयोग। कार्य अर्थात् पर्याय में स्वभावोपयोग। कारणस्वभावोपयोग दो प्रकार के हैं। स्वभावदर्शनोपयोग भी दो प्रकार के हैं। एक कारणस्वभावदर्शनोपयोग, एक कार्यस्वभावदर्शनोपयोग। त्रिकाल है, वह कारणस्वभावदर्शनोपयोग है और पर्याय में प्रगट है, वह कार्यस्वभावदर्शनोपयोग है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। समझ में आया?

अब जरा दर्शनोपयोग की बात चलती है परन्तु अन्दर कारणदृष्टि भी साथ में ले ली है। सम्यग्दर्शन जो पर्याय में प्रगट होता है, उसके अन्तर में कारणदर्शन त्रिकाल एक श्रद्धा है। कारणश्रद्धा—दृष्टि त्रिकाल एक अन्दर है। क्या कहा? जैसे स्वभावकारण उपयोग त्रिकाल है, उसमें से कार्यस्वभावोपयोग प्रगट होता है। इसी प्रकार आत्मा में सम्यग्दर्शन-श्रद्धा ऐसी कारणदृष्टि त्रिकाल आत्मा में है। ऐई! चन्दुभाई! यह कभी सुना नहीं होगा, ऐसी बात है जरा।

दर्शन अर्थात् देखना और दर्शन अर्थात् श्रद्धा। ऐसे यहाँ दो भाग लेना। त्रिकाल दर्शनोपयोग जो है स्वभाव, वह त्रिकाल है और उसमें से परमात्मा को जो केवलदर्शन उत्पन्न होता है, वह कार्यदर्शनोपयोग है। पर्याय को कार्यदर्शनोपयोग कहते हैं और गुण को कारणदर्शनोपयोग कहते हैं। अब यहाँ दर्शनोपयोग और कारणदर्शनोपयोग। यह क्या? **वहाँ कारणदृष्टि...** त्रिकाली श्रद्धा को कारणदृष्टि कहते हैं। समझ में आया? पूर्णानन्द का नाथ भगवान आत्मा अनन्त चारित्र आदि से सम्पन्न। त्रिकाल, हों! उसकी श्रद्धामात्र को अन्तर कारणदृष्टि कहने में आता है। प्रगट सम्यग्दर्शन की यहाँ बात नहीं है। जैसे सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट होती है, तो अन्तर में कारणदृष्टि भी त्रिकाल है, उसमें से सम्यग्दर्शन की पर्याय आती है। आहाहा! कारणदर्शनोपयोग जो त्रिकाल है, उसमें से अनन्त केवलदर्शन का उपयोग प्राप्त होता है। आहाहा! त्रिकाल में रमणता, चारित्ररूपी अकषायभाव, आत्मा में त्रिकाल पड़ा है। उसमें से यथाख्यातचारित्र की पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया? नीचे स्पष्टीकरण किया है न? !

दृष्टि=दर्शन... लेना। **(दर्शन अथवा दृष्टि के दो अर्थ हैं : १. सामान्य प्रतिभास, और २. श्रद्धा।)** दर्शन के दो अर्थ हैं - **१. सामान्य प्रतिभास, और २. श्रद्धा।** दर्शनोपयोग के दो भेद हैं। ये दर्शन के भेद। एक सामान्य दर्शनोपयोग और त्रिकाल सामान्य श्रद्धा। बहुत सूक्ष्म

बात है। यह तो नयी बात है। नियमसार के सिवा यह बात अन्यत्र कहीं नहीं आती। समझ में आया? और इसका अभ्यास भी अभी बहुत कम हो गया है। आहाहा!

श्रोता : प्रतिभास....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिभास तो दर्शन कहा। दर्शन, देखो न! देखना। देखना, वह दर्शनोपयोग और श्रद्धा, वह श्रद्धा का भाव, वह दूसरी चीज़ है। सामान्य प्रतिभास दर्शन त्रिकाल में दर्शन जो स्वभाव है, त्रिकाल दर्शनस्वभाव, उसे सामान्य प्रतिभास कहते हैं और त्रिकाली में जो श्रद्धा है, उसे दृष्टि कहते हैं। त्रिकाल में आत्मा में अन्दर पड़ी है, उसकी बात है। आहाहा! है?

(जहाँ जो अर्थ घटित होता हो, वहाँ वह अर्थ समझना। दोनों अर्थ गर्भित हों, वहाँ दोनों समझना।) दर्शनोपयोग की बात चलती है। दर्शनोपयोग के दो प्रकार : एक कारणदर्शनोपयोग त्रिकालस्वभाव और एक कार्यदर्शनोपयोग पर्याय। अब, इस प्रकार से श्रद्धा के दो प्रकार लेना। दर्शन में साथ में श्रद्धा ली है। त्रिकाली कारणश्रद्धारूपी दृष्टि, वह त्रिकाल। पूर्ण आत्मा अनन्त आनन्द आदि लेंगे। पूर्ण स्वभावरूप, परमपारिणामिकभावस्वरूप, चारित्रस्वरूप। त्रिकाल, हों! ऐसे आत्मा की त्रिकाल में पड़ी हुई ऐसी कारणस्वरूप श्रद्धानमात्र दृष्टि को कारणदृष्टि कहते हैं। है न? **वहाँ कारणदृष्टि तो...** श्रद्धा की अपेक्षा से लिया। और दर्शनोपयोग भी लेना हो तो साथ में लिया जा सकता है। समझ में आया? आहाहा!

श्रोता : यह सामान्य प्रतिभास और श्रद्धा दोनों... पर्याय है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय का इनकार किया। पर्याय की बात कहाँ चलती है? यहाँ तो त्रिकाल की चलती है। ध्यान रखो... ध्यान रखो। यह तो दूसरी चीज़ है। यह पर्याय की बात नहीं है।

श्रोता : दो गुण हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो गुण हैं। दो गुण साथ में हैं। दर्शनोपयोग और कारणदृष्टि दोनों ध्रुव में साथ में हैं, पर्याय में नहीं। यहाँ पर्याय की बात नहीं है। यह अत्यन्त सूक्ष्म बात है। अभी सम्यग्दर्शन और उसका विषय क्या, यह बात तो लुप्त हो गयी है। यह व्रत करना, तप करना, यह सब अज्ञान में चला है। आहाहा!

श्रोता : यह सरल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सरल क्या, वह तो अनन्त बार किया है। और जो अनन्त बार किया,

वह भी अभी कहाँ है ? नौवें ग्रैवेयक गया था और किया था ऐसा तो अभी नहीं है। मिथ्यादृष्टिसहित, हों ! ऐसा कहाँ है ? आहाहा ! सूक्ष्म बात, बापू !

भगवान ! यहाँ तो कहते हैं, जैसे ज्ञानोपयोग के दो भेद लिये थे, एक त्रिकाली कारणस्वभावोपयोग और कार्यपर्याय तथा कार्यज्ञान दो लिये। ऐसे दर्शन में एक कारणदर्शनोपयोग एक कार्यदर्शनोपयोग। अब दर्शनोपयोग में कारणदृष्टि साथ में ली है। दर्शन कहा, इस अपेक्षा से। जैसे आत्मा में त्रिकाली कारणदर्शनोपयोग ध्रुव है, ऐसी कारणदृष्टि आत्मा में ध्रुव है। आहाहा ! धीमे-धीमे समझो। यह तो...

जैसे यह भगवान आत्मा ! देह, वाणी, मन तो भिन्न लिये, पुण्य-पाप, राग की क्रिया है, उसे भी भिन्न लिया। उसकी एक समय की पर्याय भी कार्य है। उसमें त्रिकाली वस्तु वह कारण है और त्रिकाली कारणपरमात्मा अथवा कारणआत्मा में कारणदृष्टि त्रिकाल पड़ी है।

फिर से। यह तो बहुत बात करते हैं, तब मुश्किल से पकड़ में आये, ऐसी वस्तु है। आहाहा ! यह आत्मा है, जो ज्ञानोपयोग भी है और दर्शनोपयोग भी है। तो ज्ञानोपयोग जो त्रिकाल है, आत्मा में त्रिकाल ज्ञान है, वह कारणज्ञानोपयोग त्रिकाल ज्ञान है और वर्तमान केवलज्ञान की पर्याय कार्य-उपयोग है।

अब, दर्शनोपयोग की व्याख्या। भगवान आत्मा में जैसे ज्ञानोपयोग त्रिकाल है, वैसे एक दर्शनोपयोग त्रिकाल है। उस दर्शनोपयोग को कारणस्वभावोपयोग कहा जाता है। आहाहा ! उसके साथ एक कारणदृष्टि त्रिकाल आत्मा में ध्रुव पड़ी है।

श्रोता : श्रद्धा के गुणरूप।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, श्रद्धा के गुणरूप। श्रद्धागुणरूप। दर्शनगुणरूप की बात तो दर्शनोपयोग में गयी। यह तो श्रद्धागुणरूप एक त्रिकाल है।

श्रोता : दोनों भिन्न है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न-भिन्न है। यह श्रद्धा है और वह तो उपयोग का व्यापार है, उपयोग है, उसमें इतना अन्तर है, अनन्त गुणा अन्तर है। यह तो श्रद्धामात्र की बात है। कारणदृष्टि। दर्शनोपयोग—देखना, वह तो उपयोग है। कहो, समझ में आया ? क्या कहते हैं ?

श्रोता : आत्मा में अनन्त शक्ति है...

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त में दोनों शक्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं। दोनों भिन्न हैं।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक देखने की और एक श्रद्धा की। दो विशेषता भिन्न-भिन्न है। दो गुण है न! कहा न! दो गुण भिन्न है। एक दर्शनगुण है और एक श्रद्धागुण है। दो भिन्न है। यह तो पहले से बात चलती है। आहाहा!

श्रोता : पुरानी बात की हमें खबर नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : धीरे-धीरे कहते हैं, इसीलिए तो धीरे-धीरे कहते हैं।

आत्मा में एक दर्शनशक्ति त्रिकाल पड़ी है, वैसे आत्मा में श्रद्धाशक्ति त्रिकाल पड़ी है। दोनों भिन्न गुण हैं। समझ में आया? यह तो (ऐसा सूक्ष्म है), बापू! सम्यग्दर्शन का विषय आत्मा कैसा है, उसकी बात चलती है। समझ में आया? तो कहते हैं कि **कारणदृष्टि तो...** कारणदृष्टि अर्थात् त्रिकाली श्रद्धा-दृष्टि तो। कारणदृष्टि की अर्थ त्रिकाली श्रद्धा-दृष्टि तो, त्रिकाली।

सदा पावनरूप... अब ये विशेषण आत्मा के हैं। **सदा पावनरूप और औदयिकादि चार विभावस्वभाव परभावों को अगोचर...** आत्मा। आत्मा की बात चलती है। अन्त में है न? **ऐसे आत्मा के यथार्थ स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है...** अन्तिम लाईन है। छेल्ली को हिन्दी में क्या कहते हैं? (अन्तिम)। यह गाथा और यह अर्थ तो अलौकिक है। यह अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा! त्रिकाल में दर्शनोपयोग प्रतिभासरूप कहा। कहा न? त्रिकाल दर्शन। दर्शनोपयोग प्रतिभासरूप और श्रद्धामात्र प्रतीतिरूप। यह त्रिकाल। ये दोनों गुण त्रिकाल भिन्न है। चन्दुभाई! आहाहा!

अब यहाँ जरा कारणदृष्टि, इसकी श्रद्धा करते हैं। त्रिकाल, हों! त्रिकाल में उसे किसकी श्रद्धा है? **सदा पावनरूप...** परमपारिणामिकभाव, त्रिकाली स्वभावभाव **सदा पावनरूप...** अन्दर जो पावन परमपारिणामिकभाव, पर्यायरहित त्रिकाली भाव। वह परम **सदा पावनरूप और औदयिकादि चार विभावस्वभाव परभावों को अगोचर...** आहाहा! क्या कहते हैं? यहाँ ऐसा लेना है कि ऐसे आत्मा की श्रद्धा, वह कारणदृष्टि, ऐसा लेना है। परन्तु वह आत्मा कैसा है? कि **सदा पावनरूप और औदयिकादि...** रागादि की क्रिया से, उपशमभाव समकित आदि, क्षायिकभाव केवलज्ञानादि या समकित आदि और क्षयोपशम, ये **चार विभावस्वभाव...** हैं। आत्मा में त्रिकाल स्वभाव है, वह पारिणामिक स्वभावभाव है और पर्याय में उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक चार भाव है, उस पर्यायभाव को विभावस्वभाव कहने में आया है। स्वभाव उपयोग त्रिकाल की अपेक्षा से, परमभाव की अपेक्षा से चार पर्याय को विभावस्वभाव कहा गया है।

एक तो कारणदृष्टि स्वरूपश्रद्धानमात्र किसकी ? – कि आत्मा की। वह आत्मा कैसा है ? – कि **सदा पावनरूप...** आत्मा परमपारिणामिकभाव **और औदयिकादि चार विभावस्वभाव परभावों को अगोचर...** नीचे लिखा है। २ (का सांकेतिक अंक) है न ? क्षायिकभाव-केवलज्ञान क्षायिकभाव, यथाख्यातचारित्र क्षायिकभाव की पर्याय – इन सबको यहाँ विभावभाव कहने में आया है क्योंकि वे विशेष पर्यायभाव हैं, सामान्य स्वभावभाव नहीं। आहाहा ! यह सामान्य और विशेष को... जैनदर्शन बहुत सूक्ष्म, भाई ! उसमें भी सम्यग्दर्शन और उसका विषय, अलौकिक बात है। आहाहा ! अभी तो यह बात चलती भी नहीं। सम्यग्दर्शन की बात नहीं। देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, वह समकित, जाओ। आहाहा !

श्रोता : हमारे लिए तो वर्तमान में चलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो सब चलता है। आहाहा !

आत्मा जो है, वह सहज परमपारिणामिकभावस्वरूप जिसका स्वभाव है। आत्मा का। है न ? इस अपेक्षा से। नीचे विभाव (का स्पष्टीकरण)। **विभाव=विशेषभाव, अपेक्षितभाव।** कर्म के निमित्त की अपेक्षा और निमित्त के अभाव की अपेक्षा। अपेक्षितभाव का अर्थ यह है। **औदयिक,...** दया, दान, विकल्प है, वह औदयिकभाव कहलाता है। **औपशमिक...** सम्यग्दर्शन की उपशमदशा को औपशमिक कहते हैं। **क्षायोपशमिक,...** ज्ञान और वीर्य का थोड़ा उघाड़ और थोड़ा विघ्न, इसे क्षायोपशमिक कहते हैं। **और क्षायिक...** केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, इन्हें क्षायिकभाव कहते हैं।

ये चार भाव, अपेक्षितभाव होने से... अपेक्षित अर्थात् जिसमें उदयभाव में कर्म का निमित्त पड़ता है और तीन में निमित्त का अभाव पड़ने की इतनी अपेक्षा आती है।... इसलिए केवलज्ञान क्षायिकभाव को भी विभावभाव कहा गया है क्योंकि वह पर्यायभाव है और उसमें केवलज्ञानावरणीय के अभाव की अपेक्षा आती है। उदय में दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव में कर्म के निमित्त की अपेक्षा आती है। इस कारण से चारों भाव को विभावभाव कहने में आया है। आहाहा !

एक ओर राग को विभावभाव कहना तथा एक ओर चार भाव को विभावभाव कहना। यह अपेक्षित बात है। क्यों ? कि त्रिकाली भगवान परमस्वभावभाव का पिण्ड जो ध्रुव है, इस अपेक्षा से स्वभावभाव वस्तु, इस अपेक्षा से विकारी या अविकारी जितनी पर्याय प्रगटी, उन पर्यायों में कर्म के निमित्त की उपस्थिति या अभाव है, ऐसी अपेक्षा आने से चार भाव को विभावभाव कहने में आया है। आहाहा ! चन्दुभाई ! ऐसा है।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव किस अपेक्षा से कहा ? कि निर्मल पूर्ण हुआ, इस अपेक्षा से स्वभावभाव कहा परन्तु कर्म के निमित्त के अभाव की अपेक्षा लेकर उसे विभावभाव कहा। सूक्ष्म बात, भाई! आत्मा की बात ही बहुत सूक्ष्म है। समझ में आया ? धीमे-धीमे समझना। यहाँ धीमे-धीमे बात चलती है।

आत्मा जो वस्तु है और वह तो परमस्वभाव, परमपारिणामिकस्वभावभाव है, वह तो ध्रुव है। और पर्याय में जो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि, मन:पर्यय, केवलज्ञान आदि होते हैं, समझ में आया ? अथवा अचक्षुदर्शन, चक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन होते हैं, वह पर्याय है और पर्याय में कर्म का उदय निमित्त है, तो उपशम और क्षायिक में निमित्त का अभाव है। इतनी अपेक्षा आती है, इस कारण से केवलदर्शनोपयोग को भी, पर्याय को भी विभावस्वभाव कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया ?

जहाँ जो अर्थ घटित होता हो, वहाँ वह अर्थ समझना। कारणदर्शनोपयोग की बात में कारणदृष्टि डाली, वह दृष्टि को लेना और दर्शनोपयोग लेना तो दर्शनोपयोग लेना। दोनों ले सकते हैं। आहाहा! नीचे है न ? **चार भाव, अपेक्षितभाव होने से उन्हें विभावस्वभाव परभाव...** परभाव। आहाहा! पाठ है न, विभावस्वभाव परभाव। यह पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति तो परभाव है ही, वह तो विकार है परन्तु चार पर्याय है, उन्हें भी विभावभाव कहकर परभाव (कहा है)। त्रिकाली परमस्वभावभाव की अपेक्षा से चार भाव को परभाव कहा है।

फिर से। यह आत्मा जो वस्तु त्रिकाल है, वह परमस्वभावभावरूप है। पारिणामिकभाव कहा न ? देखो! **सहज-परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है;...** इस आत्मा का। आत्मा का त्रिकाली स्वभाविक परमपारिणामिकरूप जिसका स्वभाव है। वह भाव विभावस्वभाव से - परभाव से अगम्य है। परमस्वभावभाव, इन चार विभावस्वभाव के आश्रय से अगम्य है। आश्रय से। चार पर्याय का आश्रय करने से परमपारिणामिकभाव प्राप्त नहीं होता। आहाहा! गम्य तो वह क्षयोपशम और क्षायिक-गम्य ही आत्मा है, परन्तु क्षयोपशम और क्षायिक के आश्रय से गम्य नहीं होता, इस अपेक्षा से चार भाव से अगम्य है, ऐसा कहने में आया है।

त्रिकाली भगवान आत्मा ध्रुवस्वरूप है, परमपारिणामिकस्वभावभाव है, उसके आश्रय से परमपारिणामिकस्वभाव का भान होता है। इन चार पर्याय के आश्रय से परमपारिणामिक आत्मा के स्वभाव का भान नहीं होता। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव, वह

विकल्प-राग है, विकार है। उससे तो आत्मा ज्ञात नहीं होता परन्तु यहाँ तो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक जो निर्मल पर्याय है, उस निर्मल पर्याय के आश्रय से ज्ञात नहीं होता। निर्मल पर्याय से ज्ञात होता है परन्तु निर्मल पर्याय के आश्रय से ज्ञात नहीं होता।

मुमुक्षु : इतना अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरब-पश्चिम का अन्तर है। आहाहा! समझ में आया? कैलाशचन्दजी कहाँ बैठे हैं? पीछे। समझ में आया? आहाहा! धीरे-धीरे कहते हैं। एकदम कहीं ले नहीं जाते।

यहाँ बात क्या करनी है कि कारणदृष्टि। यहाँ कारणदर्शनोपयोग की व्याख्या चलती है न! तो दर्शन में श्रद्धा भी साथ में ली। दर्शन जैसे देखना है, वैसे दृष्टि श्रद्धामात्र है। जैसे दर्शन त्रिकाल दर्शनोपयोग में ध्रुव है। परमपारिणामिकस्वभावभाव (रूप है)। ऐसी कारणदृष्टि, श्रद्धा-दृष्टि त्रिकाल एक है, वह भी परमपारिणामिकभावस्वरूप है। वह **कारणदृष्टि तो...** यहाँ इतना रखना। **सदा पावनरूप...** कौन? आत्मा। **और औदयिकादि चार विभावस्वभाव परभावों को अगोचर...** अर्थात् चार पर्याय के आश्रय से गम्य नहीं। परमपारिणामिकभाव का आश्रय करने से गम्य है। आहाहा!

चार विभावस्वभाव से अगम्य... परभाव और अगम्य, दो भाषा है। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक - चार को विभावस्वभाव कहा। त्रिकाली परमस्वभाव की अपेक्षा से चार को परभाव कहा, तो इन परभाव के आश्रय से, स्वभाव का भान नहीं होता। आहाहा! परभाव से होता है परन्तु परभाव के आश्रय से नहीं होता। उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव से भान होता है, परन्तु उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव के आश्रय से भान नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? भगवानजीभाई! यह तो अगमगम्य की बातें हैं, भाई! जिनेश्वरदेव की बातें बहुत सूक्ष्म। आहाहा! पूरा अधिकार सूक्ष्म है।

कारणदृष्टि तो... इतनी बात। **सदा पावनरूप...** कौन? - आत्मा। **और औदयिकादि चार विभावस्वभाव परभावों को अगोचर...** अगोचर का अर्थ चार भाव के आश्रय से अगम्य, ऐसा लेना। **ऐसा सहज-परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है;...** आत्मा का। त्रिकाली आत्मा का स्वभाव कैसा है? स्वभाविक परमपारिणामिकभावरूप जिसका-आत्मा का स्वभाव है। आहाहा!

यहाँ ऐसा लेना है कि कारणदृष्टि ऐसे आत्मा की स्वरूपश्रद्धानमात्र त्रिकाल है। ऐसा लेना है न? समझ में आया? क्या कहा? कारणदृष्टि तो त्रिकाल पड़ी है, श्रद्धा-दृष्टि। त्रिकाल

में ध्रुव, ध्रुव कारणदृष्टि, त्रिकाल कारणदृष्टि। यह तो इतनी बात। किसके श्रद्धानमात्र है? कारणदृष्टि किसके श्रद्धानमात्र है? आत्मा के। वह आत्मा कैसा है? - कि चार विभावस्वभाव से अगोचर। आहाहा! एक पर्याय... एक पर्याय है न? केवलज्ञान क्षायिक भी पर्याय है। क्षायिक समकित हो, क्षायिक चारित्र हो या राग हो, वह सब पर्याय है और पर्याय के आश्रय से द्रव्य का भान नहीं होता, ऐसा सिद्ध करना है। द्रव्य के आश्रय से द्रव्य का भान होता है। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है। विचार करे तो पकड़ सके परन्तु धीरे-धीरे विचार भी करना चाहिए।

कारणदृष्टि तो... अर्थात् स्वरूप जो त्रिकाल भगवान आत्मा, उसमें एक स्वरूप श्रद्धानमात्र त्रिकाल दृष्टि पड़ी है। स्वरूपश्रद्धानमात्र दृष्टि त्रिकाल है। वह दृष्टि तो **सदा पावनरूप...** आत्मा। ध्रुवस्वरूप। **सदा पावनरूप...** आत्मा उदयभाव आदि विभावस्वभाव से अगम्य है। इन चार भाव की पर्याय के आश्रय से अगम्य है। समझ में आया? आहाहा! **ऐसा सहज-परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है;...** आत्मा का। जो सहज परमपारिणामिक त्रिकाल भावरूप जिसका स्वभाव है। **जो कारणसमयसार स्वरूप है;...** त्रिकाल आत्मा। वह कारणसमयसारस्वरूप आत्मा है। कारणपरमात्मा कहो, कारणसमयसारस्वरूप आत्मा कहो। त्रिकाल, हों! त्रिकाल। पर्यायरहित। समझ में आया? धीरे-धीरे मन्थन करना, विचार करना। अन्दर यह तो वस्तु भगवान अगम्य है। आहाहा! उसे गम्य करने की बात है। आहाहा!

स्वभाविक परमपारिणामिकभावरूप। यहाँ परमपारिणामिक अर्थात् क्या, यह भी सुना नहीं होगा। अन्दर स्वभावभाव जो त्रिकाल है, वह परमपारिणामिकभाव है। जिसे किसी कर्म के अभाव की अपेक्षा नहीं है। ऐसे परमपारिणामिकभावरूप जिसका-आत्मा का स्वभाव। **जो कारणसमयसार स्वरूप है;...** भगवान आत्मा। समझ में आया? **निरावरण जिसका स्वभाव है;...** ध्रुव भगवान आत्मा तो निरावरण स्वभावरूप है। उसमें आवरण-फावरण नहीं है। **जो निज स्वभावसत्तामात्र है;...** जो भगवान आत्मा निजस्वभावसत्ता। निज-अपने स्वभावसत्तामात्र आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

जो परमचैतन्यसामान्यस्वरूप है;... यह आत्मा परमचैतन्यसामान्य ध्रुवस्वरूप है। परमचैतन्य ध्रुवस्वरूप है। आहाहा! और **जो अकृत्रिम परम स्व-स्वरूप में अविचल-स्थितिमय शुद्धचारित्रस्वरूप है;...** त्रिकाल-त्रिकाल। अकृत्रिम-नहीं करायी हुई दशा। चारित्र त्रिकाल है, वह नहीं करायी हुई है। **परम स्व-स्वरूप में अविचल-स्थिति...** भगवान पूर्णानन्द

के नाथ में चारित्र की अविचल स्थिति। त्रिकाल, हों! त्रिकाल। पर्याय के चारित्र की बात नहीं। आहाहा! आचार्यों ने कैसा काम किया है! आहाहा! लोगों को समझना मुश्किल पड़े, ऐसी बातें की हैं। समझना सरल पड़े, इस प्रकार से की है। आहाहा!

कारणश्रद्धा तो त्रिकाली स्वभाव में कारणश्रद्धा नाम की शक्ति-गुण पड़ा है। वह कारणश्रद्धा किसकी श्रद्धा करती है? कि जो परमपारिणामिकभावस्वरूप और जो कारणसमयसारस्वरूप भगवान कारणपरमात्मा, **निरावरण जिसका-आत्मा का स्वभाव है; जो निज स्वभावसत्तामात्र है;...** अपने स्वभाव का अस्तित्व, वह जिसकी सत्ता है। आहाहा! **जो परमचैतन्य सामान्यस्वरूप है;...** भगवान आत्मा परमचैतन्य सामान्यस्वरूप है, परमसामान्य ध्रुवस्वरूप है, सामान्यस्वरूप है। **जो अकृत्रिम परम स्व-स्वरूप में अविचल-स्थितिमय शुद्धचारित्रस्वरूप है;...** त्रिकाली-त्रिकाल। नहीं कराये गये स्थिरतारूप चारित्रस्वरूप त्रिकाल है। आहाहा! **जो नित्य-शुद्ध-निरंजनज्ञानस्वरूप है,...** आहाहा! नित्य-शुद्ध और अंजनरहित - मैलरहित ज्ञानस्वरूप त्रिकाल आत्मा है।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ये सब भिन्न-भिन्न गुण कहे न? भेद नहीं। ये गुण भिन्न-भिन्न हैं या नहीं? परन्तु गुण का स्वरूप त्रिकाल एक है। आत्मा एक गुणमात्र है? अनन्त गुण हैं। तो अनन्त गुण...?

श्रोता : एक वाक्य में सब समाहित कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें तो बहुत समाहित कर दिया। आहाहा! आज का पैराग्राफ अलौकिक है। आहाहा!

परमचैतन्य सामान्यस्वरूप है; जो अकृत्रिम परम स्व-स्वरूप में अविचल-स्थितिमय शुद्धचारित्रस्वरूप है; जो नित्य-शुद्ध-निरंजनज्ञानस्वरूप है,... त्रिकाल है, आत्मा में। **और जो समस्त दुष्ट पापोंरूप वीर शत्रु सेना की ध्वजा के नाश का कारण है—ऐसे आत्मा...** ऐसा आत्मा। पहले से लिया। **सदा पावन रूप और औदयिकादि चार विभावस्वभाव परभावों को अगोचर ऐसा सहज-परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है; जो कारणसमयसार स्वरूप है; निरावरण जिसका स्वभाव है; जो निज स्वभावसत्तामात्र है; जो परमचैतन्य सामान्यस्वरूप है; जो अकृत्रिम परम स्व-स्वरूप में अविचल-स्थितिमय शुद्धचारित्रस्वरूप है; जो नित्य-शुद्ध-निरंजनज्ञानस्वरूप है, और जो समस्त दुष्ट पापोंरूप वीर शत्रु सेना की**

ध्वजा के नाश का कारण है.... अर्थात् उसमें पाप है ही नहीं और उसका आश्रय करता है, उसके पुण्य-पाप का नाश होता है। आहाहा!

अभी तो क्या कहना है? **ऐसे आत्मा के...** कैसे आत्मा के? - कि सदा पवित्र, चार भाव को अगम्य... आहाहा! क्षायिक समकित को भी अगम्य। क्षायिक समकित के आश्रय से अगम्य। समझ में आया? पर्याय का लक्ष्य करे और वह आत्मा ज्ञान में ज्ञात हो, ऐसी बात नहीं है। समझ में आया? धीरे-धीरे समझो। पूरा पैराग्राफ सूक्ष्म आया। लो, यह तुम्हारी उपस्थिति में आज ऊँची बात आ गयी। भाग्यशाली को बात कान में पड़ती है न! अलग बात है, भाई! आहाहा!

ऐसे आत्मा के... कैसे? सदा पावनरूप से लेकर यहाँ तक। आहाहा! **यथार्थ स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है...** कौन? ऐसे आत्मा के **(अर्थात्, कारणदृष्टि तो...)** पहले से शुरुआत की वह। भगवान आत्मा में त्रिकाल कारणश्रद्धा पड़ी है, वह **ऐसे आत्मा के यथार्थ स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है...** ऐसे आत्मा में कारणदृष्टि स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है। त्रिकाल स्वरूप की श्रद्धामात्र त्रिकाल है। समझ में आया? **(अर्थात्, कारणदृष्टि तो...)** लो, पहले से आया न? **(वास्तव में शुद्धात्मा की स्वरूपश्रद्धामात्र ही है)।** त्रिकाल, हों! सम्यग्दर्शन वर्तमान की बात नहीं। त्रिकाल ऐसे आत्मा की स्वरूपश्रद्धानमात्र शक्ति पड़ी है। आहाहा! समझ में आया? (गाथा) १३, फिर से, हमारे सुजानमलजी कहते हैं, फिर से लेना।

युवकों को तो झट जँचे, ऐसा कहते हैं। सब आत्मा है, सबको जँच जाए। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है। उसकी प्रतीति का माहात्म्य आवे तो सबको जँच जाए।

अधिकार क्या चलता है? दर्शनोपयोग का। ज्ञान का उपयोग ११-१२ गाथा में लिया। १३वीं गाथा में दर्शनोपयोग की व्याख्या चलती है। दर्शनोपयोग अर्थात् देखनेरूप भाव। देखनेरूपभाव, इस देखनेरूप भाव के दो प्रकार हैं। एक स्वभावदर्शनरूपभाव, एक वर्तमानपर्याय में कार्यस्वभाव उपयोगस्वभाव। समझ में आया? उसमें कारणस्वभाव उपयोग, यह चलता है। कारणस्वभाव उपयोग में कारणदृष्टि डाली। दृष्टि जो है उसमें कारण-उपयोग भी साथ में लेना और साथ में अन्दर कारणदृष्टि भी लेना। श्रद्धा अपेक्षा से कारणदृष्टि, उपयोग की अपेक्षा से त्रिकाल कारणदर्शनोपयोग। आहाहा! आचार्य गजब काम करते हैं न! आहाहा!

श्रोता : उपयोग त्रिकाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपयोग भी त्रिकाल है और कारणदृष्टि भी त्रिकाल है। सब गुण त्रिकाल है। अभी दर्शनोपयोग और कारणदृष्टि की बात चलती है। आहाहा!

पहले क्या कहा? देखो न! **जिस प्रकार ज्ञानोपयोग बहुविध भेदोंवाला है, उसी प्रकार दर्शनोपयोग भी वैसा है;...** दर्शनोपयोग की बात चलती है। उसमें **स्वभावदर्शनोपयोग और विभावदर्शनोपयोग। स्वभाव-दर्शनोपयोग भी दो प्रकार का है—त्रिकाल कारणस्वभाव-दर्शनोपयोग और...** वर्तमान पर्याय में **कार्यस्वभावदर्शनोपयोग।** जिसे यहाँ कार्यस्वभाव-दर्शनोपयोग कहा, उसे यहाँ परभाव कहा। परन्तु किस अपेक्षा से? कार्यदर्शन जो केवलदर्शनोपयोग जो भगवान को है, उसे स्वभावकार्यदर्शनोपयोग कहा। त्रिकाल में है, वह कारणस्वभावदर्शनोपयोग। कार्यरूप तो पर्याय में आया। उस कार्यदर्शनोपयोग को परभाव कहकर विभाव कहा है। किसकी अपेक्षा से? त्रिकाली परमस्वभाव की अपेक्षा से चार भाव को विभाव कहकर परभाव कहा गया है और चार भाव के आश्रय से त्रिकाली परमपारिणामिकभाव अनुभव में, ख्याल में नहीं आता। आहाहा! समझ में आया?

अब यहाँ **कारणदृष्टि तो...** देखो! सुजानमलजी! फिर से लेते हैं। चलता है कारणदर्शनोपयोग और कार्यदर्शनोपयोग, परन्तु उसमें आचार्य मुनिराज ने सम्यग्दर्शन के साथ श्रद्धा ले ली कि त्रिकाली कारणदृष्टि तो, त्रिकाली श्रद्धा दृष्टि जो त्रिकाल में है, वह **सदा पावनरूप...** कौन? आत्मा। है न? ऐसा आत्मा है न? अन्त में। **ऐसा आत्मा... सदा पावनरूप...** ऐसा आत्मा। **औदयिकादि चार विभावस्वभाव परभावों को अगोचर—ऐसा...** आत्मा। ....लालजी! आहाहा! **ऐसा सहज-परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है;...** आत्मा का। स्वभाविक परमपारिणामिकभावस्वरूप जिसका स्वभाव है, वह आत्मा का स्वभाव। **जो कारणसमयसार स्वरूप है;...** यह भगवान आत्मा। **निरावरण जिसका स्वभाव है;...** यह भगवान आत्मा। **जो निज स्वभावसत्तामात्र है;...** यह आत्मा। **परमचैतन्यसामान्यस्वरूप है;...** यह आत्मा। **जो अकृत्रिम परम स्व-स्वरूप में...** यह आत्मा। अकृत्रिम अर्थात् चारित्रपर्याय जो होती है, करायी हुई नयी रमणता वीतरागी। परन्तु यह तो अकृत्रिम; नहीं कराया हुआ चारित्र, त्रिकाल (चारित्र) आत्मा में है। आहाहा! ओहोहो! ऐसी बात।

जो अकृत्रिम परम स्व-स्वरूप में अविचल-स्थितिमय शुद्धचारित्रस्वरूप है;... त्रिकाल और **जो नित्य-शुद्ध-निरंजनज्ञानस्वरूप है,...** त्रिकाल **और जो समस्त दुष्ट पापोंरूप वीर शत्रु सेना की ध्वजा के नाश का कारण है...** आत्मा। अर्थात् कि आत्मा में है ही नहीं। पाप आदि आत्मा में नहीं है। **ऐसे आत्मा के...** कैसे आत्मा के? **सदा पावनरूप...** से लेकर ऐसे आत्मा के। आहाहा! **यथार्थ स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है...** कौन? कारणदृष्टि। भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु में कारणदृष्टि भी त्रिकाल शक्ति पड़ी है। वह कारणदृष्टि कैसी है? कि ऐसे आत्मा

के स्वरूपश्रद्धानमात्र कारणदृष्टि है। स्वरूपश्रद्धान त्रिकाल की बात है, हों! गुणरूप त्रिकाल। आत्मा में जैसे ज्ञानगुण है, आनन्दगुण है, दर्शनगुण है, प्रभुत्वगुण है, वीर्यगुण है, ऐसा एक कारणदृष्टि नाम का गुण अन्दर में है। कारणश्रद्धा। कारणदृष्टि कहो, कारणश्रद्धा कहो, वह त्रिकाली आत्मा में गुण है। ऐसे सर्वस्व गुण का धारक आत्मा, ऐसे आत्मा की अन्तर में स्वरूपश्रद्धानमात्र यह कारणदृष्टि है। आहाहा! लो, इतने में एक घण्टा हुआ। सूक्ष्म है न, भगवान! सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शन का विषय यह अलौकिक चीज़ है। लोगों को अभी सम्यग्दर्शन की खबर नहीं होती और उसके बिना चारित्र तथा व्रत और तप ले, वे सब बिना इकाई के शून्य हैं। आहाहा!

स्वरूपश्रद्धानमात्र। स्वरूपश्रद्धान का अर्थ नीचे देखो। **स्वरूपश्रद्धान=स्वरूप अपेक्षा से श्रद्धान।** नीचे नोट है? त्रिकाली जो कारणपरमात्मा जो यहाँ स्वरूप कहा, ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि स्वरूप, ऐसे स्वरूप के श्रद्धानमात्र। त्रिकाली, हों! **(जिस प्रकार कारणस्वभावज्ञान, अर्थात् सहजज्ञान स्वरूपप्रत्यक्ष है;...)** देखो! स्वरूपप्रत्यक्ष कहा था। ज्ञान अन्दर स्वरूपप्रत्यक्ष ध्रुव एक है। ध्रुव स्वरूपप्रत्यक्ष ज्ञान है। आहाहा! **(उसी प्रकार कारणस्वभावदृष्टि, अर्थात् सहजदर्शन स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है।)** दर्शनस्वरूप भी लेना और श्रद्धामात्र भी लेना, दोनों गुण इसमें लेना। बापू! यह तो सर्वज्ञ वीतराग तीन लोक का नाथ, जिनेश्वरदेव की वाणी है। यह कोई वार्ता नहीं है। आहाहा! इसे पहुँचने के लिए बहुत पुरुषार्थ चाहिए। क्रियाकाण्ड करने से यह वस्तु मिल नहीं जाती। समझ में आया? आहाहा! आया या नहीं? सुजानमलजी! फिर से लिया।

श्रोता : यह पूरा कहाँ हो ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा तो भगवान करे, तब पूरा हो। ये बालक बैठे हैं, देखो! कितने प्रेम से सुनते हैं। आत्मा है न, भगवान! आहाहा! देह-देवल में भगवान आनन्दमूर्ति विराजता है। आहाहा! यह पहले कहा न? आनन्द का विस्तार। केवलज्ञान का, हों! मोक्ष में आनन्द का विस्तार हो गया है। जो आनन्द शक्तिरूप था, उसका पर्याय में विस्तार हो गया। आहाहा! यह मुनिराज की टीका तो देखो! यह दिगम्बर सन्त... आहाहा! उनकी लाईन ही अलग। ऐसी लाईन श्वेताम्बर में बत्तीस (सूत्र) पढ़े, पैंतालीस पढ़े तो भी उसमें कहीं मिले, ऐसा नहीं है। मुझे बहिन ने पूछा था। इनके घर से बहिन है, वह कहे, महाराज! बत्तीस में से कौन सा सूत्र पढ़ना? खबर है? बत्तीस में एक भी सूत्र सत्य नहीं है... आये थे न, उस समय यह बात थी नहीं न! आहाहा! भाई! यह तो महासिद्धान्त है। दिगम्बर शास्त्र तो महा परम सत्य

सिद्धान्त है। इन्हें समझना और अन्तर्दृष्टि करना, वह तो अलौकिक चीज़ है। आहाहा! यहाँ तो यहाँ तक कहा...

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह बात नहीं। यहाँ तो मोक्षमार्ग की पर्याय...

श्रोता : पद्मप्रभमलधारिदेव ने यह बात निकाली कहाँ से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले लिखा नहीं ? देखो! पहले लिखा है। पढ़ो, गणधर से चली आ रही है।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह भले न हो। यहाँ है ? एक जगह सब बात नहीं आती। यह है, देखो! है न ? आया न ?

गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित और श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये... परम्परागत मुनि, दिगम्बर सन्त। यह परम्परा से आयी है। नयी बनानेवाले हम कौन ? ऐसा कहते हैं। है ? **इस परमागम के अर्थसमूह का कथन करने में हम मन्दबुद्धि तो कौन ?** मुनिराज कहते हैं हम मन्दबुद्धि तो कौन ? गणधर और आचार्यों की परम्परा से, भगवान की चली आयी टीका है। यह चन्दुभाई ने पूछा। आहाहा!

यह कारणदृष्टि की व्याख्या हुई। कारणदर्शनोपयोग की व्याख्या भी ऐसी ही है। जो त्रिकाली आत्मा कहा, उसे कारण-उपयोग अन्दर देखता है, उसका नाम त्रिकाली कारण -उपयोग और यह आत्मा कहा, उसकी श्रद्धामात्र, वह कारणदृष्टि त्रिकाल। आहाहा! समझ में आया ? यहाँ है न ? नीचे विभाव की बात की न ? परभाव कहा है। है ? नीचे एक नोट है। **एक सहज परमपारिणामिकभाव को ही सदा-पावनरूप निजस्वभाव कहा है। चार विभावभावों का आश्रय करने से परमपारिणामिकभाव का आश्रय नहीं होता।** आहाहा! पर्याय का आश्रय करने से त्रिकाली का आश्रय नहीं होता। आहाहा!

परमपारिणामिकभाव का आश्रय करने से ही सम्यक्त्व से लेकर.... देखो! सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। परमस्वभाव का आश्रय करने से समकित प्रगट होता है। आहाहा! है ? **परमपारिणामिकभाव का आश्रय करने से ही सम्यक्त्व से लेकर....** सम्यक्त्व से लेकर केवलज्ञान की उत्पत्ति त्रिकाली परमस्वभाव के आश्रय से होती है। **दशाएँ प्राप्त होती हैं।** आहाहा! लो, पूरा हो गया, एक घण्टा हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

११ श्री नियमसार, गाथा-१३-१४, श्लोक- २३ प्रवचन - १५८
दिनांक - २१-०१-१९७६

नियमसार, जीव अधिकार। १३वीं गाथा चलती है। दर्शनोपयोग का स्वरूप है। जैसे ज्ञानोपयोग दो प्रकार का है : एक कारणस्वभाव उपयोग और कार्यस्वभाव उपयोग। ज्ञान में कारणस्वभाव उपयोग त्रिकाल है और कार्यस्वभाव उपयोग, वह वर्तमान पर्याय है। समझ में आया? ऐसे विभाव ज्ञानोपयोग की बात चली न? चार ज्ञान हैं, वे विभावज्ञान हैं।

उसी प्रकार यहाँ दर्शन की बात है। दर्शन भी दो प्रकार के हैं : एक स्वभावदर्शनोपयोग, एक विभावदर्शनोपयोग। स्वभावदर्शनोपयोग के भी दो प्रकार हैं। आहाहा! त्रिकाली भगवान दर्शनस्वभाव त्रिकाल, वह स्वभाव कारण उपयोग। विभावदर्शनोपयोग यह चक्षु-अचक्षु आदि। तथा कार्यस्वभाव उपयोग, यह केवलदर्शन। केवलज्ञानी को केवलदर्शन प्रगट होता है, वह कार्यस्वभाव दर्शनोपयोग है। समझ में आया?

यहाँ कारणस्वभाव उपयोग में दृष्टि ली है। आत्मा में कारणदृष्टि अर्थात् सम्यग्दृष्टि, कारणश्रद्धा त्रिकाल है। यहाँ दर्शनोपयोग के स्थान में कारणदृष्टि त्रिकाल ली है और अब इस कार्यदृष्टि में दर्शनोपयोग लेंगे। आहाहा! यह सब भेद जानकर भी त्रिकाली ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग अथवा त्रिकाली कारणदृष्टि का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन से लेकर केवलज्ञान उत्पन्न होता है। यह क्या कहा?

आत्मा में ज्ञानस्वभाव कारण उपयोग त्रिकाल पड़ा है। वैसे दर्शन कारणस्वभाव उपयोग भी त्रिकाल है। ऐसे कारणदृष्टि आत्मा की स्वरूप श्रद्धानमात्र त्रिकाल पड़ी है, उसे कारणदृष्टि कहते हैं। समझ में आया? वह कारणस्वरूपदृष्टि, वह त्रिकाली आत्मा की स्वरूप -श्रद्धानमात्र ध्रुव में पड़ी है। ऐसा उपदेश क्या होगा यह? लोगों को तत्त्व की, मूल चीज़ की खबर नहीं।

भगवान एक समय में पूर्णानन्द प्रभु। कारणज्ञानोपयोग, कारणदर्शनोपयोग, कारणदृष्टि सम्यक्श्रद्धा। इन सहित अनन्त शक्ति सम्पन्न भगवान आत्मा है। उस आत्मा का आश्रय करने से, ऐसा कारणज्ञान, कारणदर्शन, कारण सम्यग्दृष्टि। दृष्टि आदि। कारण आनन्दस्वरूप, कारण

यथाख्यातचारित्रस्वरूप। त्रिकाल, हों! त्रिकाल। ऐसे आत्मा का आश्रय करने से, उसका अवलम्बन करने से सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति से लेकर केवलज्ञान, केवलदर्शन की उत्पत्ति होती है। आहाहा! समझ में आया?

परमपारिणामिकस्वभावभाव नित्यानन्द प्रभु एक समय की पर्याय से रहित, राग-द्वेष से तो रहित है ही, परन्तु एक समय की प्रगट व्यक्त अवस्था / पर्याय है, उससे रहित है। आहाहा! त्रिकाल कारण भगवान, कारणपरमात्मा कहो, कारणजीव कहो और उस कारणपरमात्मा में विद्यमान कारणदर्शनोपयोग कहो, उपयोग-कारणज्ञानोपयोग कहो। उसमें विद्यमान कारण सम्यक् श्रद्धारूपी त्रिकाल की स्वरूपश्रद्धानमात्र दृष्टि कहो, यह सब कारणरूप है। आहाहा! ऐसा उपदेश! जैनदर्शन। परमसत्य वस्तु बहुत अलौकिक है। आहाहा!

कहते हैं कि कारणदृष्टि की व्याख्या तो हो गयी। अब दूसरी कार्यदृष्टि। अब कार्यदृष्टि में दर्शनोपयोग लेते हैं। कारणदृष्टि में त्रिकाली आत्मा का स्वरूपश्रद्धानमात्र कारण लिया था। समझ में आया? कारणदृष्टि में त्रिकाली भगवान अनन्त गुणसम्पन्न प्रभु की स्वरूपश्रद्धान कारणदृष्टि त्रिकाल को लिया था। चलती है दर्शनोपयोग की व्याख्या, तो उसमें दृष्टि को डाला। समझ में आया? आहाहा!

जैसे त्रिकाली ज्ञानोपयोगस्वरूप है, तो उसमें से कार्यज्ञानोपयोग उत्पन्न होगा। केवलज्ञानरूपी कार्य, वह त्रिकाली ज्ञानोपयोग में से उत्पन्न होगा, त्रिकाली दर्शनोपयोग में से केवलदर्शन की पर्याय कार्य-केवलदर्शन उत्पन्न होगा। त्रिकाली कारणदृष्टि में से सम्यग्दृष्टि की उत्पत्ति होगी। वीतराग का तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म है। लोगों को बाहर की प्रवृत्ति के कारण यह तत्त्व खो गया है। जो पूरा तत्त्व परमानन्दमूर्ति प्रभु! जिसमें ऐसे अनन्त गुण कारणरूप अन्दर पड़े हैं, तो उस पूरे आत्मा को कारणपरमात्मा कहने में आता है।

यहाँ चलती है दर्शनोपयोग की व्याख्या, परन्तु इसमें कारणदृष्टि भी ली है। देखना है न, तो उसमें श्रद्धा भी ली है। कारणदृष्टि, वह सम्यग्दर्शन-पर्याय उत्पन्न होती है, उसका कारण (है)। आहाहा! समझ में आया? कार्यदृष्टि में दर्शनोपयोग लेते हैं। समझ में आया?

दूसरी, कार्यदृष्टि... भाई! थोड़ा अभ्यास होवे तो (समझ में आये।) यह तो अलौकिक बात है। बाकी तो व्रत, तप, भक्ति और पूजा तो अनन्त-अनन्त बार किये परन्तु वास्तविक कारणपरमात्मा-आत्मा कैसा है? वह इसकी दृष्टि में, लक्ष्य में आया ही नहीं। समझ में आया? एक समय की प्रगट पर्याय है, उसे लक्ष्य में लेकर उसमें रमणता की परन्तु पर्याय एक समय की है, उसके पीछे... पीछे अर्थात् पर्याय प्रगट है और वस्तु अप्रगट है। पर्याय की

अपेक्षा से (अप्रगट है)। वस्तु की अपेक्षा से वस्तु अन्दर प्रगट है, सत्ता। उसकी दृष्टि कभी नहीं की। जैनसाधु अनन्त बार हुआ, पंच महाव्रत पालन किये, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये। समझ में आया? परन्तु वह वस्तु अन्दर परमात्मस्वरूप, जिसमें सिद्धपरमात्म दशायें, जिसमें अनन्तानन्त शक्तिरूप से पड़ी हैं, ऐसा परमात्मस्वरूप कारणपरमात्मा, परमपारिणामिकभावस्वरूप की दृष्टि नहीं की। आहाहा! इसके बिना सब व्यर्थ गया। समझ में आया?

'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो फेर पीछो पटक्यो।' यह हम दुकान पर पढ़ते थे, उसमें आया। यह तो ६५-६६ के (वर्ष) की बात है। संवत् १९६५-६६। श्वेताम्बर की चार सज्झायमाला है। एक-एक सज्झायमाला में सज्झाय नहीं होती? एक-एक में २५०-३०० सज्झाय। ऐसी चार सज्झायमाला है। हमारे तो पिताजी की घर की दुकान थी न! तब चारों पुस्तकें मँगायी थी। दुकान पर चारों पढ़ी थी। उसमें यह एक बोल आया था। 'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो फेर पीछो पटक्यो।' यह क्या? कभी सुना नहीं था। छोटी उम्र थी, १८-१९ वर्ष की उम्र थी, तो वहाँ ऐसा कहते हैं कि द्रव्यसंयम, यह इन्द्रियदमन, सब जीवों को नहीं मारना, झूठ नहीं बोलना, ऐसा द्रव्यसंयम अनन्त बार लिया। 'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो...' अपने छहढाला में यह आया है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार....' यह भाषा अपने दिगम्बर की है, वह भाषा श्वेताम्बर की है। समझ में आया?

आत्मध्यान और सम्यग्दर्शन, वह क्या चीज़ है, इसकी खबर नहीं और सम्यग्दर्शन का विषय परमस्वभावभाव अकेला शुद्ध चैतन्यकन्द, उस चीज़ की दृष्टि कभी नहीं की और उसके बिना द्रव्यसंयम लिया। द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक में ऊपर गया, वापस नीचे गिरा। नीचे मनुष्य में आया, वहाँ से पशु में, वहाँ से निगोद में जाएगा। आहाहा! समझ में आया? दो बातें वहाँ उस समय गृहस्थाश्रम में, दुकान पर दो बातें आयी थीं। एक द्रव्यसंयम से और दूसरी 'केवली आगल रहि गयो कोरो' यह तो उस समय कहा था। 'केवली आगल रहि गयो कोरो' ऐसी सज्झाय है। सर्वज्ञ की सभा में भी अनन्त बार गया। मगनभाई! केवली आगल, यह गुजराती भाषा है। कोरो अर्थात् रूखा रह गया। केवली की बात सुनी अवश्य परन्तु चीज़ क्या है, वह दृष्टि में नहीं आयी। आहाहा! समवसरण में अनन्त बार गया, भगवान की वाणी सुनी परन्तु केवली आगल रह गयो कोरो। कोरा को हिन्दी में क्या कहते हैं? रूखा। अन्दर आत्मा आनन्दकन्द है, उसकी दृष्टि नहीं की। आहाहा! राग की मन्दता की क्रिया की और फिर चार गति में भटका।

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा में एक कारणदर्शन, देखना-प्रतिभासामान्य ऐसी एक त्रिकाल शक्ति अन्दर आत्मा में पड़ी है। उस त्रिकाल दर्शन को कारणदर्शनोपयोग कहते हैं और उसके आश्रय से केवलदर्शन जो केवलज्ञानी को होता है, उसे यहाँ कार्यदर्शनोपयोग कहा जाता है। आहाहा! उसे यहाँ कार्यदृष्टि ली है। वह कारणदृष्टि तीन प्रकार की है परन्तु यहाँ कहना है दर्शनोपयोग। समझ में आया?

कार्यदृष्टि... अर्थात् आत्मा में केवलदर्शन, जो केवलज्ञान के साथ उत्पन्न होता है, उस कारणदर्शनोपयोग को यहाँ कार्यदृष्टि कहकर वर्णन किया है। वह **कार्यदृष्टि...** अथवा कार्यदर्शनोपयोग। **दर्शनावरणीय-ज्ञानावरणीयादि घातिकर्मों के क्षय से उत्पन्न होती है।** सर्वज्ञ परमात्मा को केवलदर्शन चार घातिकर्म के नाश से उत्पन्न होता है। घातिकर्म निमित्त से कथन है, परन्तु अपनी अपूर्ण पर्याय का नाश करके पूर्ण पर्याय प्रगट की तो कर्म का नाश उसके कारण से हुआ। **इस क्षायिक जीव को,...** जिसे दर्शनोपयोग। दर्शन त्रिकाली, कारण - दर्शनोपयोग त्रिकाली शक्ति स्वभाव का आश्रय करके जिसे कार्यदर्शनोपयोग केवलज्ञान के साथ में प्रगट हुआ, वह **इस क्षायिक जीव को,...** क्षायिक जीव। क्षायिक, वह पर्याय है, जीव वह त्रिकाल है। आहाहा!

इस क्षायिक जीव को,... शब्द है? भाई! यह तो अध्यात्मवाद है। सन्तों के पेट की-गर्भ की बात है। **इस क्षायिक जीव को,...** लो, क्षायिक जीव कहा। परमपारिणामिक जीव को, वह त्रिकाल। परमपारिणामिक जीव को, वह त्रिकाल और क्षायिक जीव, इस क्षायिक वर्तमान पर्याय जीव को। द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान रहा नहीं। सब ऐसे ज्यों-त्यों ढसरडा करके ढसरडा अर्थात्? भान बिना की भक्ति, पूजा, दया, दान, तप करके चढ़ा दिया। आहाहा! करते-करते भान होगा। लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आता है, ऐसा है। राग करते-करते वीतरागता उत्पन्न होती है?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का नाश हो जाता है। राग का नाश करे, तब आत्मा की उत्पत्ति होती है। आहाहा! वीतरागमार्ग है, भाई!

सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं कि सर्वज्ञपना प्रगट हुआ, उसे कार्यज्ञानोपयोग कहते हैं। सर्वज्ञ पर्याय जो प्रगट हुई, उसे कार्यज्ञानोपयोग। वर्तमान पर्याय को कार्य कहकर कार्य-उपयोग कहने में आया है और त्रिकाली आत्मा में जो कारणज्ञानोपयोग पड़ा है, वह ध्रुव है। आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ कार्यदृष्टि, कार्य उपयोग। आहाहा! **इस क्षायिक जीव को, जिसने सकलविमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान द्वारा तीन भुवन को जाना है;...** आहाहा! केवलज्ञान में भगवान परमात्मा ने तीन काल, तीन लोक को प्रत्यक्ष जाना। समझ में आया? **क्षायिक जीव को, जिसने सकलविमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान द्वारा तीन भुवन को...** तीन भुवन अर्थात् तीन लोक और लोकालोक। तीन भुवन तो ऊर्ध्व, मध्य और अधो तीन आते हैं परन्तु उसमें अलोक भी आ गया। लोक-अलोक **तीन भुवन को जाना है;...** भगवान केवलज्ञानी ने। आहाहा!

निज आत्मा से उत्पन्न होनेवाले परमवीतराग सुखामृत का जो समुद्र है;... आहाहा! कहते हैं कि केवलज्ञान में तीन काल देखे, उसके साथ-केवलज्ञान के साथ परम वीतराग सुखामृत का वह समुद्र है, पर्याय। आहाहा! जैसे केवलज्ञान तीन काल-तीन लोक को जानता है, ऐसी पर्याय समुद्र जैसी महान है, वैसे केवलज्ञानी भगवान तो **आत्मा से उत्पन्न होनेवाले परमवीतराग सुखामृत...** परम वीतरागी सुखामृत का पूर्ण स्वाद भगवान को उत्पन्न हुआ है। आहाहा! समझ में आया? **निज आत्मा से उत्पन्न होनेवाले...** भाषा देखो! पर आत्मा से नहीं, राग से नहीं, पर्याय से नहीं। निज आत्मा। आहाहा! **निज आत्मा से उत्पन्न होनेवाले...** पर्याय, **परमवीतराग सुखामृत का जो समुद्र है;...** आहाहा! केवलज्ञान के साथ परम सुखामृत वीतराग अमृत का समुद्र प्रगट हुआ है। समझ में आया?

यथाख्यात नामक कार्यशुद्धचारित्रस्वरूप है;... भगवान ने केवलज्ञान में ऐसा देखा और वीतराग सुखामृत जैसा समुद्र प्रगट हुआ और **यथाख्यात नामक कार्यशुद्धचारित्रस्वरूप है;...** आहाहा! पर्याय में यथाख्यात (अर्थात्) जैसे अन्दर चारित्रस्वरूप में शुद्ध पूर्ण था, वैसा प्रगट कार्यशुद्धचारित्रस्वरूप प्रगट हुआ। आहाहा! **जो सादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रिय-स्वभाववाले...** भगवान को केवलज्ञान के साथ वीतराग सुखामृत समुद्र प्रगट हुआ और यथाख्यात् कार्यशुद्धचारित्र पूर्ण वीतरागता प्रगट हुई और **जो सादि-अनन्त...** केवलज्ञानादि उत्पन्न हुए, वे सादि हुए, सादि अर्थात् आदि, आदि अर्थात् शुरुआत। केवलज्ञान, केवलदर्शन वीतराग सुखामृत आदि यह उत्पन्न हुए अर्थात् आदि हुई। तुम्हारे शादी, विवाह को कहते हैं। यहाँ तो स+आदि, आदि सहित, नयी दशा प्रगट हुई। केवलज्ञान अनादि का नहीं था, नयी दशा उत्पन्न हुई। केवलज्ञान, सुखामृतसमुद्रपर्याय और यथाख्यातचारित्र ये सब सादि-अनन्त। आदि-उत्पन्न हुई, परन्तु अब अनन्त काल रहेगी। !

अमूर्त... आहाहा! यह पर्याय तो अमूर्त है। जिसमें वर्ण, गन्ध, रस स्पर्श नहीं है।

अतीन्द्रियस्वभाववाले... आहाहा! यह अतीन्द्रियस्वभाव प्रगट हुआ, अतीन्द्रिय स्वभाव। **शुद्धसद्भूत-व्यवहारनयात्मक है,...** भाषा देखो! केवलज्ञानी परमात्मा शुद्ध सद्भूतव्यवहारनय स्वरूप है। व्यवहारनय का विषय, ऐसा नहीं लिया। '**भूयत्थ देसिदा**' कहा न? ११वीं गाथा। भूतार्थ, वह शुद्धनय है। भूतार्थ, वह शुद्धनय है। त्रिकाली सत्यार्थ प्रभु भगवान, वह शुद्धनय है। वैसे ही यह भगवान जो आत्मा केवलज्ञानी है, वह शुद्धसद्भूतव्यवहारनयात्मक है। समझ में आया? आहाहा!

जैसे त्रिकाली भूतार्थ भगवान पूर्णानन्दस्वरूप सत्य त्रिकाल है, उसे ही शुद्धनय कहा। ऐसे वर्तमान प्रगट पर्यायवाले जीव को शुद्ध सद्भूतव्यवहारनय कहा। आहाहा! समझ में आया? जैसे त्रिकाली... (समयसार की) ११वीं गाथा में आया न? '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' त्रिकाली भगवान सत्यार्थ प्रभु, कारणपरमात्मा, कारणजीव, परमस्वभावभावस्वरूप को यहाँ शुद्धनय कहा। नय तो ज्ञान का भाग है और उसका विषय भूतार्थ है परन्तु विषय और नय के दो भेद न करके इस त्रिकाली स्वरूप को ही शुद्धनय कहा। ऐसे केवलज्ञानपर्याय, केवलज्ञान, यथाख्यातचारित्र आदि उत्पन्न हुए, वह व्यवहारनय का विषय है। शुद्धसद्भूतव्यवहारनय का विषय, ऐसा नहीं कहकर (ऐसा कहा,) शुद्धसद्भूतव्यवहारनयस्वरूप ही है। आहाहा! समझ में आया? नीचे लिखा है। देखो, दो का (सांकेतिक अंक) है न?

तीर्थंकरपरमदेव शुद्धसद्भूतव्यवहारनयस्वरूप हैं,... नय का विषय न कहकर नयस्वरूप ही है, ऐसा कहा। आहाहा! अब यह तो थोड़ा ज्ञान होवे तो (समझ में आये)। यह कोई खेल नहीं है। यह तो तीर्थंकर के गर्भ में - अन्दर ज्ञान में जाना, ऐसी चीज़ है। आहाहा! नीचे है न? **तीर्थंकरपरमदेव शुद्धसद्भूतव्यवहारनयस्वरूप हैं,...** देखो! शुद्ध क्यों कहा? कि पवित्र हैं। सद्भूत क्यों कहा? क्योंकि उनकी पर्याय है। व्यवहार क्यों कहा? क्योंकि वह पर्याय, द्रव्य का भेद है। क्या कहते हैं? **तीर्थंकरपरमदेव शुद्धसद्भूतव्यवहारनयस्वरूप हैं, कि जो शुद्धसद्भूतव्यवहारनय...** यह शुद्धसद्भूतव्यवहारनय क्या है? कि सादि-अनन्त है। यह शुद्धसद्भूतव्यवहारनय केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हुए, उनकी आदि हुई। भविष्य में अन्त नहीं है। **अमूर्तिक और अतीन्द्रियस्वभाववाला है।** आहाहा! समझ में आया?

तीर्थंकरपरमदेव शुद्धसद्भूतव्यवहारनयस्वरूप हैं, कि जो शुद्धसद्भूतव्यवहारनय सादि-अनन्त, अमूर्तिक और अतीन्द्रियस्वभाववाला है। आहाहा! ऐसा क्या परन्तु यह सब? भाई! वस्तु का स्वरूप इस प्रकार से है। जिस प्रकार से है, उस प्रकार से जाने तो उसे यथार्थता होगी। आहाहा! वह तो सीधा-सट्ट था - दया पालना, व्रत करना, उपवास करना,

जाओ।

मुमुक्षु : आपने कहा न, वह सब खोटा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटा। खोटा वह कैसा खोटा? इकाई रहित शून्य। (हिन्दी में) क्या कहते हैं? आहाहा! एक रहित शून्य।

आहाहा! भगवान अन्दर पूर्णानन्दस्वरूप कारणपरमात्मा के आश्रय से प्रगट हुआ केवलज्ञान, केवलदर्शन, यथाख्यातचारित्र, वह शुद्धसद्भूतव्यवहारनयस्वरूप है। जैसे त्रिकाली वस्तु शुद्धनयस्वरूप है, वैसे यह पर्याय शुद्धसद्भूतव्यवहारनयस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? **और जो त्रिलोक के भव्यजनों को प्रत्यक्ष वन्दनायोग्य है....** सिद्धभगवान तो ऊपर हैं। प्रत्यक्ष वन्दनयोग्य नहीं रहे। वे तो परोक्ष वन्दनयोग्य रहे और भगवान जो समवसरण में विराजते हैं, तीर्थंकर परमदेव... है? आहाहा! **त्रिलोक के भव्यजनों को...** आहाहा! त्रिलोक के भव्यजन। सब भव्यजन? परन्तु जो योग्य हैं, उन त्रिलोक के जनों को।

त्रिलोक के भव्यजनों को प्रत्यक्ष वन्दनायोग्य है.... तीर्थंकर परमदेव समवसरण में विराजते हैं। आहाहा! यह तीर्थंकर लिये हैं। समझ में आया? चौबीस तीर्थंकर तो मोक्ष पधारे हैं, परन्तु जब समवसरण में थे, उस प्रकार से लक्ष्य में लेकर बात की है। अथवा भगवान महाविदेह में विराजते हैं, समवसरण में साक्षात् विराजते हैं। वे तीर्थंकर परमदेव... आहाहा! **त्रिलोक के भव्यजनों को...** उत्तम-उत्तम जीवों को वन्दनायोग्य है। इसमें सब आ गया। वहाँ सब प्राणी कहाँ भगवान को वन्दन करते हैं! परन्तु मुख्य-मुख्य महापुरुष, इन्द्र, गणधर, नाग, बाघ, सिंह भगवान को पूजते हैं। तीन लोक के भव्य जीवों को प्रत्यक्ष वन्दनायोग्य है। साक्षात् भगवान समवसरण में विराजते हैं, वे प्रत्यक्ष वन्दनायोग्य हैं। आहाहा!

ऐसे तीर्थंकरपरमदेव को... ऐसे तीर्थंकरपरमदेव को **केवलज्ञान की भाँति,...** केवलज्ञान की भाँति। **यह (कार्यदृष्टि) भी...** ली है। कार्यदृष्टि भी कारणदर्शनोपयोग। **युगपत् लोकालोक में व्याप्त होनेवाली है।** भाषा देखो! लोकालोक में व्यापनेवाली है अर्थात् लोकालोक को देखनेवाली है। समझ में आया? लोकालोक में दर्शनोपयोग नहीं जाता। वे वेदान्त सर्व व्यापक कहते हैं, ऐसा नहीं, परन्तु लोकालोक को दर्शनोपयोग कार्य भाव लोकालोक को देखता है। आहाहा! अरे! आत्मा की क्या शक्ति और आत्मा की पर्याय प्रगट महिमा कैसी होती है, यह कभी सुना नहीं, समझा नहीं।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : पात्र होवे तो मिले बिना रहे नहीं। भगवान विराजते हैं, वहाँ क्यों नहीं गया ? साक्षात् भगवान विराजते हैं, वाणी खिरती है, समवसरण में हैं, इन्द्र गणधर जाते हैं। समझ में आया ? आहाहा!

केवलज्ञान की भाँति,... भगवान तीर्थंकर को जैसा केवलज्ञान है, वैसा केवलदर्शन **युगपत् लोकालोक में व्याप्त होनेवाली है।** युगपत् लोकालोक को जाननेवाला। बस इतना, देखनेवाला। केवलज्ञान लोकालोक को जाननेवाला है, यह पहले आ गया है न ? केवलज्ञान द्वारा तीन भुवन को जाना है। यह आ गया है। इस प्रकार दर्शन से युगपत् लोकालोक को जाननेवाले (देखनेवाले) हैं। आहाहा!

इस प्रकार कार्यरूप और कारणरूप से... लो, यह क्या कहा ? दर्शनोपयोग कार्यरूप जो केवलज्ञान के साथ दर्शन है और कारणरूप त्रिकाल दर्शनोपयोग है वह। यह **स्वभावदर्शनोपयोग कहा।** दोनों को स्वभावदर्शनोपयोग कहा। एक केवलदर्शन कार्यरूप भी स्वभावदर्शनोपयोग और त्रिकाल में कारणदर्शनोपयोग वह भी स्वभावदर्शनोपयोग। आहाहा! समझ में आया ? **इस प्रकार कार्यरूप...** अर्थात् पर्यायरूप। **और कारणरूप...** द्रव्यरूप। **स्वभावदर्शनोपयोग कहा।** आहाहा! स्वभावदर्शनोपयोग के दो भेद कहकर दो प्रकार का वर्णन किया। **विभावदर्शनोपयोग अगले सूत्र में (१४वीं गाथा में)...** आयेंगे। **वहीं दर्शाया जायेगा।** १४वीं गाथा में दर्शायेंगे।

अब, १३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं—

दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मकमेकमेव चैतन्यसामान्यनिजात्मतत्त्वम् ।
मुक्ति-स्पृहाणा-मयनं तदुच्चैरेतेन मार्गेण विना न मोक्षः ।।२३।।

दर्शन, ज्ञान और चारित्रस्वरूप। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द की प्रतीति, पूर्णानन्द का ज्ञान और पूर्णानन्द में रमणता अथवा पूर्णानन्दस्वरूप भगवान के दर्शन-देखना, जानना और रमणता, ऐसे तीन मोक्षमार्ग हैं। आहाहा! **(दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप से परिणमित), ऐसा जो एक ही चैतन्यसामान्यरूप...** आहाहा! सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्ररूप से परिणमित पर्याय। **ऐसा जो एक ही चैतन्यसामान्यरूप निज आत्मतत्त्व,...** आहाहा! ऐसा एक ही चैतन्यसामान्य त्रिकाल **निज आत्मतत्त्व, वह मोक्षेच्छुओं को (मोक्ष का) प्रसिद्ध मार्ग है;...** वह मोक्ष के अभिलाषी को प्रसिद्ध मार्ग है।

चैतन्यसामान्यरूप निज आत्मतत्त्व,... यह दर्शन-ज्ञानरूप जो परिणमित हुआ, **वह मोक्षेच्छुओं को (मोक्ष का) प्रसिद्ध मार्ग है;...** मोक्ष के अभिलाषी का यह प्रसिद्ध प्रगट मार्ग है। आहाहा! लो, इसमें विकल्प और व्रत-तप कुछ नहीं लिया। व्रतादि तो विकल्प है, पुण्य है, शुभ है; मोक्षमार्ग नहीं है। समझ में आया?

श्रोता : परन्तु दूसरे शास्त्र में कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ तो निमित्त का कथन ज्ञान कराने के लिए (किया है)। उसका ज्ञान करने के लिए (कहा है), है नहीं। मोक्षमार्ग तो यह एक ही है, दो मोक्षमार्ग नहीं हैं। दो का कथन है परन्तु दो मार्ग नहीं हैं। दो का निरूपण है। टोडरमलजी ने सातवें अध्याय में बहुत स्पष्टीकरण किया है, बहुत स्पष्टीकरण किया है। सातवें अध्याय में निश्चय-व्यवहार की व्याख्या की है। बहुत... ओहोहो! पहले हमने (संवत्) १९८२ के साल में देखा था। मोक्षमार्गप्रकाशक १९८२ के वर्ष में। कितने वर्ष हुए? ५० वर्ष हुए।

पहले जब देखा था। राजकोट में खाना, पीना रुचे नहीं, व्याख्यान में रुचे नहीं। इतना रस अन्दर से आता था। मोक्षमार्गप्रकाशक कमरे पर पढ़ता था। फिर १९८४ के वर्ष में... यहाँ 'बगसरा' है। उसमें यह सातवाँ अध्याय लिख लिया। हम पुस्तक साथ में नहीं रखते थे। पूरा लिख लिया। १९८४ के वर्ष में। पूरा सातवाँ अध्याय लिख लिया। हमारे जीवणलालजी थे, उनसे कहा। ऐसा सातवाँ अध्याय है। मोक्षमार्गप्रकाशक सातवाँ अधिकार। १९८४ का वर्ष, ४० और ८ = ४८ वर्ष हुए। यह तो बहुत वर्ष पहले से चलता है न, भाई! यह कहीं आजकल की बात नहीं है। आहाहा!

कहते हैं... इसमें क्या कहा? उसमें मोक्षमार्ग एक ही कहा है, दो नहीं। दो मोक्षमार्ग मानते हैं, वे भ्रम में पड़े हैं, ऐसा कहा। तब यहाँ रतनचन्दजी कहते हैं, रतनचन्दजी है न? मुख्तार। दो मोक्षमार्ग न माने, वे भ्रम में पड़े हैं, ऐसा कहते हैं। भाई! यह तो स्वतन्त्र है न? सातवें अधिकार में। समझ में आया? सेठ! यथार्थ निरूपण, वह निश्चय, उपचार निरूपण, वह व्यवहार। निरूपण की अपेक्षा से दो प्रकार जानना परन्तु एक निश्चयमोक्षमार्ग है और एक व्यवहारमोक्षमार्ग है, दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। सातवें अध्ययन में। समझ में आया? और वह निश्चय-व्यवहार दोनों को उपादेय मानता है, वह भी भ्रम है। क्योंकि निश्चय-व्यवहार का स्वरूप परस्पर विरुद्धतासहित है। आहाहा! ११वीं गाथा में कहा न? व्यवहार अभूतार्थ है। सत्स्वरूप का निरूपण नहीं करता परन्तु अपेक्षा से उपचार से निरूपण करता है। निश्चय शुद्ध है और भूतार्थ है, क्योंकि वह वस्तु का स्वरूप जैसा है, वैसा कहता है। दोनों

का स्वरूप तो विरुद्धतासहित है, तो दोनों उपादेय किस प्रकार हो सकते हैं ? बहुत सरस बात ली है। है न ? सातवें अधिकार में। आहाहा ! टोडरमलजी ने भी बहुत... मोक्षमार्ग बनाकर सामान्य में रहस्य खोलकर बताया है। टोडरमलजी।

दृशि-ज्ञप्ति-वृत्तिस्वरूप (दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप से परिणमित), ऐसा जो एक ही चैतन्यसामान्यरूप निज आत्मतत्त्व, वह मोक्षेच्छुओं को (मोक्ष का) प्रसिद्ध मार्ग है;... आत्मतत्त्व में एकाग्रता, वह प्रसिद्ध मार्ग है। आहाहा ! व्यवहार विकल्प है, वह मार्ग नहीं। आहाहा ! भगवान पूर्णानन्दस्वरूप ज्ञान-दर्शन-आनन्द के कारणस्वरूप पूर्ण स्वभाव से भरपूर है। वह तत्त्व परमगति को प्राप्त करनेवाले जीव को परमपारिणामिकभाव का स्मरण करना। आता है ? नियमसार में आगे है। पंचमगति-मोक्षगति की प्राप्ति के इच्छुक पुरुष को परमपारिणामिकभावस्वभाव का स्मरण करना, उसे याद करके श्रद्धा-ज्ञान करना। आहाहा ! क्या परमपारिणामिकभाव... मूल बात बहुत गुप्त रह गयी है। आहाहा !

इस मार्ग बिना मोक्ष नहीं है। है ? निज आत्मतत्त्व की प्रतीति, ज्ञान और रमणता के अतिरिक्त दूसरा मोक्षमार्ग नहीं है। समझ में आया ? है न ? पाठ में है न ? **ऐतेन मार्गेण विना न मोक्षः** संस्कृत में कलश है। आहाहा ! चैतन्यसामान्यरूप निज आत्मतत्त्व, तीनरूप परिणमित। ऐसा है न ? चैतन्यसामान्यरूप त्रिकाल, ऐसा निज आत्मतत्त्व, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित, वह मोक्षेच्छुक को मोक्ष का मार्ग है। क्या कहा ? **ऐसा जो एक ही चैतन्यसामान्यरूप निज आत्मतत्त्व,...** त्रिकाल। वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र से परिणमित। वह मोक्ष की इच्छा करनेवाले को प्रसिद्ध मार्ग है। निज आत्मतत्त्व की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्ररूप परिणमित, वह मोक्षमार्ग है। आहाहा ! समझ में आया ? **इस मार्ग बिना मोक्ष नहीं है।** अन्तर सामान्य चैतन्यस्वरूप भगवान की प्रतीति, उसका ज्ञान और उसकी रमणता - यही मोक्षेच्छुक को मोक्ष का प्रसिद्ध मार्ग है। इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं है। समझ में आया ? लो, यहाँ मोक्षमार्ग एक कहा, दो नहीं। वे कहते हैं दो मानो, नहीं तो भ्रम में हो, ऐसा (वे) कहते हैं। लो !

श्रोता : वह पण्डित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डित तो यह फूलचन्दजी पण्डित नहीं ?

श्रोता : वे नौखी जाति के हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नौखी जाति के हैं। आहाहा ! यह १३वीं गाथा हुई। समझ में आया ?

बहुत सरस बात की।

(दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप से परिणमित), ऐसा जो एक ही चैतन्यसामान्यरूप निज आत्मतत्त्व,... देखा? चैतन्यसामान्य निजतत्त्व-द्रव्य। परन्तु वह द्रव्य दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित। आहाहा! यह एक ही प्रसिद्ध मार्ग है।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी पड़ा है। उसका परिणमन कहा न यह! ध्रुव चैतन्यसामान्य भगवान आत्मतत्त्व, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र से परिणमित है, ऐसा जो आत्मा। आहाहा! देखो न! कितनी बात लेते हैं! ओहोहो! मोक्षेच्छुकों को मोक्ष का प्रसिद्ध मार्ग है। **मोक्षेच्छुओं को (मोक्ष का) प्रसिद्ध मार्ग है; इस मार्ग बिना मोक्ष नहीं है।** आहाहा! व्यवहार व्रत, तप, विकल्प, भक्ति, पूजा, यह मोक्षमार्ग नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह १३वीं (गाथा) हुई। १३ गाथा और २३ कलश।

१४वीं (गाथा)। **यह अशुद्धदर्शन की तथा शुद्ध और अशुद्धपर्याय की सूचना है।** १४ में। **यह अशुद्धदर्शन की...** चक्षु, अचक्षु, अवधि, ये सब अशुद्ध (दर्शन) और **शुद्ध और अशुद्धपर्याय...** निर्मल पर्याय और मलिन पर्याय। उसका यहाँ सूचन कथन है। १४वीं गाथा।

चक्खु अचक्खू ओही तिण्णि वि भणिदं विहावदिट्ठि त्ति।
पज्जाओ दु-वियप्पो सपरावेक्खो य णिरवेक्खो।।१४।।

चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन, ये विभाविक दर्श हैं।
निरपेक्ष, स्वपरापेक्ष - ये पर्याय द्विविध विकल्प हैं॥१४॥

***अन्वयार्थ :*—चक्षु, अचक्षु और अवधि यह तीनों विभावदर्शन...** हैं। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन। **यह तीनों विभावदर्शन कहे गये हैं।** भगवान की वाणी में (कहे गये हैं)। **पर्याय द्विविध है—स्वपरापेक्ष...** आहाहा! एक पर्याय स्वयं से उत्पन्न होती है और निमित्त सापेक्ष है, वह स्वपर सापेक्ष। **(स्व और पर की अपेक्षा युक्त) और निरपेक्ष।** पर्याय है। कारणपर्याय लेंगे और स्वभाव अगुरुलघु आदि।

टीका :— यह अशुद्धदर्शन की तथा शुद्ध और अशुद्धपर्याय की सूचना है। जिस प्रकार मतिज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव) मूर्तवस्तु को जानता है;... बताना है चक्षुदर्शन का क्षयोपशम। उसमें पहला यह लेकर बतलाया। **जिस प्रकार मतिज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव) मूर्तवस्तु को जानता है;...** इस समय लेते हैं कि देखो! मतिज्ञानावरणीय

का क्षयोपशम होवे तो उसे जानता है। यह तो निमित्त का कथन है। अपनी पर्याय में इतने क्षयोपशम की योग्यता से उत्पन्न हुई हो तो मतिज्ञानावरणीय का क्षयोपशम निमित्तरूप है। बड़ी चर्चा हुई थी न? ज्ञान की स्वयं की योग्यता से उत्पत्ति होती है, तब दूसरा कहे - नहीं, ज्ञानावरणीयकर्म है, उसका क्षयोपशम होवे तो उत्पन्न होता है। और ज्ञानावरणीय के निमित्त से आवरण आता है। यह तो निमित्त का कथन है। परद्रव्य आवरण कहाँ करे और परद्रव्य... समझ में आया?

'कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई' भक्ति में आता है। 'कर्म विचारै कौन'? वे तो जड़ हैं, धूल हैं, मिट्टी हैं। आहाहा! 'भूल मेरी अधिकाई' वह भूल करनेवाला भी आत्मा और भूल को मिटानेवाला भी आत्मा। कर्म रहे तो नुकसान होता है और टले तो लाभ होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! बड़ी चर्चा चली थी। जहाँ ऐसा आवे न (वहाँ कहे) देखो! ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से होता है, (ऐसा आधार दे), यह तो निमित्त का कथन है। क्षयोपशम तो अपनी योग्यता से मतिज्ञान में क्षयोपशम की पर्याय प्रगट है। अपने पुरुषार्थ से प्रगट है। आहाहा! तब मतिज्ञानावरणीय के निमित्त से क्षयोपशम है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

तत्त्वार्थसूत्र में 'क्षयात्' आता है न? ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय क्षयात् केवलज्ञान उत्पन्न होता है। यह प्रश्न जैनतत्त्वमीमांसा में पण्डितजी ने डाला है। है? क्षयात् का अर्थ - वह तो कर्म की पर्याय थी, वह अकर्मरूप हुई। पण्डितजी! ऐसा लिखा न? जैनतत्त्वमीमांसा में... वह तो कर्म की पर्याय अकर्मरूप हुई, परन्तु कर्मरूपी पर्याय बदली, इसलिए यहाँ उघाड़ हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ज्ञानावरणीय के क्षयात् केवलज्ञान। वहाँ शब्द पड़ा है, ज्ञानावरणीय के क्षय से... क्षय हुआ तो क्या हुआ? वह परमाणु की कर्मरूप पर्याय थी, वह अकर्मरूप हुई परन्तु उसके क्षय से केवलज्ञान हुआ, ऐसा कहाँ है?

श्रोता : शब्दार्थ में...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसका भावार्थ समझना चाहिए न! समझ में आया? तत्त्वार्थसूत्र में ऐसा पाठ है कि ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय क्षयात् केवलज्ञान आदि (प्रगट होते हैं), तो क्षयात् का अर्थ उसका क्षय हुआ तो यहाँ केवलज्ञान उत्पन्न हुआ? उसका क्षय अर्थात् कर्म की पर्याय थी, वह अकर्मरूप हुई, बस! उसका परिणमन इतना आया। समझ में आया? पढ़ा है या नहीं? जैनतत्त्वमीमांसा है या नहीं? है? ठीक। नयी प्रकाशित होती है। तत्त्वार्थसूत्र शास्त्र में ऐसा आया है कि मोहक्षयात्, ज्ञानावरणीय क्षयात् यह केवलज्ञान आदि उत्पन्न होते हैं परन्तु इसका अर्थ क्या? अपनी पुरुषार्थ की जागृति, भावकर्म के-

भावघातिकर्म की पर्याय का नाश करके उत्पन्न हुआ है। द्रव्यघातिकर्म का आत्मा नाश नहीं कर सकता, वह तो उसके कारण से नाश होता है। आहाहा!

श्रोता : भावघाति का नाश करना, वह भी नाममात्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय है न, नाश करने की पर्याय है न। पाठ है। १६वीं गाथा। प्रवचनसार १६वीं गाथा। द्रव्य-भाव घातिकर्म के नाश से उत्पन्न होता है, ऐसा पाठ है। सब पाठ की साक्षी है। भावघाति का नाश। यही लेना है न? बाकी तो स्वरूप की एकाग्रता हुई तो भावघाति पर्याय उत्पन्न नहीं हुई और नाश हुआ, ऐसा कहने में आता है। नहीं होने का अर्थ नाश। दूसरा कहाँ नाश है? आहाहा! यह तो कथन शैली है। आहाहा! सब समझ में अभी कर्म के नाम से बहुत गड़बड़ी है। कर्म से होता है... कर्म से होता है... भाई! कर्म तो जड़ है। जड़, आत्मा में क्या करे? आत्मा कर्म को स्पर्श नहीं करता और कर्म आत्मा को स्पर्श नहीं करते। दोनों भिन्न-भिन्न चीज़ हैं। आहाहा! अपने उल्टे पुरुषार्थ से विपरीत होता है और सुल्टे पुरुषार्थ से अविपरीत होता है। समझ में आया?

यहाँ कहा कि **जिस प्रकार मतिज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से...** यह निमित्त से कथन है। **(जीव) मूर्तवस्तु को जानता है; उसी प्रकार चक्षुदर्शनावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव) मूर्तवस्तु को देखता है।** वह जानता है और यह देखता है। अपने क्षयोपशम की दशा से मूर्त पदार्थ को देखता है, ज्ञान मूर्त पदार्थ को जानता है। यह देखने की बात है न, दर्शनोपयोग। नीचे है। **देखना=सामान्यरूप से अवलोकन करना; सामान्य प्रतिभास होना।** दर्शन में सामान्य का भान होना, देखना। यह चक्षुदर्शनावरणीय की बात की। !

जिस प्रकार श्रुतज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव), श्रुत द्वारा द्रव्यश्रुत से कहे हुए मूर्त-अमूर्त समस्त वस्तुसमूह को परोक्षरीति से जानता है;... लो, **श्रुतज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव), श्रुत द्वारा द्रव्यश्रुत से कहे हुए मूर्त-अमूर्त समस्त वस्तुसमूह को परोक्षरीति से जानता है; उसी प्रकार....** यह जानने का मिलान करते हैं। **उसी प्रकार अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से (जीव), स्पर्शन, रसन, घ्राण और श्रोत्र द्वारा, उस-उसके योग्य विषयों को देखता है।** बस। जैसे श्रुतज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से जानता है, वैसे अचक्षुदर्शनावरणीय के क्षयोपशम से देखता है। उसके साथ मिलान किया है। पाँच इन्द्रिय से भोग्य विषय को देखता है। आहाहा! यह अशुद्धदर्शन की व्याख्या चलती है।

जिस प्रकार अवधिज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव), शुद्धपुद्गलपर्यन्त

(परमाणु तक के) मूर्तद्रव्य को जानता है;... एक परमाणु तक जानता है। **उसी प्रकार अवधिदर्शनावरणीय -कर्म के क्षयोपशम से (जीव), समस्त मूर्तपदार्थों को देखता है।** एक जानता है और एक देखता है। दो भिन्न गुण हैं न ? जानना और देखना, दो गुण भिन्न है। जानने में केवलज्ञान आता है और देखने में केवलदर्शन आता है स्वभाव। और इसमें चक्षुदर्शन में अवधि.. देखने में आता है और मति-श्रुत तथा अवधि वह ज्ञान में आता है। समझ में आया ?

(उपरोक्तानुसार) उपयोग का व्याख्यान करने के पश्चात्, यहाँ पर्याय का स्वरूप कहा जाता है— यहाँ पाठ है न ? **पज्जाओ दु-वियप्पो** अब **परि समन्तात् भेदमेति गच्छतीति पर्यायः,...** पर्याय का अर्थ किया। **परि समन्तात् भेदमेति गच्छतीति...** भेद पड़े उसे पर्याय कहा जाता है। अभेद, वह त्रिकाली चीज़ है। समझ में आया ? उसमें एक समय की पर्यायभेद, उसे पर्याय कहते हैं। द्रव्य-गुण है, वे त्रिकाल अभेद हैं। द्रव्य और गुण की पर्याय का ज्ञान ही नहीं किया।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : .....तब वे आये थे, नहीं ? ....शास्त्री, महाराष्ट्र के। यहाँ आये थे। ....उद्घाटन था न ? पर्याय क्या है ? पण्डित, परन्तु व्यक्ति अच्छा, हों ! परन्तु तुम पण्डित हो और पर्याय (पूछते हो)। महाराष्ट्र का शास्त्री है, बहुत नरम है। यहाँ आये थे। अपने उद्घाटन हुआ न ? ....उद्घाटन हुआ न तब। कौन से वर्ष ? (संवत्) २००८ के वर्ष। २४ वर्ष पहले आये थे। पर्याय क्या ? अरे ! तुम पण्डित हो और पर्याय (पूछते हो) और एक आगरा के वे बीस पन्थी थे न ? इसलिए वे केसर और चन्दन डालकर भगवान को... कहा भाई ! यहाँ यह रिवाज नहीं है। भगवान पर केसर और चन्दन (नहीं होता)। व्यक्ति नरम था। महाराष्ट्र का।

यहाँ कहते हैं कि **परि समन्तात् भेदमेति गच्छतीति पर्यायः, अर्थात् जो सर्व ओर से भेद को प्राप्त करे, सो पर्याय है।** आहाहा ! त्रिकाली में से पर्याय के भेद पड़ते हैं न ? परि.. परि.. पर्याय। एक समय की पर्याय भेद है। भेद नय का विषय है, वह व्यवहारनय का विषय है। कौन ? जो प्रगट पर्याय है वह। शुद्धकारणपर्याय दूसरी लेंगे। वह बाद में आयेगी। अब **उसमें, स्वभावपर्याय, छह द्रव्यों को साधारण है, अर्थपर्याय है,...** वह स्वभावपर्याय अर्थपर्याय है। **वाणी और मन को अगोचर है,...** भगवान ने कहा वैसा जानना। **अति सूक्ष्म है, आगमप्रमाण से स्वीकार करनेयोग्य...** है। अगुरुलघु अर्थपर्याय। **छह हानि-वृद्धि के भेदोंसहित है,...** छह हानि-वृद्धि के भेदोंसहित। **अर्थात् अनन्त भागवृद्धि, असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, असंख्यात गुणवृद्धि और अनन्त गुणवृद्धि सहित होती है और इसी प्रकार (वृद्धि की भाँति) हानि भी लगायी जाती है।** यह अगुरुलघु की पर्याय जरा सूक्ष्म है। वह आगमगम्य है। वह साधारण व्यक्ति को ख्याल में नहीं आती।

श्रोता : .....

१२ श्री नियमसार, श्लोक- २४-२५-२६, गाथा-१५ प्रवचन - १५९
दिनांक - २२-०१-१९७६

इसके तीन कलश हैं न? २४वाँ कलश

अथ सति परभावे शुद्ध-मात्मान-मेकं,
सहज-गुणमणीना-माकरं पूर्ण-बोधम्।
भजति निशितबुद्धिर्यः पुमान् शुद्धदृष्टिः,
स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः ।।२४।।

परभाव होने पर भी,... क्या कहते हैं? आत्मा की पर्याय में पुण्य और पाप के, राग-द्वेष के भाव होने पर भी, **सहजगुणमणि की खानरूप...** भगवान आत्मा स्वभाविक गुणमणि की खान है। विकार ीाले हो, परन्तु उसके ऊपर की दृष्टि छोड़ दे और भगवान आत्मा सहजगुणमणि की खान है। आहाहा! स्वभाविक गुणमणि का निधान है।

तथा पूर्ण ज्ञानवाले शुद्ध आत्मा को,... तीन बातें हुई कि आत्मा में शुभ-अशुभभाव / विकार होने पर भी, और त्रिकाल गुणमणि की खान भगवान आत्मा और शुद्धज्ञानवाले। पूर्ण ज्ञानवाले, अन्दर में पूर्ण ज्ञान पड़ा है। आहाहा! ऐसे **पूर्ण ज्ञानवाले शुद्ध आत्मा को,...** त्रिकाली द्रव्य को **एक को जो तीक्ष्ण...** एक को ही। ऐसा त्रिकाली ज्ञायकभाव ज्ञान से पूर्ण है, अनन्त सहजगुणमणि की खान है। उस एक आत्मा एक को, ऐसे आत्मा एक को, **जो तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष...** ओहोहो! सम्यग्दृष्टि सूक्ष्म तीक्ष्ण बुद्धिवाला कहलाता है। आहाहा! जिसकी दृष्टि सहजगुणमणि की खान और पूर्ण ज्ञानस्वरूप ऐसे एक आत्मा को जिसने दृष्टि में पकड़ा है। दृष्टि से एकरूप को पकड़ा है, वह तीक्ष्ण बुद्धिवाला है। आहाहा! आत्मा का जो ध्रुवस्वभाव है, उसे तीक्ष्णबुद्धि से जिसने पकड़ लिया है। आहाहा!

शुद्धदृष्टि पुरुष... वह शुद्ध सम्यग्दृष्टि, पुरुष **भजता है,...** त्रिकाली सहजगुणमणि की खान और पूर्ण ज्ञानस्वरूप को एक को ही जो तीक्ष्णबुद्धि सम्पन्न अन्दर द्रव्यस्वभाव से पकड़ने पर शुद्धदृष्टि पुरुष; जिसकी शुद्ध त्रिकाल की दृष्टि हुई है, ऐसा शुद्धदृष्टि पुरुष, उस त्रिकाली ज्ञायक को भजात है, सेवा करता है, त्रिकाली ज्ञायकभाव की रमणता करता है। आहाहा! वह धर्म और वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? मुनिराज ने कितनी शैली (की है)।

यह आत्मा वस्तु है, वह त्रिकाली स्वभाविक गुणमणि की खान और पूर्ण ज्ञानस्वरूप शुद्ध है तथा पर्याय में पुण्य-पाप के भाव होने पर भी, वे परभाव-विभाव हैं। ऐसा होने पर भी, उसमें यह दृष्टि करके शुद्ध आत्मा को सूक्ष्म तीक्ष्ण बुद्धिवाला सम्यग्दृष्टि उसे भजता है। आहाहा! है ? **वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का (मुक्तिसुन्दरी का) वल्लभ बनता है।** अर्थात् विकार, पुण्य, दया, दान, विकल्प, काम-क्रोध का भाव होने पर भी, वे स्वभाव में नहीं है। इसके स्वभाव में तो स्वभाविक गुणमणि का निधान आत्मा है। और पूर्ण ज्ञान... यहाँ केवलज्ञान की बात नहीं है। पूर्ण ज्ञानस्वरूप त्रिकाल—ऐसे शुद्ध-एक को जो भजता है। अन्तर में तीक्ष्ण बुद्धिवंत... आहाहा! उसे भजता है, वह मोक्षमार्ग है।

श्रोता : भजता है अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सेवा अर्थात् एकाग्र होता है। त्रिकाली ज्ञायक शुद्ध पूर्ण स्वभाव में एकाग्र होता है। भजता है अर्थात् उसकी सेवा करता है।

श्रोता : भजन बनाकर भजन करना - ऐसा न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भजन-वजन कहाँ है ? यह तो विकल्प है।

यहाँ तो आनन्दमूर्ति शुद्ध ज्ञान पूर्ण प्रभु। यहाँ ज्ञान की प्रधानता ली है। बाकी सब सहज गुणमणि की खान आत्मा है। आहाहा! **शुद्ध आत्मा को, एक को जो...** त्रिकाल को। आहाहा! **तीक्ष्णबुद्धिवाला...** जिसकी बुद्धि पकड़ने में तीक्ष्ण है, उसे यहाँ तीक्ष्ण बुद्धिवाला कहते हैं। शुद्धदृष्टि-सम्यग्दृष्टि। यहाँ कहा था न पहले ? **पूर्ण ज्ञानवाले शुद्ध आत्मा...** तो उस शुद्ध आत्मा की दृष्टि, वह शुद्धदृष्टि। समझ में आया ? आहाहा! यह तो अध्यात्म की सूक्ष्म बात है न! आहाहा!

मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव भावलिंगी सन्त कहते हैं कि ऐसे आत्मा को-वस्तु जो अनन्त गुण की खान और पूर्ण ज्ञान (स्वरूप है), ऐसे **शुद्ध आत्मा को, एक को जो...** उस शुद्ध एक को तीक्ष्ण बुद्धिवाला-ज्ञान की सूक्ष्म बुद्धि से उसे भजता है, शुद्धदृष्टि आत्मा की सेवा करता है, ऐसे आत्मा में एकाग्र होता है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है। मोक्ष का मार्ग, उसका कारण और उसका कार्य-मोक्षमार्ग का फल, तीनों बातें ले ली हैं। आहाहा! मोक्ष का मार्ग, उसका कारण त्रिकाली ज्ञायकभाव। आहाहा! त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु, वह मोक्षमार्ग का कारण है और त्रिकाली का सेवन करना, वह मोक्षमार्ग और मोक्षमार्ग का फल। **वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी...** मोक्ष। पूर्णानन्द की प्राप्तिरूपी स्त्री / परिणति, उसका **वल्लभ बनता है...** उसे पूर्णानन्द की प्राप्ति छोड़ती नहीं है। उसे पूर्णानन्द की प्राप्ति सदा ही रहती है।

आहाहा! अब ऐसी बात!

श्रोता : परन्तु इसमें करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करना आया न? शरीर, वाणी, मन तो कहीं दूर रहे। वे तो आत्मा में हैं ही नहीं, परन्तु दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा का विकल्प है, वह भी आत्मा में नहीं है। वह तो परभाव-विकार है।

श्रोता : वे तो परभाव में आये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परभाव में आये। यहाँ परभाव में वह निर्मल पर्याय नहीं लेना। यहाँ तो विकारी पर्याय, वह परभाव। स्वभाव की पर्याय त्रिकाल को पकड़कर उसकी सेवा करे, वह स्वभावपर्याय है। समझ में आया?

फिर से। यह तो अध्यात्मस्वरूप है। **वह पुरुष परमश्रीरूपी...** जिसने भगवान आत्मा सहजानन्द पूर्ण ज्ञानस्वरूप और अनन्त गुण का निधान, ऐसी एक अर्थात् अभेद चीज़, ऐसे एक को अपनी तीक्ष्णबुद्धि से शुद्धदृष्टि पुरुष (उसमें) एकाग्र होता है। यह एकाग्र होता है, वह मोक्ष का मार्ग है। उससे मोक्ष मिलता है। मोक्ष यह। **वह पुरुष परमश्रीरूपी...** परमलक्ष्मी। केवलज्ञान, अनन्त आनन्दादि परमलक्ष्मी-मोक्ष। **परमश्रीरूपी कामिनी...** अर्थात् शुद्धपरिणति। **(मुक्तिसुन्दरी का) वल्लभ बनता है।** अर्थात् मुक्ति सुन्दरी की पर्याय उससे दूर नहीं रहती। अभेदरूप से अनुभव में रहेगी। आहाहा! है तो तीन लाईन, तीन पंक्तियाँ है।

श्रोता : भण्डार भरा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भण्डार भरा है। आहाहा!

एक तो यह सिद्ध किया कि विकार परिणाम पर्याय में तो है। गागर में सागर कहते हैं न? गागर में सागर ऐसा भर दिया है। आहाहा! जंगल में नग्न दिगम्बर मुनि आनन्द में झूलनेवाले, अनुभव (करनेवाले) कहते हैं कि हे भगवान! यह तेरी चीज़ ही भगवानस्वरूप शुद्ध ज्ञानघन है, अनन्त गुणमणि का निधान है। उसे वर्तमान ज्ञान की तीक्ष्ण बुद्धि से शुद्धदृष्टि अर्थात् त्रिकाल की दृष्टिवन्त, ऐसा पुरुष उसे भजता है - उसमें एकाग्र होता है। वह मोक्षरूपी सुन्दरी... आया न? परमश्री.. परमश्री.. परमश्री.. पूर्ण लक्ष्मी। श्री अर्थात् लक्ष्मी। अतीन्द्रिय आनन्द आदि मुक्ति की परमलक्ष्मी को प्राप्त करता है, उसका वल्लभ होता है... अर्थात् उसे पूर्ण आनन्द की प्राप्ति होती है। लो, यह २४वाँ (कलश) हुआ। २५,

इति पर-गुण-पर्यायेषु सत्सूत्तमानां,
हृदय-सरसि-जाते राजते कारणात्मा।
सपदि समयसारं तं परं ब्रह्म-रूपं,
भज भजसि निजोत्थं भव्यशार्दूल स त्वम् ।।२५।।

आहाहा! **इस प्रकार पर गुण-पर्यायें होने पर भी,...** पर्याय में रागादि होने पर भी। पर गुण-पर्याय विकारी भाव आदि। **उत्तम पुरुषों के हृदयकमल में...** उत्तम पुरुषों के हृदयकमल में **कारणआत्मा विराजमान है।** आहाहा! ज्ञान की निर्मलपर्यायरूपी कमल में भगवान त्रिकाल अन्दर विराजमान है। आहाहा! **आत्मा विराजमान है।** हृदयकमल का अर्थ ज्ञान की निर्मल पर्याय में पूरा आत्मा विराजमान है। आहाहा! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूपी कमल में पूर्ण भगवान को विराजमान किया है। पूर्ण भगवान का आश्रय लिया है, पूर्ण भगवान का अवलम्बन लिया है। आहाहा!

अपने से उत्पन्न ऐसे उस परमब्रह्मरूप समयसार को... स्वयं से है। उत्पन्न का अर्थ यह। आत्मा समयसार को, ऐसे परमब्रह्मस्वरूप ध्रुव चैतन्य आनन्द को। आहाहा! **जिसे तू भज रहा है,...** मुनिराज कहते हैं। आहाहा! पूर्ण कारणपरमात्मा नित्यानन्द प्रभु का तू सेवन कर रहा है, भज रहा है। आहाहा! यह मुनिपना। आहाहा! व्रत लेना और नग्नपना, यह मुनिपना नहीं। समझ में आया? **पर गुण-पर्यायें होने पर भी, उत्तम पुरुषों के हृदयकमल में...** ज्ञानकमल में। **कारणआत्मा विराजमान है।** कारणपरमात्मा को, यहाँ कारणआत्मा लिया है। आहाहा! सम्यग्ज्ञान की कमलदशा में पूर्ण आत्मा रहा है। पूर्ण आत्मा का स्वीकार किया न? ज्ञान ने पूर्ण आत्मा का स्वीकार किया, इसलिए ज्ञानकमल में आत्मा रहा है—ऐसा कहा गया है। समझ में आया? आहाहा!

श्रोता : उसके प्रयोग बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रयोग ही कहते हैं न! अन्दर में जाना, यह (प्रयोग है)। त्रिकाली ज्ञायकभाव के समीप जाना, वह उसका प्रयोग है। विकार से दूर होकर त्रिकाल के समीप जाना, वह प्रयोग है।

श्रोता : कसरत कराते हैं तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कसरत है। आहाहा!

शुद्ध ज्ञानघन ध्रुव, उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। यह पूरी पूर्ण चीज़; उसमें से उत्पाद-

व्यय की पर्याय त्रिकाल ध्रुव का अवलम्बन करती है, यह प्रयोग है। आहाहा! यह मार्ग है, भाई! आहाहा! जैनदर्शन, वस्तुदर्शन, विश्वदर्शन है। पूरे विश्व का स्वरूप ऐसा है। आहाहा!

ऐसे उस परमब्रह्मरूप समयसार को... त्रिकाल की बात है, हों! **कि जिसे तू भज रहा है,...** आहाहा! मुनिराज कहते हैं कि मैं तो त्रिकाली आनन्दकन्द को भजता हूँ, एकाग्र होता हूँ। आहाहा! यह मेरा मुनिपना और यह मेरा मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! अभी पकड़ना कठिन (पड़े)। सुनने को मिलता नहीं। ये सब बाहर की बातें। यह करो.. यह करो.. यह करो..

श्रोता : आप भी करने का तो कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो अन्दर का करने की बात है। आहाहा! दिशा को बदलना हो तो दशा बदलेगी। पर के ओर की जो दिशा है, उसकी उस दशा को बदलने के लिए दिशा बदलनी पड़ेगी। उसकी त्रिकाल के ऊपर दिशा जाने से उसकी दिशा सम्यक् होगी। समझ में आया? ....क्या करते हो? कि मैं परमानन्दस्वरूप भगवान की एकाग्रता करता हूँ। व्रत पालता हूँ, यह नहीं। आहाहा! यह तो उसमें पंच महाव्रत में लिया है। परगुण-पर्याय होने पर भी, परभाव होने पर भी। आहाहा! परगुण-पर्याय में यह लिया है। आहाहा!

उत्तम पुरुषों के हृदयकमल में... हृदय अर्थात् अन्दर ज्ञानकमल। ज्ञानपर्याय है। **कारणआत्मा विराजमान है।** आहाहा! ज्ञान की निर्मल पर्याय में कारणपरमात्मा का स्वीकार हुआ है, अर्थात् विराजमान है। वह **अपने से उत्पन्न ऐसे उस परमब्रह्मरूप समयसार को...** अनादि का है, कि जिसे तू भज रहा है। आहाहा! भगवान को भजना, तीर्थंकर को (भजना), ऐसा नहीं कहा। तू ऐसा भज रहा है। आहाहा! अहो! यह सिद्धान्त कहलाता है। समझ में आया? जिसमें थोड़े में बहुत भर दिया है। समझ में आया? यह सब लिखा गया है। यह सब टीका लेंगे। आहाहा!

यहाँ तो अब अन्तर... आगे बढ़। आहाहा! समझ में आया? शरीर, वाणी, मन, पर रहे; शुभाशुभभाव पर रहे। स्व अनादि-अनन्त समयसार ध्रुव चैतन्य भगवान वह स्व, उसे तू भजता है, उसमें तू एकाग्र होता है, वह तेरा मुनिपना है, परन्तु अब कहते हैं कि शीघ्र भज। एकदम अन्दर एकाग्र हो। आहाहा! समझ में आया? श्लोक में... कथन करना और बोलना, वह अलग वस्तु है। यह तो अन्दर वस्तु शुद्धचैतन्यघन पूर्ण ब्रह्म, परमसमयसार। समयसार अर्थात् त्रिकाली आत्मा।... भव्य, योग्य, उत्तम पुरुष आत्मा। आहाहा! **तू शीघ्र भज;...** अन्तर

में उतावल करके अन्दर विशेष एकाग्र हो। आहाहा! समझ में आया? देखो, यह दिगम्बर सन्तों की वाणी! आहाहा! भगवान के पथानुगामी, भगवान के मार्ग में चलनेवाले। यह नग्नपना, पंच महाव्रत, वह कोई साधु नहीं। आहाहा! स्वरूप को साधे, वह साधु। वह तो स्वरूप जो त्रिकाली आत्मा आनन्दकन्द है, उसमें एकाग्रता-भजन करना, वह साधन है, वह साधु है। आहाहा!

(भव्योक्तम)... आत्मा को कहते हैं। आहाहा! स्वयं अपने को स्वयं कहते हैं। हे भगवान! हे उत्तम आत्मा! आहाहा! मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव... आहाहा! (कहते हैं), **तू शीघ्र भज;...** क्यों? - कि **तू वह है।** जिसे तू भजता है, वह तू है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्दस्वरूप कारणपरमात्मा, कारणध्रुव, कारणजीव, कारणआत्मा, सब एक ही बात है। उसे भज, क्योंकि वह तू है। उसे भज, क्योंकि वह तू है। आहाहा! वह कोई पर नहीं। आहाहा! समझ में आया? गजब बात है। आहाहा! अमृत बहाया है। लोगों ने यह अन्तर की बातें सुनी नहीं, इसलिए ऐसा लगता है कि यह कैसा होगा? कुछ दया पालो, महाव्रत करो (ऐसा तो कहते नहीं)। अब यह तो अनन्त बार किया है, सुन न! वह कोई धर्म नहीं है।

धर्मी ऐसा भगवान सहज गुणमणि की खान, उसमें एकाग्र होना, वह धर्म है। धर्मी ऐसा आत्मा, उसमें एकाग्र होना धर्म है। आहाहा! **तू वह है।** अन्दर ऐसा है न **'भव्यशार्दूल स त्वम्'** ऐसा है न? **'स त्वम्'** अन्तिम शब्द है। **तू वह है।** आहाहा! ज्ञान से परिपूर्ण भगवान स्वयं, और अतीन्द्रिय आनन्द तथा सहजगुणमणि की खान, उसका भजन कर, उसमें एकाग्र हो, क्योंकि तू वह है। आहाहा! तुझे तू भज, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ये दो श्लोक हुए। आहाहा!

क्वचिल्लसति सद्गुणैः क्वचिदशुद्धरूपैर्गुणैः,
क्वचित्सहजपर्ययैः क्वचिदशुद्धपर्यायकैः।
सनाथ-मपि जीव-तत्त्व-मनाथं समस्तैरिदं,
नमामि परिभावयामि सकलार्थसिद्धयै सदा ।।२६।।

आहाहा! **जीवतत्त्व,...** अर्थात् भगवान आत्मा **क्वचित् सद्गुणों सहित विलसता है,...** केवलज्ञानादि गुणोंसहित विलसता है। क्वचित् भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, पर्याय में सद्गुण अर्थात् केवलज्ञानादिसहित प्रगट होता है। नीचे है? **विलसना=दिखाई देना; दिखना; झलकना; आविर्भूत होना; प्रगट होना।** आहाहा! यह सद्गुण अर्थात् पर्याय। प्रगट

होते हैं न? त्रिकाल की बात में त्रिकाल तो वस्तु है। अब सद्गुणोंसहित। केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि गुणों को सद्गुण कहा गया है, है पर्याय। आहाहा!

सद्गुणों सहित विलसता है, दिखाई देता है;... आहाहा! **क्वचित् अशुद्धरूप गुणों सहित विलसता है;...** मतिज्ञान आदि विभावगुण तो अशुद्ध गुण कहा गया है। मति, श्रुत, मन:पर्यय, अवधि चार, इन **अशुद्धरूप गुणों सहित विलसता है;...** पर्याय में चार ज्ञानसहित प्रगट दिखायी देता है। समझ में आया? आहाहा! **क्वचित् सहज पर्यायों सहित विलसता है...** अगुरुलघु आदि। अगुरुलघु षट्गुण हानि-वृद्धि है न? **सहज पर्यायों सहित विलसता है और क्वचित् अशुद्ध पर्यायों सहित विलसता है।** व्यंजनपर्याय। समझ में आया?

जीवतत्त्व त्रिकाल... प्रभु पूर्ण ज्ञायक... वह केवलज्ञानादि गुणोंसहित दिखता है। किसी समय मतिज्ञानादि अशुद्ध गुणों से विराजमान है, पर्याय में दिखता है। अगुरुलघु आदि षट्गुण हानि-वृद्धि से पर्याय में दिखता है। क्वचित् अशुद्ध पर्यायों—व्यंजनपर्याय—नारकी, मनुष्य, आदि जो चार गति, वह अशुद्ध पर्याय है। अशुद्ध पर्याय नर-नारक आदि व्यंजनपर्याय। समझ में आया? वह भी है तो पर्याय। कौन? यह षड्गुण। परन्तु केवलज्ञानादि को षट्गुण कहने से पर्याय है। है तो पर्याय। मति, श्रुत, अवधि (मन:पर्यय) चार परन्तु इसके गुण हैं, ऐसा कहकर अशुद्धरूप गुणोंसहित यहाँ लेते हैं, विलसता है। आहाहा!

इन सबसे सहित होने पर भी,... आहाहा! **जो इन सबसे रहित है...** भगवान त्रिकाल तो (रहित है)। केवलज्ञानादि पर्याय, मतिज्ञानादि चार पर्याय, अगुरुलघु आदि की षड्गुण हानि पर्याय और अशुद्ध व्यंजनपर्याय सहित होने पर भी वस्तु उनसे रहित है। समझ में आया? **सहित होने पर भी,...** देखो! **इन सबसे रहित है...** वस्तु वह तो चार प्रकार के प्रकार से रहित है। केवलज्ञानादि की पर्याय से रहित है, अगुरुलघु की षड्गुण हानि-वृद्धि पर्याय से भी द्रव्य तो रहित है और अशुद्ध व्यंजनपर्याय से भी द्रव्य तो रहित है। आहाहा!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नारकी की। व्यंजनपर्याय, दूसरी नहीं। ....कहा न? ...मतिज्ञानादि। विकार है, वह यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो इतना दिखता है। अगुरुलघु की पर्याय दिखती है? नारकी आदि की व्यंजनपर्याय दिखती है। आहाहा!

इन सबसे सहित होने पर भी,... आहाहा! **जो इन सबसे रहित है...** केवलज्ञान आदि पर्याय, मति आदि की पर्याय, अगुरुलघु की पर्याय और अशुद्ध पर्याय। चार से वस्तु जो है,

वह तो रहित है। ज्ञायकभाव चिदानन्द... यह शैली है इसमें। व्यंजनपर्याय में नारकी आदि की। राग आदि नहीं। यह तो पहले कहा। परगुण-पर्याय होने पर भी। होता है। अब उसका कुछ काम नहीं। आहाहा! **ऐसे इस जीवतत्त्व को...** कैसे? कि चार प्रकार पर्याय में होने पर भी वस्तु जो जीवतत्त्व ध्रुव ज्ञायक प्रभु है तो वह जीवतत्त्व इनसे रहित है। इनसे रहित मैं... आहाहा! मुनिराज कहते हैं कि ऐसा जो जीवतत्त्व, ज्ञायकतत्त्व, कारणपरमात्मा, शुद्ध अखण्डानन्द अभेद वस्तु, **मैं सकल अर्थ की सिद्धि के लिए...** आहाहा! मेरे अर्थ की सिद्धि-मोक्ष की पर्याय प्रगट करने के लिए। यह अर्थ सिद्धि हो। यह अर्थसिद्धि। यह पैसे की अर्थ सिद्धि नहीं।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब इस धूल को क्या करना है? धूल तो इसकी पर्याय में भी नहीं। यह क्या कहा? सुनो! यह पैसा, लक्ष्मी तो इसकी पर्याय में भी नहीं। उसकी तो बात यहाँ है ही नहीं परन्तु इसकी पर्याय में है, वह द्रव्य में नहीं। आहाहा! यह शरीर, वाणी, मन, लक्ष्मी, यह तो भगवान आत्मा की पर्याय में भी नहीं। उसकी तो बात नहीं। यहाँ तो पर्याय में जो है केवलज्ञान, मतिज्ञान, अगुरुलघु पर्याय और व्यंजनपर्याय यह है, वह त्रिकाल में नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है।

अरे! सत् कहाँ है? भाई! पूर्ण सत्य प्रभु अन्दर विराजता है। आहाहा! पूर्ण सत्य प्रभु! सत्साहिबो कारणसमयसार भगवान, वह जीवतत्त्व है। आहाहा! उसे तू भज। **इस जीवतत्त्व को मैं...** मुनिराज कहते हैं। **इस जीवतत्त्व को मैं सकल अर्थ की सिद्धि...** मोक्षरूपी पर्याय की प्राप्ति के लिए **सदा नमता हूँ,...** आहाहा! ऐसी त्रिकाली चीज़ में मेरी नमन दशा है। आहाहा! देखो तो यह! श्वेताम्बर के बत्तीस सूत्र पढ़े तो एक लाईन हाथ न आवे। हमारे बहिन पूछती थी न? यह तो एक-एक लाईन यह तो क्या चीज़ है! आहाहा! सन्तों की वाणी, केवलज्ञान के मार्गानुसारी! आहाहा!

भगवान! एक बार सुन न, कहते हैं। आहाहा! तू जिसे भजता है, उसे मैं अब सर्व अर्थ की सिद्धि के लिए भजता हूँ। मेरा केवलज्ञानरूपी प्रयोजन, वह मेरा प्रयोजन है। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : जो वस्तु में नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वस्तु में नहीं, परन्तु पर्याय का करने का कार्य है न! कार्य

तो यह करना है न! केवलज्ञान मोक्ष यह कार्य। वस्तु में नहीं परन्तु वस्तु के आश्रय से कार्य तो यह करना है न! आहाहा! वस्तु में नहीं परन्तु वस्तु के आश्रय से यह कार्य करना है। आहाहा! ध्येय अलग। ध्येय द्रव्य। कल पण्डितजी ने कहा था। ध्येय, वह द्रव्य। साध्य केवलज्ञान-मोक्ष। साधन यह—अन्दर द्रव्य की एकाग्रता (करना), वह इसका साधन। आहाहा!

इन सबसे रहित है—ऐसे इस जीवतत्त्व को... ये तो चार पर्याय से रहित है। **सकल अर्थ की सिद्धि के लिए...** पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिए। **सदा नमता हूँ,...** इस ज्ञायकभाव में मेरा झुकाव, नमन है और इसे **भाता हूँ।** इस त्रिकाली की भावना करता हूँ। आहाहा! यह अन्दर नमते हैं।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प, विकल्प के घर रहा। यह मुनि हैं, हों! आचार्य नहीं। अमृतचन्द्र (तो) आचार्य हैं। ये मुनिराज हैं, आचार्य नहीं। आहाहा! यह तो बाहर की बात है न! वास्तविक आचार्यपना तो आत्मा का स्वरूप है, वह है। पाँच पद आत्मा का स्वरूप लिया है। समझ में आया? पाँचों परमेष्ठी की पर्याय वह निर्मल वीतरागी पर्याय, वह परमेष्ठी है। नग्नपना, पंच महाव्रत, वह कहीं परमेष्ठीपना नहीं है। आहाहा! वीतरागी परिपूर्ण पर्याय अरिहन्त और सिद्ध की, आचार्य-उपाध्याय-साधु की अपूर्ण निर्मल पर्याय। आहाहा! बात यह कि ये सब देह और फेह सब मेरे... जड़... इसके साथ लगे। वह चीज़ पड़ी रही। दो कलश है, नियमसार। उनके साथ लगा, वह चीज़ पड़ी रही।

श्रोता : इन तीनों पर्यायों में भेद होगा? आचार्य, उपाध्याय, साधु।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये तीनों सब... एक न्याय से। यह... है ही तो। नियमसार में आ गया है। केवलज्ञानी और मोक्षमार्गी साधु में थोड़ा अन्तर है। फिर एक बार कहा कि अन्तर माने, वह जड़ है। दो कलश हैं। नियमसार। पूर्णानन्द का नाथ प्रभु.. यह नियमसार है। है? कहाँ है? २८८ पृष्ठ, इस श्लोक में देखो! २८८ पृष्ठ। **इस लोक में तपश्चर्या समस्त सुबुद्धियों को प्राण प्यारी है।** आनन्द की दशारूपी तपस्या। जड़मति, अरे रे! **जो जीव अन्यवश हैं, वे भले मुनिवेशधारी हों तो भी संसारी हैं, नित्य दुःख को भोगनेवाले हैं; जो जीव स्ववश हैं, वे जीवन्मुक्त हैं, जिनेश्वर से किंचित् न्यून हैं (अर्थात् उनमें जिनेश्वरदेव से किंचित् ही न्यूनता है)।** मुनिराज की दशा जिनेश्वर से थोड़ी न्यून है। वह तो जड़बुद्धि है, ऐसा लिखा है।

श्रोता : .....२९६ पृष्ठ

हाँ, वह। वह २५३ कलश। २५३ कलश, २९६ पृष्ठ। **सर्वज्ञ-वीतराग में और इन स्ववश योगी में...** यह सन्त, मुनि, भावलिंगी, अन्दर आनन्द के कन्द में (झूलनेवाले), **कभी भी कुछ भी भेद नहीं है...** है ? **तथापि अरे रे! हम जड़ हैं कि उनमें भेद देखते हैं।** आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागी अन्तरदशा प्रगट है, तो केवलज्ञानी में और उनमें पहले थोड़ा अन्तर कहा था। अब... वीतरागपने की तैयारी हो गयी। केवलज्ञान लेने की तैयारी (हो गयी), (अन्तर) कुछ है नहीं, जाओ। मोक्ष। प्रवचनसार में मोक्षतत्त्व कहा न ? भाई! अभी साधारणरूप से है और मोक्षतत्त्व कहा। प्रवचनसार में (कहा है) है न! चारों ओर से एक सरीखा कथन। जैन सिद्धान्त अलौकिक वाणी है। कहीं है नहीं। आहाहा!

श्रोता : .....एक ओर से कहे, समकित न हो, एक ओर से....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किस अपेक्षा से ? ....ज्ञान यथार्थ कराया है। इसलिए न्यून है, अत्यन्त पूर्ण है, ऐसा भी नहीं और पूर्ण होने की तैयारी है, इसलिए उन्हें पूर्ण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह १४वीं गाथा हुई। दो भाषा की, हों! नमता हूँ और भाता हूँ। त्रिकाली आनन्दकन्द में अन्दर एकाग्र है और उसकी मुझे भावना है। भावना उसकी है। राग की भावना, वह मेरी भावना नहीं है। समझ में आया ? अब आयी गाथा। अब १५वीं गाथा।

श्रोता : आत्मा यह... है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : .... (संवत्) २०००। बत्तीस वर्ष हुए। इस गाथा को।

श्रोता : थोड़ा विशेष स्पष्टीकरण देंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो! क्या आता है ?

णरणारयतिरियसुरा पज्जाया ते विहावमिदि भणिदा।
कम्मोपाधिविवज्जियपज्जाया ते सहावमिदि भणिदा।।१५।।

देखो, वह व्यंजनपर्याय कही है न! नीचे।

तिर्यञ्च, नारकि, देव, नर पर्याय हैं वैभाविकी।
पर्याय कर्मोपाधि वर्जित हैं कही स्वाभाविकी॥१५॥

***अन्वयार्थ :*—मनुष्य, नारक, तिर्यञ्च और देवरूप पर्यायें, वे विभावपर्यायें...**

व्यंजनपर्याय विभाव। **कही गई हैं;...** भगवान ने ऐसा कहा है और **कर्मोपाधि रहित पर्यायें, वे स्वभावपर्यायें...** है। इस स्वभावपर्याय के दो भेद करेंगे।

यह स्वभावपर्यायों तथा विभावपर्यायों का संक्षेप कथन है। स्वभाविकपर्याय / अवस्था, हों। और विभावक अवस्थाओं का संक्षेप कथन है। **वहाँ, स्वभावपर्यायों और विभावपर्यायों के बीच प्रथम स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही जाती है,...** स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही गयी है। **कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय।** समझ में आया? यह अधिकार तो श्वेताम्बर में तो है ही नहीं, परन्तु दिगम्बर में इसके अतिरिक्त अन्यत्र नहीं है। क्योंकि यह मोक्षमार्ग का अधिकार है न? नियमसार, अर्थात् मोक्षमार्गपर्याय का अधिकार है।

श्रोता : मोक्षमार्ग वह कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें से यह कारणपर्याय... त्रिकाली। आहाहा! मोक्षमार्ग की पर्याय, शुद्धकारणपर्याय में से प्राप्त होती है। शुद्धकारणपरमात्मा और शुद्धकारणपर्याय, उसमें से मोक्ष का मार्ग प्राप्त होता है, इसलिए यह यहाँ डाली है। यह तो कहा है कि यह टीका मैं मन्दबुद्धि क्या करूँ? गणधरदेव से चली आयी टीका है। गणधरदेव से और आचार्य की परम्परा नग्न मुनि-सन्त, अनुभवी सन्तों की परम्परा से यह टीका चली आयी है। मैं मन्दबुद्धि कौन? पहले श्लोक में बताया था।

श्रोता : यह विनय से ऐसा ही कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ऐसा ही है, परन्तु परम्परा से चली आयी है। यह अधिकार है।....मिली है इन्हें। विस्तार भले फिर स्वयं ने किया, परन्तु वस्तु इन्हें परम्परा में मिली थी।

कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय। अब कारणशुद्धपर्याय की व्याख्या। **यहाँ सहज शुद्ध निश्चय से,...** स्वभाविक शुद्ध निश्चय से त्रिकाल **अनादि-अनन्त,...** आदि नहीं, अन्त नहीं **अमूर्त,...** रंग, गन्ध, रस, स्पर्शरहित **अतीन्द्रियस्वभाववाले...** इन्द्रिय से रहित अतीन्द्रियस्वभाववाले **और शुद्ध ऐसे सहजज्ञान...** त्रिकाली। स्वभाविक ज्ञान त्रिकाली अनादि अनन्त। **सहजदर्शन...** त्रिकाली अनादि-अनन्त। **सहजचारित्र...** त्रिकाली अनादि-अनन्त। अन्दरस्वभाव, हों। प्रगट चारित्र की यह बात नहीं है। **सहज परमवीतरागसुखात्मक...** स्वभाविक परमवीतराग अमृतस्वरूप... आहाहा! त्रिकाली।

शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप... ऐसे शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप। आहाहा! **जो स्वभाव-अनन्त**

चतुष्टय का स्वरूप,... जो **अन्तःतत्त्वस्वरूप जो स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप,...** चार कहे न ? ज्ञान, दर्शन, चारित्र और सुख। ऐसे **अनन्त चतुष्टय का स्वरूप, उसके साथ की...** अब यह कारणपर्याय आयी। आहाहा! **जो पूजित पंचम भावपरिणति...** आहाहा! **(उसके साथ तन्मयरूप से रहनेवाली...)** अनन्त चतुष्टय के साथ तन्मयरूप से रही हुई **(जो पूज्य...)** कारणपर्याय **(ऐसी पारिणामिकभाव की परिणति),...** त्रिकाली पारिणामिकभाव की पर्याय। **वही कारणशुद्धपर्याय है—ऐसा अर्थ है।** यह बात एकदम नयी है।

उस समय कहा था। ऐसा कैसे है ? (संवत्) २००० के वर्ष में। १९वीं गाथा (तक) का व्याख्यान आयेगा। पहले १९वीं गाथा है न ? कि वास्तव में वस्तु का स्वरूप ऐसा है, पुद्गल एक ओर रखो। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल – इनका द्रव्य पारिणामिकभाव से, इनका गुण पारिणामिकभाव से और इनकी पर्याय पारिणामिकभाव से। चार। पारिणामिकभाव वह तो ठीक। यह तो आत्मा के राग को भी पारिणामिकभाव कहा है। निमित्त की अपेक्षा से उदयभाव परन्तु आत्मा पारिणामिकभाव है, उसकी परिणति राग की हुई, उसे जयधवल में पारिणामिकभाव कहा। जयधवल में। चार पर्याय उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक को पारिणामिक कहा है और त्रिकाली को परमपारिणामिकभाव कहा है।

अब, यहाँ जब चार द्रव्य में उसकी उत्पाद-व्यय की पर्याय, द्रव्य से पूर्ण, गुण से पूर्ण और पर्याय में एकरूपी एक सदृश्य पर्याय अनादि-अनन्त। कम, विपरीत, पूर्ण – ऐसा भेद उसमें नहीं। समझ में आया ? अर्थात् कि चार द्रव्यों में पर्याय एक सरीखी परिपूर्ण एक सरीखी है, तब वह पारिणामिकभाव पूरा हुआ।

इसी प्रकार आत्मा में द्रव्य त्रिकाली, गुण त्रिकाली, पारिणामिकभाव से और पर्याय एक सरीखी उत्पाद-व्ययवाली नहीं। संसार में वीतराग का उत्पाद वह भी रहता है, फिर मोक्षमार्ग में निर्विकारी पर्याय की उत्पत्ति, पश्चात् मोक्ष में निर्विकारी पूर्ण की उत्पत्ति, तो वह एकरूप नहीं रहा, भेद पड़ गया, तो उसमें भी एकरूप कारणपर्याय होनी चाहिए। थोड़ा सूक्ष्म है।

इन चार द्रव्यों में जब एकरूप उत्पाद-व्यय.. उत्पाद-व्ययरूप से सरीखी है और आत्मा में उत्पाद-व्यय की पर्याय सरीखी नहीं है। वह सरीखी है। विकार, मोक्षमार्ग (ऐसी एक सरीखी नहीं है)। तो उस पारिणामिकभाव की एक पर्याय जैसे उनमें एक सरीखी है, वैसी इसमें एक सरीखी होना चाहिए, वह कारणपर्याय में डाला है। एक न्याय से ऐसा है।

और वेदान्त ऐसा कहता है कि पर्याय नहीं है। वह तो ध्रुव है तो यहाँ तो उसकी पर्याय है, ध्रुव की जैसी एक कारणपर्याय भी त्रिकाल है। उत्पाद-व्ययवाली पर्याय तो है परन्तु एक कारणपर्याय भी अनादि-अनन्त है कि जिसमें पारिणामिकभाव पूरा हुआ। पर्याय बिना का, उत्पाद-व्यय की पर्याय बिना का। द्रव्य से शुद्ध एकरूप, गुण से शुद्ध एकरूप और पर्याय से शुद्ध एकरूप तो उत्पाद-व्यय में है नहीं, इसलिए एक कारणशुद्धपर्याय एकरूप त्रिकाल है, ऐसा भगवान ने सिद्ध किया है। समझ में आया? आहाहा! यह बात १५वीं गाथा के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। अन्यत्र तो श्वेताम्बर में ३२-४५ (सूत्र में) तो नहीं... आहाहा!

यहाँ कारणशुद्धपर्याय क्यों कही? पुद्गल की बात नहीं लेना क्योंकि पुद्गल में, पूरण-गलन स्वभाव है। चार द्रव्यों में एक सरीखी पारिणामिकभाव की पर्याय है, तब आत्मा में पारिणामिकभाव की पर्याय अथवा उत्पाद-व्यय की पर्याय एक सरीखी नहीं है, तो एक सरीखी अन्दर होना चाहिए कि जिसमें द्रव्य की पूर्णता हो। द्रव्य की पूर्णता, हों! द्रव्य स्वयं पूर्ण, उसके गुण पूर्ण और यह कारणपर्याय भी पूर्ण शुद्ध ध्रुव है, उत्पाद-व्यय नहीं, तब परमपारिणामिकभाव वहाँ पूरा होता है। जैसे धर्मास्ति, अधर्मास्ति एकरूप पर्याय से पूर्ण होता है, तब इसका उसमें कारणपर्यायसहित में एकरूप पूर्ण होता है। समझो, यह तो आयी हुई बात है। समझ में आया? यह १९वीं गाथा में कहा गया है। १९ गाथा (तक) का व्याख्यान है न, इस पहले अध्याय का? २००० के वर्ष का, बत्तीस वर्ष हुए। समझ में आया?

इसलिए द्रव्य जब पूर्ण, गुण पूर्ण, एक सरीखा, पर्याय एक सरीखी पूर्ण उत्पाद-व्यय में है नहीं, इसलिए एक कारणपर्याय पूर्ण अनादि-अनन्त है, ऐसा कहकर भगवान ने द्रव्य-गुण-पर्याय को सिद्ध किया है। आहाहा! समझ में आया? इसीलिए यह कहा कि इस आत्मा में स्वाभाविक ज्ञान, दर्शन, सुख आनन्द, यह चतुष्टय है, उसके साथ रही हुई, उसके साथ परमपारिणामिकभाव जो त्रिकाल, उसके साथ रही हुई कारणपर्याय, वह परमपारिणामिकभाव की पर्याय है। चार पर्याय परमपारिणामिकभाव की नहीं। चार—उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक। पारिणामिकभाव की पर्याय है और ये तीन होकर परमपारिणामिकभाव की बात है। यह विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१३ श्री नियमसार, गाथा-१५ प्रवचन - १६०
दिनांक - २३-०१-१९७६

शुद्धकारणपर्याय चलती है, जरा सूक्ष्म विषय है। फिर से। यह 'फिर से' बराबर कहा?

वहाँ, स्वभावपर्यायों और विभावपर्यायों के बीच प्रथम स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही जाती है, कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय। अब यहाँ कारणशुद्धपर्याय की व्याख्या चलेगी। **यहाँ सहज शुद्ध निश्चय से, अनादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाले और शुद्ध ऐसे सहजज्ञान...** यह चतुष्टय का विषय हुआ। **सहजज्ञान...** त्रिकाली, **सहजदर्शन...** त्रिकाली, **सहजचारित्र...** त्रिकाली, अनादि-अनन्त है न? **सहज परमवीतरागसुखात्मक...** यह त्रिकाली, ऐसा **शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप जो स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप,...** ऐसा शुद्ध अन्तः तत्त्वस्वरूप त्रिकाल। **स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप,...** चार स्वभाव अनन्त चतुष्टय कहे न? ज्ञान, दर्शन, चारित्र और आनन्द-सुख, ऐसे **अनन्त चतुष्टय का स्वरूप, उसके साथ की...** यह नयी बात है। यह अन्यत्र कहीं नहीं है। दिगम्बर शास्त्र में भी इसके (नियमसार के) अतिरिक्त कहीं अन्यत्र स्पष्ट नहीं है, स्पष्ट नहीं है। अन्दर कहीं होगी। यह शुद्धचेतनापद्धति में कहीं लगती है।

यहाँ कहते हैं कि आत्मा में एक अनादि-अनन्त चतुष्टयस्वरूप अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त चारित्र-सहजचारित्र। आत्मा में सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजचारित्र और आनन्द—सुख, ऐसा जो **शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप जो स्वभाव-अनन्त चतुष्टय...** उसमें रहा हुआ अनन्त चतुष्टय, ये दर्शन-ज्ञान कहे वे। **उसके साथ की...** अनन्त चतुष्टय के साथ की **जो पूजित पंचम भावपरिणति...** अब इसमें बहुत सूक्ष्म प्रकार हैं। उस समय समुद्र का दृष्टान्त दिया था। समुद्र है न, ऐसा पूरा समुद्र? पानी का दल भरा है, और फिर समुद्र के ऊपर सपाटी होती है। नक्शा बनाया है। देखा है या नहीं? एकसरीखी सपाटी ऊपर होती है, फिर उसके ऊपर पानी की कम-ज्यादा ऐसी लहरें होती हैं।

इसी प्रकार आत्मा वस्तु है, वह समुद्र स्वरूप है। उसमें अनन्त गुण बसे हुए हैं। जैसे

यह पानी में शीतलता आदि है, वैसे इसमें अनन्त गुण हैं। अब ये गुण और यह द्रव्य, उसके ऊपर की एकसरीखी सपाटी, उसे यहाँ शुद्धकारणपर्याय कहते हैं। सूक्ष्म बात है। प्रचलित सम्प्रदाय में बात कहीं है नहीं।

श्रोता : इसकी गन्ध भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बात ही नहीं है। यह बात नहीं। यह बात तो एकदम यहाँ ही नयी है। (संवत्) २००० के वर्ष में मस्तिष्क में आवे, इस प्रकार से इसका स्पष्टीकरण किया था, तब नारणभाई थे। समुद्र के ऊपर... वहाँ नक्शा है। एक सरीखी सपाटी है न? और उसके ऊपर परिणमन की लहरें (होती हैं), इसी प्रकार आत्मद्रव्य समुद्र स्वरूप, उसमें अनन्त गुण का पिण्ड, वह पूरा स्वरूप और उसकी एक समय की पारिणामिकभाव की पर्याय, सपाटीरूप पारिणामिकभाव की एक सरीखी (पर्याय), वह कारणपर्याय है। उस पारिणामिकभाव के साथ पारिणामिकभाव की कारणपर्याय है और उसके ऊपर उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, ये समुद्र की ऊपर की चार पर्यायें। आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया? यह नक्शा वहाँ रखा है।

इसी प्रकार इस आत्मा में त्रिकाली अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु ध्रुव, पारिणामिक सहजस्वभावभाव के साथ रही हुई... जैसे समुद्र के ऊपर एक सरीखी सपाटी है, वैसे यह कारणपर्याय अनादि-अनन्त ध्रुव, उत्पाद-व्ययरहित, परमपारिणामिकभाव के साथ वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान, जिसका त्रिकाल है, उसके साथ यह वर्तमान है तो ध्रुव। यह ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुवपर्याय अनादि-अनन्त है। वह कारणसहजचतुष्टयस्वरूप और कारणपर्याय, इसके आश्रय से कार्यपर्याय प्रगट होती है। यह विषय तो एकदम अलग है। अभी बाहर तो यह चलता है कि भाई! यह पुण्य से धर्म होता है। यह बात तो भले करे, परन्तु यह विषय तो अभी है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि अनन्त चतुष्टयस्वरूप,... जैसे समुद्र है, उसकी सपाटी जैसे एक सरीखी है, इसी प्रकार भगवान आत्मा में शुद्धकारणपर्याय पंचम पारिणामिकभाव जो चतुष्टय है, उसके साथ, वह है तो पंचम पारिणामिकभाव, परन्तु उसे पर्याय कहा। वह पर्याय उत्पाद-व्ययवाली नहीं है। ऐसी बात। क्या समझना लोगों को! वस्तु ऐसी है।

तब तो थोड़ा श्रीमद् में से कहा था। 'परिणामी पदार्थ स्व-आकार परिणामी होने पर भी अव्यवस्थितपना...' उनका मस्तिष्क बहुत काम करता था परन्तु उस समय लोग बहुत

तैयार नहीं थे। अन्दर यह एक रखा है। तब कहा था न ? 'जैनमार्ग' के छत्तीस बोल किये हैं। जैनमार्ग। उनका क्षयोपशम बहुत। उस समय वह एक ही पुरुष था। जैनमार्ग, ऐसी व्याख्या करके फिर लोकसंस्थान (कहा है)। वह लोकसंस्थान जैनमार्ग में है, अन्यत्र कहीं नहीं है। ऐसे-ऐसे छत्तीस बोल कहे हैं। उसमें छत्तीसवाँ बोल। अपने अभी इसके साथ काम है। परिणामीपदार्थ। समुच्चय आया है, उसे समुच्चय लें। निरन्तर स्व-आकार परिणामी। स्व आकार, इतने बड़े अक्षर में लिखा है। फिर वे समझे नहीं, इसलिए सबके साथ सरीखे अक्षर कर डाले। क्या कहा, समझ में आया ? स्व-आकार ये शब्द है, उसमें कुछ विशेष समझना है। इसलिए स्व-आकार बड़े अक्षर में लिखा था। अब वर्तमान वे समझते नहीं, इसलिए स्व-आकार शब्द एक सरीखे अक्षर कर डाले। देखो ! है ? स्व-आकार, बड़े अक्षर में। वहाँ नजर खिंचती है कि कुछ है।

परिणामी पदार्थ निरन्तर स्व-आकार परिणामी होता है। स्व-आकार के परिणाम पर्यायरूप हों, तो भी अव्यवस्थितपना ! तथापि और पर्याय में अव्यवस्थित ! आत्मा परिणामी पदार्थ है। उसकी पर्याय भी एक सरीखी परिणामी पदार्थ की स्व-आकार ही पर्याय होती है। यह हिन्दी में आवे, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? तथापि अव्यवस्थित ! उत्पाद-व्यय में अव्यवस्थित है। चन्दुभाई ! सूक्ष्म बात है, भगवान ! यह तो अन्तर की आयी हुई बात है। फिर पढ़ते समय.. समझ में आया ? (संवत्) २००९ के वर्ष। पहले जब पढ़ा था, तब अन्दर से आया था, वह बात की थी। आहाहा !

यह वस्तु है, इसमें जो अनन्त गुण हैं, वे पारिणामिकभाव से हैं, तो इसकी पारिणामिकभाव की पर्याय भी स्व-आकार होनी चाहिए। वह कारणपर्याय। और फिर भी अव्यवस्थितपना उत्पाद-व्यय में है। संसार की पर्याय विकारी; मोक्षमार्ग की पर्याय किंचित् शुद्ध और किंचित् अशुद्ध तथा मोक्ष की पर्याय शुद्ध - ऐसे तीन भेद आये। अव्यवस्थित-एकरूप नहीं रही। समझ में आया ? पर्याय में तीन प्रकार पड़ गये। संसार उदय आदि की विकारी अवस्था; पश्चात् मोक्षमार्ग की; पश्चात् (मोक्ष की)। उत्पाद-व्यय के तीन प्रकार पड़ गये। एक सरीखी नहीं रही, तो एक सरीखी पर्याय अन्दर होना चाहिए।

जैसे चार द्रव्य में एक सरीखी पर्याय है। समझ में आये, उतना पकड़ना। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, और काल - चार में जैसे उत्पाद-व्यय की परिणामिक पर्याय एक सरीखी है, एक सरीखी। इसी प्रकार आत्मा में पारिणामिकभाव की उत्पाद-व्यय की पर्याय है, वह तो एक सरीखी नहीं है। तब उसकी एक सरीखी पर्याय होनी चाहिए, वह कारणपर्याय।

आहाहा! समझ में आया? यह १९वीं गाथा (तक) में आ गया है, २००० के वर्ष में व्याख्यान में। पण्डितजी ने नहीं लिया। इस नियमसार की १९वीं गाथा का व्याख्यान दिया है, उसमें है। (संवत्) २००० के वर्ष में व्याख्यान। बत्तीस वर्ष हुए। आहाहा!

द्रव्य वह आत्मा वस्तु, उसमें यह पारिणामिकभाव। गुण ज्ञान-दर्शन आदि, वे भी पारिणामिकभाव, ऐसी ही एक पर्याय पारिणामिकभाव की स्व आकार होनी चाहिए। तो उत्पाद-व्यय की पर्याय स्व-आकार तो है नहीं। समझ में आया? इसलिए उसमें वह कारणपर्याय यहाँ आचार्य मुनिराज ने कही है। यह तो कहते हैं कि गणधर से चली आयी यह टीका है, कुछ हमारे घर की बनायी हुई नहीं है। आहाहा! अध्यात्म की बात बहुत सूक्ष्म, भाई!

शुद्धचेतनापद्धति में ऐसा लिया है। बनारसीदास ने परमार्थवचनिका में ऐसा कहा है कि आगमपद्धति और शुद्धचेतनापद्धति, वह परमार्थवचनिका में लिया, वह बहुत सूक्ष्म है। पढ़ा गया है। आगमपद्धति उसे कहते हैं कि वस्तु का स्वभाव, ऐसा लिखा है। स्वभाव का अर्थ यह कि पुद्गल के स्वभावपरिणाम, उसे आगम द्रव्यपरिणाम कहते हैं और पुद्गल के आकार जो आत्मा में अशुद्धपरिणति होती है, वह भाव आगमपद्धति के परिणाम गिनने में आये हैं। पश्चात् शुद्धचेतनापरिणाम लिये हैं। है? यह तो श्रीमद् का है।

आगम-अध्यात्म का स्वरूप। यहाँ गुजराती है। वस्तु का जो स्वभाव, उसे आगम कहते हैं। ऐसी शैली ली है। आगम से चला आया। है.. है.. है.. है.. पुद्गल के परिणाम को पुद्गलाकार अशुद्धपरिणाम विकारी। आत्मा का जो अधिकार, उसे अध्यात्म कहते हैं। आगम और अध्यात्मस्वरूपभाव आत्मद्रव्य के जानना अर्थात् आत्मद्रव्य के साथ पुद्गल के परिणाम और विकारी परिणाम, ये यहाँ लेना, दूसरे नहीं लेना। दोनों को संसार अवस्था में त्रिकालवर्ती मानना। आगमरूप कर्मपद्धति है। पहले कहा था कि वस्तु का स्वभाव, उसे आगम कहते हैं। पश्चात् यहाँ कहा कि आगम कर्मपद्धति है और अध्यात्मरूप शुद्धचेतनापद्धति है। इसका विवेचन।

कर्मपद्धति पुद्गली द्रव्यरूप। यह व्याख्यान विस्तार से हो गया है। जरा सूक्ष्म पड़े सभा को तो एकदम। आहाहा! अथवा भावरूप। आगमपद्धति, उसका भाव वह स्वभाव कर्मपद्धति। उस कर्मपद्धति के दो प्रकार, एक द्रव्यरूप और एक भावरूप। द्रव्यरूप पुद्गल के परिणाम। कर्म का उदय जो है, वह पुद्गल का परिणाम है, वह आगमपद्धति के

द्रव्य-भाव। भावरूप पुद्गलाकार की आत्मा की अशुद्धपरिणति। सूक्ष्म बात। आत्मा में जो विकार होता है, वह पुद्गलाकार। विकारी पर्याय है न? इसलिए पुद्गल के परिणाम कहा है न? भावरूप पुद्गलाकार आत्मा की अशुद्धपरिणति पर्याय, वे दोनों परिणाम आगमरूप स्थापित किये। अब शुद्धचेतनापद्धति। बनारसीदास, बहुत गहरे गये। अध्यात्म में बहुत गहरे गये हुए।

शुद्धचेतनापद्धति शुद्धात्मपरिणाम। वह भी द्रव्यरूप और भावरूप। शुद्धात्मपरिणाम दो प्रकार के : द्रव्यरूप और भावरूप। द्रव्यरूप तो जीवत्वपरिणाम, पूरे द्रव्य के एकसाथ परिणाम। परिणाम, हों! भावरूप ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि अनन्त गुण परिणाम। ये दोनों परिणाम अध्यात्मरूप जानना। एक तो जीव के परिणाम जो कहे और जीव के जो परिणाम कहे वह पर्याय कारणपर्याय में जाती हो, ऐसा विचार में आया था। विषय एकदम सूक्ष्म है। आहाहा! अन्यत्र-श्वेताम्बर में तो कहीं यह बात है नहीं, परन्तु दिगम्बर में भी यह १५वीं गाथा के अतिरिक्त कहीं नहीं है। पश्चात् यहाँ से समझने के बाद अन्यत्र निकले, वह अलग बात है। समझ में आया? तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म, भगवान!

कहते हैं कि जो आत्मा त्रिकाली वस्तु, उस पूरे द्रव्य का परिणाम, वह समुच्चय द्रव्य-परिणाम कहे। और एक-एक गुण के परिणाम, वे भावपरिणाम कहे। उन परिणाम में कारणपर्याय की आकृति जाती है ऐसा... कैसे? कि वह अशुद्धपरिणति तो पुद्गलाकारभाव। अशुद्धपरिणति पुद्गलाकारभाव, उसे आगमपद्धति में डाल दिया।... आहाहा! और अन्तर में जो शुद्ध त्रिकाली गुण और त्रिकाली द्रव्य, उसके परिणाम। वे परिणाम, हों! आहाहा! वे परिणाम, उन्हें ध्रुव का अंश है, ऐसा लगता है। जो यहाँ कहा वह।

यहाँ यह कहा... आहाहा! तब तो जरा विस्तार से कहा था। जैसे छोटी पीपर है न, छोटी पीपर। उसमें जो चरपराहट है न, चरपराहट? वह पर्यायरूप चरपराहट है। स्वयं चरपराहट से पर्याय है। रसगुण की चरपराई पर्याय है। छोटी पीपर है, उसके प्रत्येक परमाणु में चरपराहट अर्थात् चरपराई रसगुण की पर्याय प्रगट है और उसे घोंटते-घोंटते जो चौसठ पहरी बढ़ती है, उस पर्याय में ऐसी ताकत है कि उसमें से बढ़ती है। रेत है। वेलू-वेलू समझते हो? रेत। उस रेत की पर्याय में चरपराहट पर्याय प्रगट नहीं है। परमाणु में रसगुण है। रेत के द्रव्य में परमाणु की जो शक्ति रसगुण है, वह तो है, परन्तु रसगुण की पर्याय जैसी छोटी पीपर में रसगुण की चरपरी पर्याय प्रगट है, उस प्रकार से परमाणु-रेत में रसगुण की पर्याय चरपरी नहीं है। उसकी साधारण ऐसी पर्याय है। इसलिए रेत को घोंटने से चौंसठ पहरी (चरपराहट)

नहीं होती। क्योंकि प्रगट पर्याय में चरपराहट पर्याय में नहीं है। रसगुण में है। रसगुण में चरपराहट, यह क्या कहलाता है? मिठास, खटास यह सब पर्याय होने की सामर्थ्य है परन्तु पर्याय में वहाँ चरपराहट-चरपराई जैसी छोटी पीपर में है, वैसी इसमें नहीं है तो इसे घोंटने से चरपराहट... अन्दर जब रसगुण परिणमकर होता है। जैसे रसगुण परमाणु में-रेत में साधारण है। यह.. लेना। रसगुण की पर्याय। परन्तु वह रसगुण की पर्याय जब शक्ति में से प्रगट होती है, तब फीकापन घटकर चरपराहट हो, वह तो रसगुण में से आती है। समझ में आया? और जो चरपराहट छोटी पीपर में है, उसमें तो चरपराहट की चरपराई, रसगुण की चरपराहट बाहर प्रगट है। जरा सूक्ष्म बात है, भाई! तब थोड़ा कहा था (संवत्) २००० में... आहाहा!

इसी प्रकार इस भगवान आत्मा में परिणाम जो कारणपर्याय गिनने में आयी, वह तो अन्दर ध्रुवरूप से है। जैसे गुण ध्रुव है, वैसी कारणपर्याय भी ध्रुवरूप से है। समझ में आया? प्रगटरूप से तो कोई उदयभाव, कोई उपशमभाव, कोई क्षायिकभाव वह प्रगट पर्यायरूप है। समझ में आया? आहाहा! इसलिए एक ऐसी पर्याय यहाँ भगवान ने गिनी, मुनिराज ने सत् कहा कि जैसे द्रव्य ध्रुव त्रिकाल है, वैसे उसके अनन्त गुण—ज्ञान, दर्शन आदि त्रिकाल है, वैसे उसकी वर्तमान पारिणामिकभाव की पर्याय शुद्धकारणपर्याय भी त्रिकाल है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है, भाई! यह अधिकार १५वीं गाथा के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। इससे यहाँ... आहाहा!

भगवान का विरह पड़ा, केवलज्ञान की उत्पत्ति... नहीं और अकेला शास्त्र आधार रह गया। उसमें भी यह दिगम्बर शास्त्र गजब काम करते हैं। केवलियों ने कही हुई बात एक-एक बात इतनी स्पष्ट रखते है। कहते हैं कि उस **अनन्त चतुष्टय का स्वरूप के साथ...** देखा? त्रिकाल जो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्दगुण जो है, उसके साथ—गुण के साथ। **जो पूजित पंचम भावपरिणति...** उस समय तो ऐसा कहा था, थोड़ा सूक्ष्म है, कि जैसे यह आत्मा द्रव्य है और गुण त्रिकाल है, उसमें यह कारणपर्याय वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. वह त्रिकाल त्रिकाल रूप है, यह वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. ध्रुव पर्याय है। ऐई! पकड़ में आये उतना पकड़ना, भाई! यह तो भगवान का मार्ग बहुत अद्भुत, भाई! आहाहा!

क्या कहा? कि जो आत्मा सहज पारिणामिकभाव से है, उसके अनन्त चतुष्टय भी सहज पारिणामिकभाव से है, उसके साथ एक पर्याय भी पारिणामिकभाव से सहज है क्योंकि चार—धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल—में उत्पाद-व्यय की पर्याय एक सरीखी है, ऐसी एक सरीखी पर्याय आत्मा में संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष में नहीं है। वहाँ भेद पड़ गये,

अव्यवस्थित हो गयी, अव्यवस्थित है। इसलिए श्रीमद् ने कहा, परिणामी पदार्थ स्व-आकार परिणामी होने पर भी अव्यवस्थितपना (क्यों) ? आहाहा! अर्थात् ? भगवान आत्मा स्वगुण—द्रव्य, ऐसे ही आकार से पर्याय अन्दर। स्व पारिणामिक के आकार की पर्याय, ऐसा होने पर भी उत्पाद-व्यय-पर्याय में अव्यवस्थितपना। ऐई!

श्रोता : उत्पाद-व्ययरूप...

पूज्य गुरुवेश्री : उत्पाद-व्यय में अव्यवस्थितपना है। दूसरे में व्यवस्थितपना समान है। चार द्रव्यों में उत्पाद-व्यय अव्यवस्थित नहीं है। व्यवस्थित अनादि-अनन्त एक ही धारा है। जरा सूक्ष्म बात है, भाई! इसी प्रकार आत्मा में उत्पाद-व्यय की पर्याय एक सरीखी नहीं है। विकाररूप, मोक्षमार्गरूप, मोक्षरूप (है); तो उसकी व्यवस्थित एक अवस्था, पारिणामिकभाव की परिणति एक सरीखी होनी चाहिए, वह यह कारणपर्याय है। समझ में आये, उतना पकड़ो। भाई! यह तो अन्दर से आयी हुई बात है। आहाहा!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, शुद्धकारणपर्याय पारिणामिकभाव से ध्रुव।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपरिणामी, बिल्कुल बदलती नहीं। आहाहा! नीचे लिखा है, देखो!

सहजज्ञानादि स्वभाव... नीचे नोट। **अनन्त चतुष्टययुक्त कारणशुद्धपर्याय में से...** है न ? सहजज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि! **स्वभाव अनन्त चतुष्टययुक्त कारणशुद्धपर्याय में से केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टययुक्त कार्यशुद्धपर्याय प्रगट होती है।** अनन्त चतुष्टययुक्त कारणशुद्धपर्याय में से केवलज्ञान प्रगट होता है। **कार्यशुद्धपर्याय प्रगट होती है। पूजनीय परमपारिणामिकभावपरिणति, वह कारणशुद्धपर्याय है और शुद्ध क्षायिकभावपरिणति, वह कार्यशुद्धपर्याय है।** समझ में आया ? पारिणामिकभाव की वर्तमान कारणशुद्धपर्याय वह अनन्त चतुष्टयसहित कारणपर्याय है और उसके आश्रय से कार्यशुद्धपर्याय प्रगट होती है, वह उत्पाद-व्यय की पर्याय। गुण पर्याय ध्रुव की पर्याय। द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों ध्रुव। तथा यह प्रगट होती है, वह कार्यपर्याय उत्पाद-व्यय की पर्याय है। आहाहा! भारी कठिन काम। ओहोहो! है न ?

पूजनीय परमपारिणामिकभावपरिणति, वह कारणशुद्धपर्याय है और शुद्ध क्षायिकभावपरिणति, वह कार्यशुद्धपर्याय है। कारणशुद्धपर्याय की व्याख्या अपने आ गयी है। समझ में आया? **पूजित पंचम भावपरिणति...** आचार्य मुनिराज ने भाषा ऐसी ली है न? आहाहा! उस कारणशुद्धपर्याय में से कार्यशुद्धपर्याय प्रगट होती है परन्तु वह कारणशुद्धपर्याय अनन्त चतुष्टयसहित की कारणशुद्धपर्याय है, उसमें से कार्यशुद्धपर्याय प्रगट होती है। इसमें कुछ करना क्या, ऐसा आता है कहीं? भाई! यह आता है, बापू! वस्तु, वस्तु की शक्ति और वस्तु की दशा, वह क्या है, इसका निर्णय करना। यह वस्तु की स्थिति है। समझ में आया? आहाहा! और उसमें एकाग्र होना। यह द्रव्य-गुण-पर्याय जो त्रिकाली कही, उसमें एकाग्र होना, वह धर्म की दशा है। वह वर्तमान दशा है। आहाहा! प्रवचनसार में ध्येय कहाँ आया, रात्रि को पूछा था न? भूतार्थ तो सब बहुत जगह है न। आहाहा! इतना... इतना आया। आधे घण्टे चला। आहाहा!

(पूज्य ऐसी पारिणामिकभाव की परिणति),... दशा ऐसी है न? है न? अनन्त चतुष्टयस्वरूप, उसके साथ।

श्रोता : पूज्य अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूजनीय, आदरणीय।

श्रोता : उसका आश्रय करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय करना। आदरणीय कहो, उपादेय कहो। वह पूज्य परिणति आदरणीय है। आहाहा! समझ में आया? त्रिकाली ध्रुव है, उसमें से तो निर्मलपर्याय आती है परन्तु कहते हैं कि यहाँ कारणशुद्धपर्याय यदि नजदीक में न हो तो उसमें कार्यशुद्धपर्याय कहाँ से आयेगी? ध्रुव में है। परन्तु वह ध्रुव और कारणपर्याय दो, उसके आश्रय से कार्यपर्याय होती है।

श्रोता : वह द्रव्य में से आती है या....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तीन में से होकर आती है। वापस बात करेंगे। एक लाईन लिखी है।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो दूसरी बात। यह तो दृष्टान्त था। ऐसा कि मूँग के दानों का ढ़ेर हो, मूँग का। अब पक्षी बैठा हो तो उसे उड़ने के लिए नीचे जोर देना नहीं, क्योंकि जोर देने

जाए तो ढ़ेर खिर जाए। समझ में आया ? परन्तु यह तो संहनन की मजबूती की अपेक्षा बात है। सूक्ष्म कहा है। मूँग, उड़द। आठ-दस मण खुले पड़े हों। उन पर पक्षी बैठा हो और उसे उड़ना हो तो नीचे जोर नहीं दे सकता। ऐसे यदि वह उड़ने जाएगा तो खिसक जाएगा। इसी प्रकार ज्ञानी को अन्तर की पर्याय में जोर देने में उत्पाद-व्यय की पर्याय काम नहीं करती। नीचे अन्दर ध्रुव है, उसके ऊपर जोर देने से उत्पाद-व्यय की पर्याय प्रगट होगी। इसलिए इस अपेक्षा से लिया था।

श्रोता : ध्रुव के ऊपर जोर कौन देता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वयं पर्याय। प्रगट पर्याय होती है वह।

श्रोता : उत्पाद-व्यय पर्याय।

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्पाद की। वह ध्रुव है, उसके ऊपर पर्याय जोर देगी, तब एकाग्र होगी। आहाहा! ऐसा है, भाई! यह तो सब खबर है। ४१ वर्ष हुए। बहुत दृष्टान्त और बहुत चीज़। आहाहा! यह अधिक स्पष्ट है। है ?

अन्त:तत्त्वस्वरूप, अन्त:तत्त्वस्वरूप, अनन्त ज्ञान-दर्शनस्वरूप, ऐसा **स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप, उसके साथ की जो पूजित पंचम भावपरिणति, वही कारणशुद्धपर्याय है...** आहाहा! वह पर्याय ध्रुव है परन्तु एक न्याय से ध्रुव जो त्रिकाली है, ऐसी यह वर्तमान पर्याय ध्रुव है परन्तु आगे विचार करते अन्दर चलता नहीं था। यह पर्याय वह की वह पर्याय, उसमें रहा करती है या नयी उत्पन्न होती है ? तब मस्तिष्क काम नहीं करता था। वहाँ तक अटक गया। क्या कहा, समझ में आया ?

श्रोता : वह की वह पर्याय...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बस वर्तमान। वह ध्रुव पर्याय है, उसे तो अनादि-अनन्त कही। अब है वह वास्तव में तो द्रव्य-गुण सामान्य है, उसका यह विशेष है। विशेष उत्पाद-व्ययवाला नहीं; ध्रुव का, तथापि उस विशेष की पर्याय मस्तिष्क में नहीं बैठती थी। वह पर्याय वह की वही और ऐसी रहा करती है ? या नयी-नयी होती है ? नयी-नयी होवे तो परिणमन हो गया। उत्पाद हो गया। उस समय ऐसा का ऐसा रहे, ऐसा मस्तिष्क में भासित हुआ। भासित हुआ, इसलिए कहा गया। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया ? हिम्मतभाई! यह उस दिन का ही है। यह कोई नया नहीं है। बत्तीस वर्ष पहले का है। भाई ने लिया न, नागरभाई लाये थे। उसमें लिखा था कि जैसे द्रव्य ध्रुव है, ऐसा गुण ध्रुव है, ऐसी यहाँ

कारणपर्याय ध्रुव है परन्तु उसे कारणपर्याय कहा, तो जैसे द्रव्य ध्रुव एक सरीखा जैसे चला आता है, वैसे यह ध्रुव पर्याय एक सरीखी चली आती है अर्थात् क्या? वह की वह पर्याय ऐसी की ऐसी चली आती है? वह तो वही जो पर्याय है, वह ऐसी की ऐसी चली आवे नयी ध्रुवरूप से। यह बहुत मस्तिष्क काम में लगाया, बहुत विचार किया था। यह तो सब अपने आप ही करने का था न! समझ में आया?

श्रोता : हमें क्या समझना?

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना इस प्रकार से समझना। क्योंकि जब इसे ऐसा कहना कि त्रिकाली के साथ वर्तमान पर्याय है तो वह वर्तमान पर्याय अर्थात् क्या? उत्पाद-व्यय तो है नहीं। और ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... अब वह अंश ऐसा का ऐसा चला आता है, तब उसे कारणशुद्धपर्याय कहते हैं। वह की वही चली आती हो अर्थात् क्या? यह मस्तिष्क में बैठे...

श्रोता : कारणभेद से भेद पड़ता है...?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और तुम्हारा काम नहीं। समझ में आया? यह चलता है, वैसे चलने दो।

वहाँ तो ऐसा कहा था और विचार में ऐसा चला है कि वस्तु जो त्रिकाल है, ऐसा ही त्रिकाली ध्रुव सामान्य गुण त्रिकाल है। अब उसकी पर्याय यहाँ गिने तो वह वास्तव में तो सामान्य विशेष हो गयी, है ध्रुव। वह उत्पाद-व्यय का ध्रुव नहीं और उत्पाद-व्यय की पर्याय नहीं, है ध्रुव। परन्तु वह ध्रुव का अंश है, वह कायम ऐसा का ऐसा रहता है। ऐसा कायम रहे। वह कायम रहे, वह किस प्रकार रहे? ऐसा विचारने पर अटक गया। ऐसी पर्याय है, वह की वह, ऐसी की ऐसी रहे? जैसे यह ध्रुव... वह यहाँ शक्ति दी इसलिए तो ऐसी की ऐसी रहती है परन्तु वह तो पर्याय है, उसके साथ की दशा है, तो वह दशा वह की वह रहे? ऐसा जानने में आया। दूसरा विशेष स्पष्ट नहीं होता। मस्तिष्क में आवे उतना होवे न! आहाहा! आचार्य के हृदय तो गम्भीर हैं, भाई! आहाहा! दिगम्बर सन्तों के हृदय ज्ञान से बहुत गम्भीर और गहरे! बहुत उत्तराधिकार छोड़ गये हैं। समझ में आया? अपनी शक्ति प्रमाण उसमें से निकलेगा। गुरुगम है नहीं। बाहर में तो गुरुगम रहा नहीं। आहाहा!

श्रोता : पूर्व का गुरुगम है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहने का था कि पूर्व में भगवान के पास सुना था, वह अन्दर कुछ था। आहाहा! गजब काम किया है न! एक तो पर्याय कहना और ध्रुव कहना!

पर्याय कहना और पारिणामिकभाव कहना! वास्तव में तो यह श्रीमद् ने कहा है न? परिणामी पदार्थ स्व-आकार परिणामी होने पर भी अव्यवस्थितपने। वह आत्मा के लिए विचार आया था। वह लिखा है। ऐसे देखो तो पर्याय आत्मा, उसकी पर्याय स्व-आकार पूरी एक सरीखी पूरी होना चाहिए, तथापि उत्पाद-व्यय में तो अव्यवस्थित है। समझ में आया? उत्पाद-व्यय में अव्यवस्थित है और... ऐसा सूक्ष्म है जरा। आहाहा!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तुम्हारा काम नहीं इसमें। यह तो अन्दर आता हो, उतना आवे। बापू! कुछ... आहाहा! इसमें कोई दूसरे का गज सूझे, ऐसा नहीं इसमें। केवली के मार्गानुसारियों की यह टीका है। आहाहा!

वही कारणशुद्धपर्याय है—ऐसा अर्थ है। देखो! अब कार्यशुद्धपर्याय की व्याख्या। **सादि-अनन्त,...** देखो! एक अनादि-अनन्त था। पहला अनादि-अनन्त था। यह सादि-अनन्त है क्योंकि केवलज्ञान पर्याय उत्पन्न होने से आदि है परन्तु केवलज्ञान पर्याय आदि उत्पन्न हुई, अन्त नहीं है, अनन्त काल रहेगी, सदृशरूप से। जो केवलज्ञान पर्याय प्रगट हुई, वही पर्याय दूसरे समय में रहेगी, ऐसा नहीं है। समझ में आया? केवलज्ञान की पर्याय एक समय में उत्पन्न हुई, तो वह तो सादि हुई और ऐसी ही पर्याय, ऐसी सरीखी दूसरे समय में होगी, परन्तु पहले थी, वह पर्याय नहीं। अन्य परन्तु वैसी। आहाहा! क्योंकि केवलज्ञान की पर्याय की अवधि ही एक समय की है। आहाहा! परन्तु यहाँ जो कहा कि जो पर्याय पूर्ण प्रगट हुई, वह पूर्ण पर्याय ऐसी की ऐसी सादि-अनन्त रहेगी, इस अपेक्षा से सादि-अनन्त कहा है। समझ में आया?

फिर से। भगवान आत्मा द्रव्य है, गुण है। अब कारणपर्याय, वह तो त्रिकाली पारिणामिकभाव हुआ। अब उसके आश्रय से केवलज्ञान प्रगट होता है, वह नया प्रगट होता है। वह गुण की भाँति अनादि नहीं है। कारणपर्याय को अनादि कहा, परन्तु इस कार्यपर्याय को सादि कहा। नयी प्रगट होती है न! सादि कहा और फिर अनन्त कहा। **सादि-अनन्त,..** तो यह पर्याय वह की वह नहीं परन्तु वैसी की वैसी अनन्त काल रहेगी, इस अपेक्षा से। (कहा है)। द्रव्यानुयोग का तत्त्व बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा! समझ में आया?

यह एक बार वहाँ मथुरा में कहा था न? कैलाशचन्दजी और बहुत पण्डित थे। मथुरा में गये तब। फूलचन्दजी नहीं थे, नहीं? फूलचन्दजी नहीं थे। तब कहा था, मथुरा में व्याख्यान चलता था। बहुत पण्डित बैठे थे। कहा, केवलज्ञान ही एक समय रहता है (सुनकर)

भड़क गये।

श्रोता : .... द्रव्य-गुण-पर्याय...

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान वह पर्याय है। पर्याय की अवधि एक समय की ही है। दूसरे समय में वह नहीं आती, दूसरे समय दूसरी पर्याय होगी परन्तु ऐसी और समान होगी, इस अपेक्षा से उत्पन्न हुई, इसलिए सादि कही; वैसी की वैसी रहेगी, इसलिए अनन्त कही, परन्तु वही पर्याय भविष्य में रहेगी, ऐसा नहीं है। मथुरा में, पण्डितजी! मथुरा है न मथुरा? वहाँ हम गये थे न, तो कैलाशचन्दजी आदि दूसरे बहुत पण्डित थे। वहाँ व्याख्यान में थोड़ी देर आये। कहा, केवलज्ञान की पर्याय एक समय की है। पण्डित भड़क गये। अरे! यह क्या? केवलज्ञान पर्याय है। पर्याय की अवधि एक समय की है, परन्तु ऐसी की ऐसी अनन्त काल रहेगी, इस अपेक्षा से सादि-अनन्त कही जाती है। तब कैलाशचन्दजी ने कहा था कि सुनो तो सही, महाराज क्या कहते हैं। बहुत वर्ष हुए (संवत्) २०१५ का वर्ष था? २०१३ का वर्ष। १९ वर्ष हुए।

यहाँ जो सादि-अनन्त कही, वह पर्याय ऐसी की ऐसी रहेगी। इस अपेक्षा से सादि-अनन्त कही, परन्तु पहले समय में जो केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, उसका दूसरे समय में व्यय होगा और दूसरे समय में दूसरी पर्याय होगी। आहाहा! उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। नयी पर्याय उत्पन्न हो, पूर्व की पर्याय व्यय होती है और ध्रुवरूप से कायम रहता है। ऐसा मार्ग वीतराग का गजब, भाई!

सादि-अनन्त, अमूर्त,... लो, उसमें-कारणपर्याय में अनादि-अनन्त था। यह सादि-अनन्त। उसमें अमूर्त था, यह भी अमूर्त। **अतीन्द्रियस्वभाववाले...** वह भी अतीन्द्रियस्वभाववाला था। **शुद्धसद्भूतव्यवहार से,...** यह बदला। उसमें निश्चय था। यह शुद्धसद्भूतव्यवहार। देखो। आहाहा! केवलज्ञानपर्याय भी शुद्धसद्भूतव्यवहार है। शुद्ध है, इसलिए पवित्र है, इसलिए शुद्ध; अपनी पर्याय है, इसलिए सद्भूत और त्रिकाल की अपेक्षा से भेद पड़ा, इसलिए व्यवहार। केवलज्ञान भी शुद्धसद्भूतव्यवहारनय का विषय है। आहाहा!

श्रोता : नय कहाँ से आये?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कहाँ? समझने के लिए है न! उसके लिए नय कहाँ है? नीचे श्रुतज्ञानी समझते हैं, उसके लिए बात है। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय भी त्रिकाल की अपेक्षा से एक अंश हुआ। भेद पड़ा न भेद? तो वह भेद पड़ा, इसलिए व्यवहार; इसकी है,

इसलिए सद्भूत; शुद्ध है, इसलिए शुद्ध। शुद्धसद्भूतव्यवहार। आहाहा! निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई, वह ऐसी की ऐसी और ऐसी की ऐसी रहती है न? उसमें त्रिकाल, वह निश्चय और यह भेद पड़ा, इस अपेक्षा से व्यवहार हुआ। व्यवहार है परन्तु इसके लिए सद्भूत है, पवित्र है; इसलिए शुद्ध है। आहाहा!

सादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्धसद्भूतव्यवहार से, केवलज्ञान-केवल-दर्शन-केवलसुख-केवलशक्ति... अर्थात् वीर्य। ऐसी **केवलशक्तियुक्त...** सहित **फलरूप...** यह केवलज्ञान फलरूप है न? यह मोक्षमार्ग का फल है। मोक्षमार्ग कारण है और यह फल-कार्य आया। **केवलशक्तियुक्त फलरूप अनन्त चतुष्टय के साथ की...** फलरूप अनन्त चतुष्टय के साथ की। यह पूरा लिया। इस साथ का अर्थ-है तो वह की वह, परन्तु उसमें पारिणामिकभाव वह साथ तो पर्याय हुई और यह अनन्त चतुष्टय है तो पर्याय, उसके साथ की अर्थात् **अनन्त चतुष्टय के साथ की (अनन्त चतुष्टय के साथ तन्मयरूप से रहनेवाली) जो परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव...** पूरी पर्याय गिनना। और चार के साथ दूसरी है, ऐसा नहीं। चार तो पर्याय है। उनके साथ दूसरी पर्याय, ऐसा नहीं, इन चार का एकरूप, इसका नाम कार्यशुद्धपर्याय है। देखो न!

परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव की... यहाँ भाव लेना है न क्षायिक? **शुद्धपरिणति...** शुद्धपर्याय। **वही कार्यशुद्ध-पर्याय है।** लो! त्रिकाली कारणशुद्धपर्याय, वह पारिणामिकभाव से है और कार्यशुद्धपर्याय, वह क्षायिकभाव से है। क्या कहा? कि आत्मा वस्तु-द्रव्य-गुण और कारणपर्याय-शुद्धकारण, वह परमपारिणामिकभाव से है और जो केवलज्ञान, केवलदर्शन हुआ, वह क्षायिकभाव है। कारणपर्याय, वह निश्चयपर्याय का विषय कहने में आया और कार्यपर्याय है, उसे सद्भूतव्यवहारनय का विषय कहा। गजब बात, भाई! इसमें तो जरा गहरा जाकर अभ्यास करे तो बैठे (जँचे) ऐसा है। आहाहा!

देखा, इतने विशेषण। **परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव की शुद्धपरिणति, वही कार्यशुद्धपर्याय है।** इसमें क्या कहा? वह कारणपर्याय तो ठीक-त्रिकाली गुण, द्रव्य के साथ पर्याय कारण। यह तो अनन्त चतुष्टय पर्याय है, उसके साथ। साथ का अर्थ यह। साथ में अर्थात् उसका एकरूप जो क्षायिकभाव है, उसे यहाँ कार्यशुद्धपर्याय कहते हैं। आहाहा! अब ऐसा व्याख्यान में। परन्तु यह क्या? इसकी अपेक्षा दया पालो, व्रत करो, समझ में तो आये। उसमें धूल में कुछ नहीं, सुन न, आहाहा!

वस्तु क्यों है ? कैसी है ? ऐसा ज्ञान में आये बिना उसमें स्थिरता कैसे करे ? आहाहा ! वस्तु जैसी है, वैसी दृष्टि में आये बिना किस में स्थिरता करे ? चारित्र अर्थात् स्थिरता किसमें करना ? क्योंकि वस्तु दृष्टि में आयी नहीं, तो चारित्र कहाँ से आवे ? आहाहा ! समझ में आया ? यह तो भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग है, भाई ! यह कोई साधारण प्राणी का कथन नहीं। आहाहा !

अहो, शब्द क्या है, यह समझे ? वे द्रव्य-गुण जो पारिणामिकभाव, उनके साथ तो पर्याय गिनी। वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. परन्तु इन चार के साथ अर्थात् इन चार का एकरूप क्षायिकभाव, उसे क्षायिकभाव के साथ कहा। साथ शब्द पड़ा है न ? **(अनन्त चतुष्टय के साथ तन्मयरूप से रहनेवाली)...** एकरूप **परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव...** केवलज्ञान वह क्षायिकभाव है। **शुद्धपरिणति, वही कार्यशुद्धपर्याय है।** नीचे स्पष्टीकरण कर गये हैं। **कार्यशुद्धपर्याय प्रगट होती है। पूजनीय परमपारिणामिकभावपरिणति, वह कारणशुद्धपर्याय है और शुद्ध क्षायिकभावपरिणति, वह कार्यशुद्धपर्याय है।**

अथवा,... मुनिराज कहते हैं कि **पूर्व सूत्र में कहे हुए...** अगुरुलघु कहा था न ? **सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय के अभिप्राय से,...** सूक्ष्म वर्तमान अगुरुलघु षड्गुण की वृद्धि, वह **सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय के अभिप्राय से, छह द्रव्यों को साधारण...** छहों द्रव्यों में साधारण। यह तो एक आत्मा की ही बात की-कारण और कार्य। उसमें ऐसी भी एक पर्याय गिनने में आती है, शुद्धपर्याय में। **सूत्र में कहे गये सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय के अभिप्राय से, छह द्रव्यों को साधारण...** छहों द्रव्यों की पर्याय अगुरुलघु छह द्रव्य में होती है। **और सूक्ष्म—ऐसी वे अर्थपर्यायें शुद्ध जानना...** उन्हें भी शुद्ध जानना, ऐसा कहते हैं। कारणशुद्ध को जानना, कार्यशुद्ध को जानना, उसे भी शुद्ध त्रिकाल में अगुरुलघु कहा जाता है। लो !

(इस प्रकार) शुद्धपर्याय के भेद संक्षेप में कहे। आहाहा ! संक्षेप में कहा, कहते हैं। विस्तार तो... वीतराग...

श्रोता : ऐसी कारणशुद्धपर्याय का ज्ञान न हो, उसे त्रिकाली द्रव्य का अवलम्बन होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आ गया। वह तो न भी हो, वह तो ध्रुव में अवलम्बन ले।

श्रोता : ऐसा ज्ञान जिसे हो उसे... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जिसे विशेष (ज्ञान) है, उसे तो जाननी चाहिए। सामान्यरूप से जिसे हो, वह न जान सके। त्रिकाली ध्रुव का आश्रय ले तो उसमें सब आ जाता है। उसे ऐसा ज्ञान ही हो, ऐसा कुछ नहीं। परन्तु यहाँ तो विशेष स्पष्ट करना है, वहाँ तो... आहाहा! तिर्यंच को सम्यग्दर्शन होता है। वह आनन्दस्वरूप भगवान पूर्णानन्द के नाथ पर दृष्टि देता है और सम्यग्दर्शन होता है।

श्रोता : तो सबको...

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको होता है, सब एक प्रकार है। मनुष्य को तो विपरीत शल्य बहुत घुस गये हैं, तो उसे विपरीत शल्य निकालने के लिए अविपरीत ज्ञान विशेष करना चाहिए। इसे विपरीत शल्य नहीं, तिर्यंच को। यह मोक्षमार्गप्रकाशक में आया न? कि उसे नौ तत्त्व का ज्ञान नहीं न, परन्तु सुन तो सही! उसे यह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, बस ऐसी जहाँ दृष्टि हुई, वहाँ आनन्दस्वरूपी आत्मा और उसे अन्दर थोड़ा दुःख दिखता है, वह आत्मा नहीं; इसलिए अजीव का ज्ञान हुआ, जीव का ज्ञान हुआ और आत्मा में जो आनन्द प्रगट हुआ, वह संवर-निर्जरा का ज्ञान हो गया और उस आनन्द की ओर ढलता है तो मोक्ष की ओर ढलता है, ऐसा कहने में आता है। मोक्षमार्ग में लिया है। टोडरमलजी ने बहुत लिया है। टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में बहुत लिया है। आहाहा! यह शुद्धकारणपर्याय और शुद्धकार्यपर्याय की व्याख्या हुई। यह शुद्ध की (व्याख्या) हुई।

अब, व्यंजनपर्याय कही जाती है। जिससे व्यक्त हो-प्रगट हो, वह व्यंजनपर्याय है। किस कारण ? पटादि की (वस्त्रादि की) भाँति चक्षुगोचर होने से... पटादि दिखते हैं ऐसे। **(प्रगट होती है) अथवा, सादि-सान्त मूर्त विजातीय-विभावस्वभाववाली होने से,...** शरीर सादि है, अन्त है, मूर्त-विजातीय है। आत्मा से विजातीय भाव है। ऐसी विभावस्वभाववाली होने से। यह देह आदि। **दिखकर नष्ट होनेवाले स्वरूपवाली होने से...** नाश पाने के स्वरूपवाली होने से। यह व्यंजनपर्याय यह शरीर की आकृति है न? इसे अशुद्धव्यंजनपर्याय कहते हैं। एक परमाणु की नहीं, इसलिए अशुद्ध, इसलिए विभाव और व्यंजन अर्थात् आकृति... यह अशुद्ध की व्याख्या की। समझ में आया? अब विशेष बात करेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१४ श्री नियमसार, गाथा-१५ प्रवचन - १६१
दिनांक - २५-०१-१९७६

अन्तिम आया। ऐसा कहा कि आत्मा जो है यह आत्मा, वह शुद्ध द्रव्य और शुद्ध गुण-शक्ति तथा कारणशुद्धपर्यायसहित आत्मा है। आत्मा जो है, वह सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव, परमेश्वर ने जो देखा और ऐसा है कि यह आत्मा द्रव्यस्वरूप है, अनन्त शक्ति का पिण्ड है और इसमें अनन्त गुणरूप शक्ति-भाव है और इसकी पर्याय में एक शुद्धकारणपर्याय है। सूक्ष्म बात है, भाई! यह उत्पाद-व्यय की पर्याय के अतिरिक्त अन्तर में शुद्धकारणपर्याय है, है ध्रुव। आहाहा!

श्रोता : ध्रुव को ही पर्याय कहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह बात होती थी न! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने कही, वह बात है। यह बात दूसरे किसी सम्प्रदाय में नहीं है। समझ में आया? यह बात तो श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भी नहीं है। यह तो सनातन जैनदर्शन वीतराग परमेश्वर ने कहा, उस दर्शन में यह बात है और यह उसमें जन्मे हुए को भी खबर नहीं कि जैन कैसे होते हैं। क्रिया करे, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा—हमको धर्म हो गया, ऐसा मानकर सम्प्रदाय में (रहते हैं)। यह दृष्टि तो मिथ्या है।

श्रोता : दिगम्बर में जन्में और मिथ्यादृष्टि?

पूज्य गुरुदेवश्री : दिगम्बर में जन्में तो क्या हुआ। आहाहा!

श्रोता : उसे फिर व्रत ही करने का रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी मिथ्यादृष्टि को भान नहीं होता कि आत्मा क्या है? आत्मा अखण्ड आनन्द का नाथ प्रभु... यह आगे आयेगा। एक समय में परमात्मस्वरूप भगवान पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है; जिसमें शरीर, कर्म और वाणी आदि तो नहीं, परन्तु जिसमें दया, दान, भक्ति, पूजा का विकल्प / राग उठता है, वह भी उसमें नहीं। वह तो नहीं, परन्तु वर्तमान उत्पाद-व्ययवाली पर्याय जो है, वह भी अन्दर में नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्दादि अनन्त शक्तियों का पिण्ड

भगवान आत्मा है। इस आत्मा में अनन्त शक्ति, वह गुण है और इसमें कारणपर्याय ध्रुव है, वह पर्याय है। उत्पादवाली पर्याय से रहित वह पर्याय है। आहाहा! ऐसा आत्मा अन्दर है, उसकी दृष्टि करना, उसका आत्मज्ञान करना, वह सम्यग्दर्शन और मोक्ष का कारण है। समझ में आया?

अब यहाँ तो केवलज्ञान है, उसकी पर्याय कही। आत्मा में सर्वज्ञपना अरिहन्तपद जो प्राप्त होता है, वह शुद्धसद्भूतव्यवहारनय का विषय है। त्रिकाली द्रव्य, त्रिकाली शक्ति और कारणशुद्धपर्याय, वह निश्चयनय द्रव्यार्थिकनय का विषय है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु जो आत्मा, एक-एक, हों! प्रत्येक आत्मा भिन्न-भिन्न है। कोई आत्मा एक नहीं होते। प्रत्येक आत्मा उस वस्तुरूप से द्रव्य अर्थात् अनन्त शक्ति का एकरूप पिण्ड, वह द्रव्य और उसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन आदि स्वभाव शक्ति है, वह गुण है और उसकी वर्तमान में ध्रुवरूप एक उत्पाद-व्ययरहित... आहाहा! शुद्धकारणपर्याय (है, वह) तीनों ध्रुव है। द्रव्य ध्रुव है, गुण ध्रुव है, और पर्याय ध्रुव है। ऐसे आत्मा की अन्दर दृष्टि करना.. आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन है। अभी धर्म की पहली सीढ़ी है। इसके बिना कभी धर्म नहीं होता। लाख व्रत करे, तपस्या करे, भक्ति करे, पूजा करे, लाख मन्दिर बनावे और भक्ति करे, वह सब पुण्य है, धर्म नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो और पन्द्रहवीं गाथा है।

श्रोता : आज तो गुजराती में बोलना था न?

पूज्य गुरुदेवश्री : आज तो यह जरा सेठ बैठा है न, सेठ आज जानेवाला है। यह दो-तीन व्यक्ति हिन्दी आये हैं। हिन्दी लिया है। अब बाद में गुजराती में चलेगा। आहाहा! समझ में आया?

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज दिगम्बर सन्त, भगवान के पास गये थे। सीमन्धर भगवान महाविदेह में विराजते हैं, वहाँ गये थे। संवत् ४९ में आठ दिन रहे थे। भगवान की वाणी सुनी और श्रुतकेवली के साथ भी कितनी ही चर्चा की, पश्चात् यहाँ आये। आकर यह शास्त्र बनाया। समझ में आया? यह यहाँ नियमसार बनाया। नियमसार की अन्तिम गाथा में ऐसा कहा है कि मेरी भावना के लिए यह नियमसार बनाया है। अन्तिम गाथा है? १८७, अन्तिम-अन्तिम।

णियभावणाणिमित्तं मए कदं णियमसारणामसुदं।
णच्चा जिणोवदेसं पुव्वावर-दोस-णिम्मुक्कं।।१८७।।

अन्तिम गाथा १८७। १८७ है न? **णियभावणाणिमित्तं** यह नियमसार मेरी भावना के लिए, अन्दर आत्मा के आनन्द की एकाग्रता के लिए **मए कदं** मैंने यह नियमसार बनाया है।

णियमसारणामसुदं। णच्चा जिणोवदेसं... जिनेश्वर का उपदेश। पूर्वापर दोषरहित जानकर यह बनाया है। आहाहा! समझ में आया? यह यहाँ १५ गाथा में कहते हैं। अन्तिम १८७ गाथा में कहते हैं, मेरी भावना के लिए मैंने यह नियमसार बनाया है, ऐसा कहते हैं। यह जिनेश्वर वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का उपदेश पूर्वापर विरोधरहित जानकर मैंने बनाया है। समझ में आया? आहा! यहाँ इस १५वीं गाथा में चल गया है।

अपनी जो त्रिकाली वस्तु और उसकी शक्ति त्रिकाली ध्रुव और उसकी शुद्धकारणपर्याय भी त्रिकाली ध्रुव। आहाहा! यह कहाँ बात! समझ में आया? अन्दर में तीनों की एकाकार दृष्टि करना, भेद किये बिना, अखण्ड अनुभव अन्तर्दृष्टि करने पर जो सम्यग्दर्शन होता है, वह धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का पहला सोपान कहा जाता है। उस सम्यग्दर्शन के बिना चाहे तो लाख, करोड़ व्रत और तप, भक्ति और पूजा करे, उससे जन्म-मरण नहीं मिटते। समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं। अब आयेगा।

एक कारणपर्यायसहित द्रव्य कहा और एक अपने स्वरूप के अवलम्बन से, ध्यान करने से भगवान अरिहन्त को केवलज्ञान जो उत्पन्न हुआ, वह शुद्धसद्भूतव्यवहारनय का विषय है। वह त्रिकाली, निश्चयनय का विषय है और यह अरिहन्तपद प्रगट हुआ, वह शुद्धसद्भूतव्यवहार है। पर्याय है न? अपनी है न? भेद है न? तो शुद्धसद्भूतव्यवहार कहा और व्यंजनपर्याय-यह नारकी, मनुष्य, देव आदि शरीर है न? उसकी आकृति अथवा आत्मा के अन्दर प्रदेश में व्यंजनपर्याय की आकृति, उसे व्यंजनपर्याय कहते हैं। यह बात तो कल चल गयी। अब आज यहाँ आये हैं।

पर्यायी आत्मा के ज्ञान बिना... इस ओर है। सूक्ष्म है, भगवान! यह मार्ग सूक्ष्म है। लोग मानते हैं, ऐसी बात नहीं है। समझ में आया? कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, नव तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा करो और फिर व्रत ले लो - वह सब मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया? सेठ! ऐसी सूक्ष्म चीज़ है।

श्रोता : देव-शास्त्र-गुरु की पूजा भी मिथ्यादर्शन है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग, शुभभाव है।

श्रोता : राग को धर्म माने, वह (मिथ्यादृष्टि) है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे धर्म माने, (वह मिथ्यादृष्टि है)। आहाहा! मैं कर्ता होकर राग करूँ, यह भी मिथ्यादृष्टि है। सूक्ष्म बात है, भाई! दिगम्बर जैनदर्शन, यह जैनदर्शन सूक्ष्म है।

यही जैनदर्शन है, दूसरा कोई है नहीं। समझ में आया? यह यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य महाराज १५वीं गाथा द्वारा कहा। अब कहते हैं।

पर्यायी आत्मा के ज्ञान बिना... क्या कहते हैं? इस आत्मा को पर्यायी कहा। पर्यायी आत्मा त्रिकाली वस्तु। आहाहा! उसके ज्ञान बिना, उसका अन्तर में ज्ञान बिना चौरासी के अवतार अनन्त बार किये। समझ में आया? आहाहा! **पर्यायी आत्मा...** आहाहा! त्रिकाली। वस्तु त्रिकाली है न? यह पर्यायी अर्थात् यह आत्मा, पर्यायी आत्मा, ऐसा। उसके **ज्ञान बिना...** अन्तर में उसके भान बिना। **पर्यायस्वभावाला होता है;...** उसकी दृष्टि पर्याय के ऊपर है, त्रिकाल की दृष्टि नहीं और पर्याय की दृष्टि है तो पर्यायस्वभाववाला मिथ्यादृष्टि हुआ। आहाहा! क्या कहा?

पर्यायी आत्मा... वस्तु त्रिकाली। द्रव्य-गुण और शुद्धकारणपर्यायवाले को यहाँ आत्मा कहते हैं। आहाहा! उस **आत्मा के ज्ञान बिना...** 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' आत्मज्ञान क्या है, इसकी खबर नहीं। यह व्रत पालो, अपवास करो, भक्ति करो, पूजा करो। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' अनन्त बार स्वर्ग में गया परन्तु आत्मा क्या चीज़ है, उसका अनुभव और सम्यग्दर्शन नहीं किया। समझ में आया?

पर्यायी आत्मा... भाषा तो देखो! उसके **ज्ञान बिना...** उसक अन्दर अनुभव-सम्यग्दर्शन बिना, उसका स्वसंवेदन, भावश्रुत के आनन्द के वेदन बिना। आहाहा! समझ में आया? आत्मा पर्यायस्वभाववाला है... आहाहा! यह तो उसकी वर्तमान पर्याय की दृष्टि अनादि से है। वर्तमान राग और वर्तमान ज्ञान से पर्याय व्यक्त उत्पादवाली है, उत्पाद-व्ययवाली है, ऐसी उसकी दृष्टि है। त्रिकाली आत्मा की खबर नहीं। आहाहा! जैन दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ, परन्तु वह मिथ्यादृष्टिरूप से व्रत पालन किये और यह किया... परन्तु आत्मज्ञान अनुभव है, वह नहीं किया। आहाहा!

श्रोता : दिगम्बर साधु हो सकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दिगम्बर अर्थात्? बाहर के वाड़ा के नग्न मुनि हों, पंच महाव्रत पालन करे, वह सब मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! अन्तर आत्मज्ञान बिना... 'मुनिव्रत धार अनन्त बार...' छहढाला में आता है। छहढाला में आता है। यह पढ़ा हो परन्तु अर्थ की खबर नहीं होती। 'मुनिव्रत धार...!' दिगम्बर मुनि, हों! श्वेताम्बर मुनि, वे कोई मुनि हैं नहीं; वे तो गृहीत मिथ्यादृष्टि हैं। श्वेताम्बर, स्थानकवासी वे यह मूर्तिपूजक श्वेताम्बर, इन्हें तो भगवान जैन

कहते ही नहीं।

श्रोता : तेरापन्थी तो जैन में गिना जाता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : तेरापन्थी, स्थानकवासी सब गृहीत मिथ्यादृष्टि। यह तुलसी है न? भाई! बात तो ऐसी है। किसी को दुःख लगे, उसकी बात नहीं। वस्तु का सत्य ऐसा है। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक में से निकले, स्थानकवासी मूर्ति को उत्थापित करके, दो। उसमें से निकले तेरापन्थी। स्थानकवासी तेरापन्थी, हों! अपने दिगम्बर तेरापन्थी नहीं। दिगम्बर में भी तेरापन्थी और बीसपन्थी दो हैं न? दिगम्बर तेरापन्थी तो सनातन चीज़ है। समझ में आया? परन्तु यह जो तेरापन्थी 'तुलसी' है, उसके लाखों लोग हैं। वह पर की दया पालने के भाव को पाप कहता है। वह भी सब वस्तुस्थिति ऐसी (विपरीत) है, भगवान! यह कोई सम्प्रदाय की बात नहीं। यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ, जो दिव्यध्वनि द्वारा कहा, वह मार्ग यहाँ है।

कहते हैं कि आत्मज्ञान बिना। भले दिगम्बर सम्प्रदाय का साधु हो, बाहर व्रत पालन करो, भक्ति-पूजा करो परन्तु आत्मज्ञान बिना... आत्मा अनन्त आनन्दकन्द है, आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन बिना... अतीन्द्रिय आत्मज्ञान के भान बिना... आहाहा! **आत्मा, पर्यायस्वभावाला होता है;...** यह तो उसकी एक समय की अवस्था-स्वभाववाला होता है।

श्रोता : पर्यायी आत्मा...

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा? पहले कहा सुना नहीं? तीन बार कहा, चार बार कहा। पर्यायी आत्मा ऐसा। पर्यायी अर्थात् आत्मा। बात तो की है। पहले शुरुआत से की। यहाँ तो ध्यान रखो तो एक भी बात कोई पूछने लायक रहे, ऐसी नहीं आती। पर्यायी अर्थात् ही आत्मा। पर्याय, वह व्यंजनपर्याय बताने को। यह चार गति मिलती है न? यहाँ तो पर्यायी अर्थात् आत्मा। पर्याय अर्थात् आत्मा, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरे! भाई! यह तो वीतरागमार्ग जिनेश्वर का। कभी इसने समझा नहीं, जैन में अनन्त बार जन्मा। वाड़ा किया, साधु हुआ, दिगम्बर मुनि हुआ, पंच महाव्रत पालन किये - सब एकरहित शून्य हैं। आहाहा! समझ में आया? क्या कहे? इकाईरहित शून्य को?

श्रोता : पहले शून्य लगा दे और बाद में अंक चढ़ावे....

पूज्य गुरुदेवश्री : शून्य में कोई संख्या नहीं आती। लाख शून्य को संख्या नहीं आती। एक अंक लिखे तो संख्या होती है, बाद में शून्य करे तो संख्या आवे। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन

के बाद स्वरूप में स्थिरता होवे तो चारित्र होता है। समझ में आया? यह तो मार्ग ऐसा है। कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं, अनन्त तीर्थंकरों ने कहा, वह मार्ग कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! मंगलम् भगवान वीरो आता है न? मंगलम् गौतमोगणी, मंगलम् कुन्दकुन्दार्यो। पहले नम्बर में भगवान, दूसरे नम्बर में गणधर-गौतम, तीसरे नम्बर में कुन्दकुन्दाचार्य। जैनधर्मोस्तु मंगलम्। वे कुन्दकुन्दाचार्य यह कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? एक लाईन में कितना समाहित कर दिया है!

पर्यायी ऐसा आत्मा। पर्याय नहीं, पर्यायी। **पर्यायी आत्मा के ज्ञान बिना...** उसके ज्ञान, अनुभव सम्यग्दर्शन बिना **आत्मा, पर्यायस्वभावाला...** वर्तमान अवस्थावाला वह आत्मा है। वर्तमान अवस्था को ही प्राप्त होता है। चार गति में भटकने। यह कहते हैं, देखो! **इसलिए शुभाशुभरूप मिश्र परिणाम से...** जब पर्यायदृष्टि है, वर्तमान अंश की दृष्टि है, तो वह अंश की दृष्टिवाला आत्मा शुभाशुभ मिश्रपरिणाम करता है। किंचित् पुण्य के परिणाम किंचित् पाप के परिणाम, ऐसे **मिश्र परिणाम से आत्मा, व्यवहार से मनुष्य होता है,..** क्या कहा? समझ में आया?

निश्चय से तो भगवान अखण्ड आनन्द शुद्ध चिदानन्दमूर्ति प्रभु, ऐसा पर्यायी आत्मा, पर्यायी अर्थात् पर्याय नहीं। पर्यायी आत्मा, उसके ज्ञान बिना **पर्यायस्वभावाला...** अर्थात् चार गति की पर्याय प्राप्तवाला होता है। आहाहा! समझ में आया? भाई! मार्ग सूक्ष्म है, बापू! दिगम्बर धर्म वह कोई सम्प्रदाय नहीं; वस्तु का स्वरूप है। अभी इसकी-सम्यग्दर्शन की ही खबर नहीं होती। यह माने हुए देव-गुरु-शास्त्र माने, हमको सम्यग्दर्शन हुआ। धूल भी नहीं, सुन न! सम्यग्दर्शन की चीज़ कोई अलौकिक है।

यह कहते हैं, सम्यग्दर्शन की चीज़ आत्मज्ञान। उस आत्मज्ञान बिना आत्मा। आत्मा के ज्ञान बिना आत्मा, त्रिकाली ज्ञायकभाव के ज्ञान बिना आत्मा... समझ में आया? पर्याय -स्वभाववाला होता है। वर्तमान पर्याय की प्राप्तिवाला होता है। तो कैसी पर्याय की प्राप्ति करता है? कि **शुभाशुभरूप मिश्र परिणाम से...** किंचित् पुण्य और किंचित् पाप, ऐसे **मिश्र परिणाम से आत्मा, व्यवहार से मनुष्य होता है,...** निश्चय से तो आत्मा, आत्मा रहता है परन्तु पर्याय में व्यवहार से मनुष्यभव धारण करता है। पर्यायदृष्टिवाला और पर्यायस्वभाव को प्राप्त करता है। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसा सूक्ष्म है, हों!

उसका मनुष्याकार वह मनुष्यपर्याय है;... देखो! यह मनुष्य का आकार अन्दर; शरीर का अलग है परन्तु अन्दर जो मनुष्यगति का आकार, वह मनुष्यपर्याय है। आहाहा! क्या

कहते हैं, समझ में आया? भगवान आत्मा अखण्डानन्द पूर्णानन्द पर्याय आत्मा। ऐसा पूर्ण स्वभाव भगवान, उसके ज्ञान बिना, उसके अनुभव बिना, उसकी प्रतीति बिना, उसके सम्यग्दर्शन बिना वर्तमान पर्याय की प्राप्तिवाला होता है। आत्मा जो त्रिकाली पर्यायी वह आत्मा, उसका जो ज्ञान और दर्शन होवे, तब तो सिद्धगति को प्राप्त करता है। समझ में आया? वह पर्यायी आत्मा ऐसे द्रव्य-गुण-पर्याय का अन्तर का अनुभव बिना इस चार गति की पर्याय को प्राप्त करता है। आहाहा! देखो न! अभी अपने सवेरे-सवेरे सुना है न? ...लाल का सुना न? बेचारा कैसा व्यक्ति? मार डाला। खून... लाल। कैसा व्यक्ति! बहुत उदार व्यक्ति। बहुत लाखों रुपये खर्च किये। अभी वहाँ आया था न। हम वहाँ थे न बैंगलोर। बेचारी बहिन आयी थी। वह बाहुबली की ब्यालीस फीट की मूर्ति लेकर निकले थे। महाराज.. दो दिन आये थे। रह गये। व्याख्यान सुन गये। बैंगलोर, अभी वह पैसा बहुत खर्च करता है। कौन ऐसा व्यक्ति कि मार ही डाला, खून कर डाला। बादशाही मकान, बड़ा करोड़पति, बहुत करोड़ों। बीस-पच्चीस लाख तो धर्मादे में खर्च किये होंगे, मन्दिर... किसी ने मार डाला। आहाहा!

कहते हैं कि यह मनुष्यदेह क्यों प्राप्त होती है? अन्दर मनुष्य की आकृति की प्राप्ति कैसे होती है? कि भगवान आत्मा के आनन्द और अनुभव बिना, सम्यग्दर्शन बिना ऐसे शुभाशुभभाव से मनुष्य की पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! **केवल अशुभकर्म से व्यवहार से आत्मा, नारक होता है,...** मात्र अशुभभाव, हिंसा, झूठ, महापाप, नरक के योग्य। नीचे नारकी है। **केवल अशुभकर्म से व्यवहार से आत्मा, नारक होता है,...** व्यवहार से आत्मा नारक होता है। आत्मा तो आत्मा ही है। आत्मा का द्रव्य से कोई नारकी होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **केवल अशुभकर्म से व्यवहार से आत्मा, नारक होता है, उसका नारक-आकार वह नारकपर्याय है;...** व्यंजनपर्याय। नारकी के शरीरप्रमाण आत्मा का आकार होता है न?

किंचित्शुभमिश्रित... किंचित् शुभभावमिश्रित माया / कपट परिणाम से **आत्मा, व्यवहार से तिर्यञ्चकाय में जन्मता है,...** आहाहा! यह तिर्यंच-एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, यह पशु, गाय, घोड़ा आदि तिर्यंच है न? आड़े को क्या कहते हैं? तिरछे। उस आड़े को भगवान तिर्यंच कहते हैं। वह आड़ा क्यों हुआ? पूर्व में माया, कपट आदि वक्रता बहुत की थी। माया, कपट, कुटिल, यह वक्रता की थी तो शरीर भी ऐसा आड़ा हो गया। आहाहा! समझ में आया? यह **किंचित्शुभमिश्रित मायापरिणाम से...** कपट। आहाहा! **आत्मा, व्यवहार से तिर्यञ्चकाय में जन्मता है,...** लो! यहाँ जन्म लेता है, ऐसा लिखा। देखा? उसमें ऐसा कहा

था कि व्यवहार से मनुष्य होता है। नारक में नारकपर्याय है। इसमें तिर्यंचगति में जन्मता है। भाषा में अन्तर है। नारक आकार हो। ....पर्याय है। है यह ? तिर्यंच पर्याय होती है ऐसी। **उसका आकार वह तिर्यञ्चपर्याय है...**

और केवल शुभकर्म से... दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत, वह पुण्य है। उस पुण्य से स्वर्ग में जाता है। समझ में आया ? वह धर्म नहीं है। है ? **केवल शुभकर्म से...** अकेले पुण्यभाव से, जिसमें अशुभभाव नहीं परन्तु जिसे आत्मज्ञान भी नहीं; अकेला शुभभाव करता है – दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या, पूजा, दान में राग की मन्दता हो तो वह शुभ है। उस शुभ से स्वर्ग मिलता है, स्वर्गगति की पर्याय मिलती है; उससे धर्म नहीं होता। आहाहा! समझ में आया ? कितना स्पष्टीकरण किया, देखो!

यहाँ क्या कहते हैं ? – कि पर्यायी ऐसा आत्मा त्रिकाली ज्ञायक भगवान, उसके ज्ञान बिना चार गति की पर्याय; पर्यायदृष्टिवाला चार गति की पर्याय को प्राप्त होता है। आहाहा! सन्तों ने तो कितनी करुणा करके... आहाहा! स्पष्ट किया है। क्या कहा ? कि यह आत्मा अन्दर वस्तु है, वह तो कर्म, शरीर, वाणी से रहित है और दया, दान, व्रत, भक्ति तथा पाप के परिणाम से रहित है और वर्तमान ज्ञान की एक समय की पर्याय का जो विकास है, उससे भी रहित है। ऐसे आत्मा के ज्ञान बिना... आहाहा! ऐसे आत्मा के अनुभव-सम्यग्दर्शन बिना, उसकी पर्यायस्वभाववाला अर्थात् पर्यायदृष्टिवाला होने से चार गति की पर्याय प्राप्त होती है। समझ में आया ? अन्तरस्वभाव आनन्दकन्द प्रभु का अनुभव करने से, दृष्टि करने से, स्थिरता करने से सिद्धपद प्राप्त होता है। आहाहा! समझ में आया ?

चैतन्यपिण्ड प्रभु! तू तो भव और भव के भावरहित वस्तु है। ऐसी चीज़ जो पूर्ण आनन्द, ज्ञायकघन है, उसकी दृष्टि और ज्ञान करने से सिद्धपद की प्राप्ति होती है परन्तु ऐसे आत्मा के ज्ञान और दर्शन बिना, पर्याय-वर्तमान अंश दृष्टिवाला चार गति की पर्याय को प्राप्त करता है। आहाहा! समझ में आया ? परन्तु अब करना क्या ? करना यह है कि पुण्य-पाप का विकल्प राग है, उससे हटकर त्रिकाली ज्ञायक की दृष्टि करना, ज्ञान करना, यह करना है। बाकी सब व्यर्थ है। समझ में आया ? माँगीलालजी! आहाहा!

यहाँ कहते हैं **केवल शुभकर्म से...** अकेले पुण्य—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, शुभभाव से **व्यवहार से आत्मा, देव होता है,...** उससे देव होता है। आहाहा! पर्यायदृष्टि होने से चार गति की पर्याय को प्राप्त होता है। द्रव्यदृष्टि-त्रिकाल की दृष्टि और ज्ञान होने से चार गति

बिना सिद्ध की पर्याय को प्राप्त होता है। आहाहा! है? **उसका आकार वह देवपर्याय है।** व्यंजन (पर्याय), यह आकृति, शरीर की अथवा देव की। **यह व्यंजनपर्याय है।** यह शरीर आदि की अवस्था, अन्दर आत्मा की आकृति, वह व्यंजनपर्याय प्रगट बाहर दिखाई दे, ऐसी है। **इस पर्याय का विस्तार अन्य आगम में देख लेना चाहिए।** यहाँ तो अध्यात्मग्रन्थ है, इसलिए थोड़ा लिखा है। इसलिए दूसरे ग्रन्थों में देख लेना।

अब, १५वींगाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज... पद्मप्रभमलधारिदेव। यह श्लोक (गाथा) है वह कुन्दकुन्दाचार्य के हैं और टीका पद्मप्रभमलधारिदेव, ९०० वर्ष पहले दिगम्बर मुनि थे, तथा समयसार की टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य हैं। तीनों मुनियों की यहाँ (परमागममन्दिर में) स्थापना की है। समझ में आया? स्थापना अर्थात् चित्र रखे हैं। आहाहा! २७, श्लोक है न ऊपर? २७ श्लोक।

अपि च बहुविभावे सत्ययं शुद्धदृष्टिः,
सहजपरमतत्त्वाभ्यासनिष्णातबुद्धिः।
सपदि समयसारान्नान्यदस्तीति मत्त्वा,
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः।।२७।।

उसमें आया है न अपने? समयसार से विशेष... यह शैली अमृतचन्द्राचार्य की है। **बहु विभाव होने पर भी,...** आहाहा! क्या कहते हैं? चाहे तो शुभ-अशुभ का विकल्प विभाव पर्याय में हो। भगवान आत्मा उस विभाव से भिन्न है। पर्याय अर्थात् अवस्था में शुभ-अशुभभाव विभाव, शुभ-अशुभभाव-विभाव, बहुविभाव होने पर भी.. ऐसा कहते हैं। आहाहा! पर्याय / अवस्था में मिथ्यात्व हो, राग-द्वेष हो, शुभाशुभभाव होने पर भी। **सहज परमतत्त्व के अभ्यास में जिसकी बुद्धि प्रवीण है...** आहाहा! वे शुभ-अशुभभाव होने पर भी, सम्यग्दृष्टि की बुद्धि तीक्ष्ण है। आहाहा!

परमतत्त्व के अभ्यास में... परमतत्त्व ज्ञायकमूर्ति जो भगवान आत्मा; वह विभाव होने पर भी उनसे दूर हटकर **परमतत्त्व के अभ्यास में जिसकी बुद्धि प्रवीण है...** आहाहा! क्या कहते हैं? भाई! यह तो अध्यात्मशास्त्र है। यह तो दिगम्बर सन्तों का पेट है। केवली का पेट (हृदय) खोल दिया है। सूक्ष्म बात है। जल्दी समझ में आये, ऐसी नहीं। बहुत प्रयत्न चाहिए। आहाहा! यह शरीर-वरीर तो जड़ है। यह तो मिट्टी-धूल है। कर्म धूल-मिट्टी अन्दर है।

यहाँ तो पुण्य और पाप और मिथ्यात्व के भाव पर्याय में होने पर भी, **विभाव होने पर**

भी,... अकेले पुण्य-पाप के विकार भले हों, चार गति के कारणरूप भाव हों परन्तु **जिसकी बुद्धि... परमतत्त्व के अभ्यास में...** परम ज्ञायकभाव अखण्डानन्द प्रभु की एकाग्रता के अभ्यास में **जिसकी बुद्धि प्रवीण है...** आहाहा! जिसकी ज्ञानबुद्धि प्रवीण है कि जो त्रिकाली परमतत्त्व की एकाग्रता का अभ्यास करता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म है, भाई!

यह तो जिनेश्वरदेव का मार्ग है, बापू! जिन्हें सौ इन्द्र पूजते हैं, जिन्हें एकावतारी इन्द्र जहाँ... क्या कहते हैं? कुत्ते के बच्चे को? पिल्लू। पिल्लू की तरह इन्द्र, भगवान के समीप बैठता है। महाविदेह में भगवान विराजते हैं। सीमन्धर भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के पास गये थे, वहाँ से आकर यह बनाया है। जिनके पास एकावतारी इन्द्र सुनते हैं। पहले देवलोक का इन्द्र है, वह एकभवतारी है, शकेन्द्र; और उसकी इन्द्राणी एकभवतारी है। सिद्धान्त में, आगम में यह लेख है। दोनों एकभवतारी हैं। दोनों वहाँ से निकलकर मोक्ष जानेवाले हैं। वे भगवान के पास सुनने जाते हैं। आहाहा! वह बात कैसी होगी? भाई! यह साधारण बात नहीं है। दया पालो, यह करो, अब यह तो कुम्हार भी कहता है। समझ में आया? यह तो वीतरागमार्ग जगत से अत्यन्त निराला है।

क्या कहते हैं? पर्याय में, अवस्था में पुण्य-पाप आदि विभाव-विकार होने पर भी, जिसकी दृष्टि उसे उल्लंघकर अन्तर में गयी है। सहज परमतत्त्व भगवान आत्मा स्वभाविक परमतत्त्व अनादि-अनन्त पड़ा है। आहाहा! सहज। किसी ने बनाया नहीं। अनादि से है ही। ऐसे **परमतत्त्व के अभ्यास में...** परमतत्त्व की अन्दर एकाग्रता में **जिसकी बुद्धि प्रवीण है...** आहाहा! जिसकी ज्ञान की परिणति इतनी प्रवीण-निपुण है कि विभावभाव होने पर भी, वहाँ से हटकर त्रिकाल तत्त्व का अभ्यास करती है, उसे तीक्ष्णबुद्धिवाला कहते हैं। आहाहा! वह सम्यग्दृष्टि है। समझ में आया? अभी तो बात पकड़ना कठिन पड़ती है और अभी तो मूल चीज़ की बात नहीं चलती। बाहर का यह करो... यह करो... यह करो... व्रत करो, अपवास करो, त्याग करो, यह करो। आहाहा! पाटनीजी! तुम पाटनीजी को पहिचानते हो? आगरा। समझ में आया? आहाहा! भाई! तुम्हारा आगरा आया। भाई आये हैं। आहाहा! भगवान का मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई!

कहते हैं कि विभावभाव है। एक ओर परमतत्त्व है। शरीर, वाणी, मन, उस जड़ के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है, वह तो परमाणु जगत की जड़ चीज़ है। इसकी पर्याय में, अवस्था में पुण्य और पाप, दया और दान, तप और भक्ति, काम और क्रोध ऐसे विभाव हैं, वापस ऐसा कहा अवश्य; नहीं, ऐसा नहीं है। वेदान्त की भाँति कुछ नहीं है, ऐसा नहीं है। पर्याय में है।

है न? **विभाव होने पर भी,...** आहाहा! **सहज परमतत्त्व के...** भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु 'सिद्ध समान सदा पद मेरौ।' बनारसीदास में आता है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरौ।' मेरा पद ही सिद्ध समान त्रिकाल है। ऐसा परम तत्त्व, **सहज परमतत्त्व के अभ्यास में...** अन्तर्मुख एकाग्रता... आहाहा! उसमें जिसकी बुद्धि प्रवीण है। अन्तर्मुख तत्त्व की एकाग्रता करने में जिसकी ज्ञानबुद्धि तीक्ष्ण-सूक्ष्म है, प्रवीण है। आहाहा! एक-एक श्लोक तो देखो!

ऐसा यह शुद्धदृष्टिवाला पुरुष,... ज्ञान और दृष्टि दो लिये। आहाहा! यह आत्मा और पर्यायी आत्मा त्रिकाली ज्ञायक आनन्दकन्द प्रभु और उसकी कारणपर्यायध्रुव, यह सब मिलकर आत्मा और उसकी पर्याय में उस ध्रुव के ऊपर उत्पाद-व्यय-पर्याय में बहुत विभाव-विकार, शुभ-अशुभभाव होने पर भी; 'है' - ऐसा सिद्ध किया, परन्तु उसका लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली ज्ञायकभाव के अनुभव में जो प्रवीण है; अभ्यास अर्थात् अन्दर अनुभव में प्रवीण है, **ऐसा यह शुद्धदृष्टिवाला पुरुष,...** उसे शुद्धदृष्टि, समकिती और धर्मी कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? गजब बात, भाई! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः—तत्त्वार्थसूत्र में आता है न! वह यह सम्यग्दर्शन। समझ में आया? आहाहा!

वर्तमान दशा में अस्तित्व में शुभ-अशुभभाव होने पर भी, जिसकी परमतत्त्व में एकाग्र होने की प्रवीणबुद्धि है। उसे (शुभाशुभ को) उल्लंघकर अन्तर्बुद्धि करता है, वह **शुद्धदृष्टिवाला पुरुष,...** आहाहा! **'समयसार से अन्य कुछ नहीं है'...** ऐसा भगवान आत्मा आनन्दमय, इसके अतिरिक्त दूसरी कोई चीज़ है नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! यह आया था समयसार, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। समयसार में अन्तिम कलश में आता है। वह सब शैली की है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ आत्मा का अनुभव करना, वह वर्तमान प्रगट समयसार; पहला त्रिकाल समयसार। वर्तमान वीतरागी दृष्टि से, वीतरागी ज्ञान से, स्थिरता से त्रिकाल में एकाग्रता होना, वह त्रिकाली समयसार ध्रुव! उस ध्रुव का भान हुआ, वह पर्याय में... ऐसे समयसार के अतिरिक्त जगत में अन्य कोई चीज़ नहीं है। यह चीज़ है। आहाहा!

श्रोता : छह द्रव्य कहाँ गये?

पूज्य गुरुदेवश्री : छह द्रव्य, द्रव्य में रह गये। आत्मा में कहाँ है? आहाहा! एक समय की पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान होता है, उस पर्याय का लक्ष्य भी छोड़कर, त्रिकाल की दृष्टि करना, ऐसा कहा है। समझ में आया? भाई! यह तो परमात्मा जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ का मार्ग है। यह कोई साधारण मार्ग नहीं है। लोगों को यह मिला नहीं और बाहर के क्रियाकाण्ड में ऐसा खाना, ऐसा पीना, उसमें दृष्टि घुस गयी। वीतरागमार्ग दूसरा है। समझ में आया?

श्रोता : खाने की बात तो कहीं आती ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : खाने की आती है और ऐसा करना, ऐसा लेना। वह खा कौन सकता है ? वह तो जड़ की क्रिया है। कोई कहता है कि देखो ! दुनिया में दाल-भात, सब्जी कितने खाये गये ? कौन खाये ? धूल ? वह तो जड़ की क्रिया है। आत्मा खा सकता है ? दाल, भात, रोटी आत्मा खा सकता है ? तीन काल में नहीं। वह तो जड़ है। उस ओर का राग करता है और राग का अनुभव करता है। आहाहा ! समझ में आया ? पोपटभाई ! इस पैसे को भोग नहीं सकता, ऐसा कहते हैं। तुम्हारे सब छह लड़के न, उनके प्रति राग करे तो राग को अनुभव करे। आहाहा ! यह स्त्री के भोग के समय उस स्त्री के शरीर को आत्मा अनुभव कर सकता है ? वह तो जड़ मिट्टी, धूल, माँस-हड्डियाँ हैं। उनके प्रति लक्ष्य करके राग करे कि यह ठीक है, उस राग का अनुभव है। उसे आकुलता का अनुभव है। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, वह भाव है; भले हो, वहाँ से दृष्टि उठाकर त्रिकाल ज्ञायकदृष्टि का अभ्यास हुआ, वह **शुद्धदृष्टिवाला पुरुष, 'समयसार से अन्य कुछ नहीं है'...** मेरी चीज़ पूर्णानन्द के अतिरिक्त इस जगत में कोई नहीं है, ऐसी प्रतीति, अनुभव हुआ। पर्याय में अनुभव हुआ, तब यह समयसार ख्याल में आया न ! आहाहा ! नहीं तो था। पुण्य-पाप के भाव थे, वहाँ दृष्टि थी तो ऐसा मैं हूँ - ऐसा माना था। वहाँ से दृष्टि हटाकर, पर्याय ने ज्ञान का-दृष्टि का अन्तर में स्वीकार किया। है तो है, परन्तु प्रतीति में स्वीकार किया कि है तो उसे है, ऐसा हुआ। इसके बिना है, वह उसे कहाँ से हुआ ? समझ में आया ? आहाहा ! अब ऐसा उपदेश। ऐसा उपदेश होगा ? भाई ! उपदेश तो सब ऐसा करो, बड़ा मन्दिर बनाओ, यात्रा करो।

श्रोता : तुम्हारे तो बड़ा मन्दिर...

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन अब... मन्दिर किसने बनाया है ? वह तो उसके कारण से बन गया है। पुद्गल की रचना का काल था, वहाँ बन गया है, भाई ! समझ में आया ? ऐई ! छब्बीस लाख। परमाणु की पर्याय वहाँ बनने की थी, वह बन गयी। आत्मा बना सके, इस बात में दम नहीं है। आहाहा ! जड़ की पर्याय का कर्ता आत्मा ? वह तो मूढ़ है, अज्ञानी मूढ़ है।

यहाँ तो पुण्य और पाप के विकल्प का कर्ता होवे ठीक है, वह भी मिथ्यादृष्टि है। कर्ता, करूँ, ठीक है ऐसा, आहाहा ! यहाँ तो भगवान तीन लोक के नाथ ऐसा फरमाते हैं कि विभाव होने पर भी प्रभु ! अस्तित्व भले हो परन्तु पूरा अस्तित्व यहाँ पड़ा है न ? आहाहा ! वह

तो क्षणिक अस्तित्व रहा। यह त्रिकाली अस्तित्व अन्दर है। राग से हटकर अन्दर में एकाग्रता का अभ्यास करे, वह प्रवीण बुद्धि है। कहो, प्रवीणभाई आये हैं या नहीं? यह प्रवीणबुद्धि। यह बैठे हैं। समझ में आया? और वह **शुद्धदृष्टिवाला...** है?

ऐसा यह शुद्धदृष्टिवाला पुरुष,... उस पुरुष शब्द से आत्मा। आहाहा! '**समयसार से अन्य कुछ नहीं है**'... अभेद वस्तु की जहाँ दृष्टि / अनुभव हुआ, वहाँ समयसार के अतिरिक्त जगत में कोई ऊँची चीज़ नहीं है। आहाहा! **ऐसा मानकर,...** देखा? **शीघ्र परमश्रीरूपी...** पहले चार गति की पर्याय बतलायी। पहले ऊपर, पर्यायबुद्धिवाला पर्याय को प्राप्त करता है; द्रव्यबुद्धिवाला मुक्ति को प्राप्त करता है, (ऐसा कहते हैं)। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा मानकर, शीघ्र...** अल्प काल में परमश्री अर्थात् केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी। **परमश्रीरूपी...** परम लक्ष्मीरूपी **सुन्दरी...** अर्थात् परिणति। निर्मल शुद्ध मोक्ष की परिणति का **वल्लभ होता है।** आहाहा! उसे शुद्धपरिणति कभी छोड़ेगी नहीं। आहाहा! यह चार गतियाँ तो छूटेंगी। एक के बाद एक, एक के बाद एक बदलती है। यह छूटेगी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

शीघ्र परमश्रीरूपी सुन्दरी... निर्मलानन्द का नाथ भगवान सुन्दर पवित्र रमणीय, शिवरमणी का वल्लभ होता है, उसका प्यारा होता है। आहाहा! अर्थात् अन्तर्मुख के अभ्यास से, आनन्द के अभ्यास से समयसार से उत्कृष्ट कोई चीज़ नहीं है। ऐसा अनुभव करने से परम रमणीय आनन्द की पर्यायरूपी मुक्ति को प्राप्त करता है। एक-एक लाईन में कितना भरा है! ओहोहो! यह १५वीं गाथा हुई।

१६, जरा गति का वर्णन करते हैं।

माणुस्सा दुवियप्पा कम्ममहीभोगभूमिसंजादा।
सत्त-विहा णेरइया णादव्वा पुढवि-भेदेण।।१६।।

चउदह भेदा भणिदा तेरिच्छा सुरगणा चउब्भेदा।
एदेसिं वित्थारं लोय-विभागेषु णादव्वं।।१७।।

हैं कर्म-भूमिज, भोग-भूमिज मनुज की दो जातियाँ।
अरु सप्त पृथ्वीभेद से हैं सप्त नारक राशियाँ॥१६॥

तिर्यञ्च चौदह भेदवाले, देव चार प्रकार के।
इन सर्व का विस्तार है, ज्ञातव्य लोकविभाग से॥१७॥

टीका :—यह, चार गति के स्वरूपनिरूपणरूप कथन है। विभावभाव से प्राप्त चार

गति का कथन करते हैं। स्वभावभाव से प्राप्त सिद्धगति की बात हो गयी। समझ में आया? **मनु की सन्तान वह मनुष्य है,...** मनु-कुलकर कहते हैं न! कर्मभूमि में कुलकर है न! नीचे नोट **भोगभूमि के अन्त में और कर्मभूमि के आदि में होनेवाले कुलकर मनुष्यों को आजीविका के साधन सिखाकर लालित-पालित करते हैं;...** जुगलिया होते हैं न? पश्चात् कर्मभूमि हो, तब ये कुलकर उन सबको बताते हैं। **इसलिए वे मनुष्यों के पिता समान हैं। कुलकर को मनु कहा जाता है।** अन्यमति में भी ऐसा आता है।

मनु की सन्तान वह मनुष्य है,... उन कुलकर के सन्तान वे मनुष्य हैं। **वे दो प्रकार के हैं—कर्मभूमिज और भोगभूमिज। उनमें कर्मभूमिज मनुष्य भी दो प्रकार के हैं—आर्य और म्लेच्छ।** क्या कहते हैं? यह शुभाशुभभाव से प्राप्त गति की व्याख्या करते हैं। शुद्धभाव आत्मा के अनुभव से मुक्ति होती है और इन शुभाशुभभावों से चार गतियाँ मिलती हैं। इन चार गतियों की व्याख्या चलती है। **आर्य और म्लेच्छ। पुण्यक्षेत्र में रहनेवाले, वे आर्य हैं...** आहाहा! आर्यक्षेत्र में जन्में, वह पुण्यक्षेत्र है। **और पापक्षेत्र में रहनेवाले, वे म्लेच्छ हैं।** आहाहा!

भोगभूमिज मनुष्य, आर्य नाम को धारण करते हैं;... भोगभूमि। **जघन्य, मध्यम...** उत्कृष्ट क्षेत्र में रहनेवाले हैं न? यह देवकुरु, उत्तरकुरु। **एक पल्योपम, दो पल्योपम की आयुवाले हैं।** लो। ओहोहो! जुगलिया-जुगलिया है। मेरु पर्वत के आसपास देवकुरु, उत्तरकुरु है। जघन्य है, उनकी एक पल्य की मनुष्य की स्थिति। असंख्य अरब वर्ष का एक पल्योपम। वहाँ भी अनन्त बार गया है, जन्मा है। कोई नयी चीज़ नहीं है। आत्मज्ञान बिना, सम्यग्दर्शन बिना। पहले कहा था न? पर्यायस्वभाववाला होने से चार गति की पर्याय अनन्त बार मिली है। आहाहा! एक पल्य का आयुष्य हो, दो पल्योपम आयुष्य हो, तीन पल्योपम आयुष्य हो। तीन प्रकार के—जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट है। सात नारकी, नीचे सात नरक हैं। माँस, शराब, शिकार आदि करनेवाले प्राणी नरक में जाते हैं। यह पर्यायदृष्टिवाला ऐसी पर्याय होवे तो नरक में जाता है। नीचे नरक है, कल्पना नहीं है। नीचे सात नरक हैं। जैसे लोहा बहुत वजनवाला होवे तो पानी के ऊपर डाले तो नीचे जाता है। इसी प्रकार बहुत पाप करनेवाले नीचे नरक में जाते हैं। समझ में आया? ऐसी नरकगति भी अनन्त बार मिली है। आत्मज्ञान बिना, सम्यग्दर्शन बिना, आत्मअनुभव बिना (मिली है)। सात नरक हैं। **रत्नप्रभा,...** नारकी का नाम रत्नप्रभा है।

श्रोता : नाम बहुत ऊँचा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहा न! एक महिला को कहा था। बहिन! तुम्हें रत्नप्रभा जाना है? बाहर के वेषधारी साधु ने महिला की मजाक की। बहिन! तुम्हें रत्नप्रभा जाना है? महाराज! हमारे जैसे जाएँ? तुम्हारे जैसे जाते हैं। क्योंकि रत्नप्रभा नाम आया न? इसलिए वेशधारी साधु ने महिला की मजाक की कि माँ! तुम्हें रत्नप्रभा जाना है? महाराज! हमारे जैसे

१५ श्री नियमसार, गाथा-१५ प्रवचन - ४२२
दिनांक - ०९-१०-१९५१

गाथा १५। नियमसार की गाथा १५ देखो। इसमें अधिकार जरा सूक्ष्म है।

णरणारयतिरियसुरा पज्जाया ते विहावमिदि भणिदा।
कम्मोपाधिविवज्जियपज्जाया ते सहावमिदि भणिदा।।१५।।

तिर्यञ्च, नारकि, देव, नर पर्याय हैं वैभाविकी।
पर्याय कर्मोपाधि वर्जित हैं कही स्वाभाविकी॥१५॥

टीका :— **यह स्वभावपर्यायों तथा विभावपर्यायों का संक्षेप कथन है।** इसमें इसका अन्वयार्थ। देखो! यह पर्याय की व्याख्या है, अवस्था की व्याख्या है। **मनुष्य, नारक, तिर्यञ्च और देवरूप पर्यायें, वे विभावपर्यायें कही गई हैं; कर्मोपाधि रहित पर्यायें, वे स्वभावपर्यायें कही गयी हैं।** अब इन स्वभावपर्यायों और विभावपर्यायों में **वहाँ, स्वभावपर्यायों और विभावपर्यायों के बीच प्रथम स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही जाती है,...** देखा! जरा सूक्ष्म विषय है। शान्ति से सुनने जैसा है।

प्रथम स्वभावपर्याय... देखो! पर्याय का अधिकार है, यह गुण का अधिकार नहीं, द्रव्य का अधिकार नहीं। यह अधिकार पर्याय अर्थात् अवस्था का है। **स्वभावपर्यायों और विभावपर्यायों के बीच प्रथम स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही जाती है, कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय।** एक आत्मा में त्रिकाल कारणशुद्धपर्याय है और एक प्रगट हुई केवलज्ञानादि कार्यशुद्धपर्याय है, इनकी व्याख्या चलती है।

अब कहते हैं, कारणशुद्धपर्याय किसे कहना? कारणशुद्धपर्याय, हों! पर्याय अर्थात् अवस्था। पर्याय अर्थात् अवस्था। वह कारण अवस्था, कारणशुद्धदशा किसे कहना, यह व्याख्या है। देखो! यह पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि ने इस प्रकार से बात ली है कि जैसे धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल, ये जैसे द्रव्य से-गुण से जिस तरह अखण्ड हैं और उनकी पर्याय भी प्रवाहित अखण्ड एक धारा से पर्याय भी अखण्ड है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल में उनकी पर्याय में कहीं विषमता नहीं है, एकरूप पर्याय है। इसी प्रकार आत्मा

में वस्तु स्वयं अनन्त स्वभाव का-गुण का पिण्ड है, उसकी जो एक-एक समय की प्रगट पर्याय है, अनादि-अनन्त संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष - इस पर्याय में तो अनेकता आती है। संसार की पर्याय, मोक्षमार्ग की पर्याय और मोक्ष (की पर्याय में) एकरूपता नहीं आती, अनेकता आती है। इसलिए आत्मा ज्ञान, दर्शन आदि स्वभाव जो शक्तिरूप है, वह सामान्य है, उसकी एक-एक समय की विशेष परिणति जो ध्रुवस्वभाव के साथ ध्रुवरूप रहनेवाली, व्यक्तरूप-उत्पाद-व्ययरूप नहीं, परन्तु अव्यक्तरूप। जैसे सामान्य त्रिकाल ध्रुवस्वभाव है, वैसे उसकी एक-एक समय की परिणतिरूप पर्याय भी अनादि-अनन्त एकरूप है, ऐसा वह पारिणामिकभाव, वह अखण्ड होता है। कहो, समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

जैसे धर्मास्ति आदि द्रव्य, गुण और पर्याय में... धर्मास्ति में पर्याय उत्पाद-व्यय है। उत्पाद-व्यय.. उत्पाद-व्यय.. उत्पाद-व्यय.. परन्तु एक पारिणामिकभाव से एक धारावाही। पारिणामिकभाव से। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल में परमपारिणामिकस्वभावभाव की उत्पाद-व्यय की पर्याय एकरूप है। पुद्गल में एकरूप नहीं। पुद्गल खण्ड-खण्ड और भंगरूप है, इसलिए एक परमाणु पृथक् रहे तो भी उसमें एक गुण स्निग्धता, अनन्त गुण स्निग्धता इत्यादि विषमताएँ होती हैं। परन्तु चैतन्य भगवान अखण्ड अभेदस्वरूप से वर्णन करने का स्वरूप अभी है और वह वस्तु का स्वरूप है, उसमें संसारपर्याय जो राग-द्वेष, पुण्य-पाप, संकल्प-विकल्प, असंख्य प्रकार (के होते हैं), ऐसी ही उसकी परिणतिरूप पर्याय भी त्रिकाल एकरूप है। प्रवीणभाई! क्या कहा, समझ में आया?

जैसे धर्मास्ति, अधर्मास्ति की पर्याय एकरूप त्रिकाल है, वैसे वस्तु चैतन्यमूर्ति आत्मा की पर्याय भी प्रगटरूप की अवस्था संसाररूप, मोक्षमार्ग और मोक्ष, वह विषम है, एक धारा नहीं है। अनादि-अनन्त एक धारा से पर्याय नहीं है। उस समय एक अव्यक्त पर्याय अर्थात् प्रगटरूप पर्याय बाह्य के उत्पाद के, व्यय के अनुभवरूप नहीं है, ऐसी एक शुद्धकारणपर्याय आत्मा में अनादि-अनन्त है कि जो पूरे स्वभाव, त्रिकाल और वर्तमान विशेष परिणति, ऐसा होकर पारिणामिक पदार्थ पूरा होता है और यह व्यवहारनय का विषय संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष, वह व्यवहारनय का विषय है और शुद्धनिश्चयनय का विषय, वह त्रिकाल स्वभाव और उसकी परिणति है। उस परिणति की व्याख्या चलती है।

यहाँ सहज शुद्ध निश्चय से,... देखो! अब यहाँ यह निश्चयस्वभाव, उसका त्रिकाल (का) वर्णन किया है। **यहाँ सहज...** स्वभाविक शुद्धनिश्चय। यह बात पहले ली है। आत्मा में सहज शुद्ध निश्चय से इतनी बात। **अनादि-अनन्त,...** एक आत्मा में आदि नहीं और अन्त

नहीं, ऐसी पर्याय (रही हुई है)। वह पर्याय, लेते हैं स्वभाव चतुष्टय। उसके साथ एक ऐसी की ऐसी पर्याय है। **यहाँ सहज शुद्ध निश्चय से, अनादि-अनन्त,...** स्वभाव चतुष्टय लेते हैं। स्वभाव चतुष्टय—अनादि-अनन्त आत्मा का स्वभाव चतुष्टय। दर्शन-ज्ञान-आनन्द और वीर्य, यह त्रिकाल स्वभाव चतुष्टय, वह **सहज शुद्ध निश्चय से, अनादि-अनन्त, अमूर्त,..** उसमें मूर्तपना नहीं। स्वभाव चतुष्टय त्रिकाल।

अतीन्द्रियस्वभाववाले... जो आत्मा का स्वभाव चतुष्टय अतीन्द्रियस्वभाव है। **अतीन्द्रियस्वभाववाले और शुद्ध ऐसे...** वह तो सहज शुद्ध निश्चय से वर्णन किया था। सहज शुद्ध निश्चयदृष्टि से। और यह **अनादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाले और शुद्ध ऐसे सहजज्ञान...** वह स्वयं ज्ञान अन्दर जो त्रिकाल (है, वह)। **शुद्ध ऐसे सहजज्ञानसहजदर्शन...** स्वभाविक त्रिकाल चारित्र और **सहज परमवीतरागसुखात्मक...** ये चार बोल लिये। ज्ञान-दर्शन-चारित्र और आनन्द इसमें लिया। कहो, समझ में आया? ऐसा जो **शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप...** आत्मा वस्तु की एक समय की पर्याय संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष है, उसे गौण करके त्रिकाली वस्तु जो है, **शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप...** त्रिकाल जो ज्ञान-दर्शन आनन्द और चारित्र। समझ में आया? इसमें ऐसा लिया है। उसमें-प्रगट में वीर्य लेंगे, भाई! समझ में आया?

ऐसा **शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप...** आत्मा का। **शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप जो स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप,...** आत्मा का, त्रिकाल स्वभाव अनन्त चतुष्टय। सहज ज्ञान-दर्शन-चारित्र, सहज परम वीतराग सुखानन्दस्वरूप स्वभाव अनन्त चतुष्टय का स्वरूप। आत्मा में त्रिकाल स्वभाव गुणरूप से यह... **उसके साथ की जो...** ऐसे त्रिकाल स्वभाव के साथ की जो **पूजित पंचम भावपरिणति...** वहाँ '**सहांचितपंचमभावपरिणति**' ऐसा शब्द है। तो **(उसके साथ की जो...)** पूजित पंचम भावपरिणति। देखो! यह पर्याय है। आत्मा द्रव्य, यह सहज (ज्ञान) आदि जो अनन्त चतुष्टय कहे, वे गुण और **(उसके साथ तन्मयरूप से रहनेवाली जो पूज्य ऐसी पारिणामिकभाव की परिणति),...** परिणति अर्थात् अवस्था, परिणति अर्थात् दशा, परिणति अर्थात् पर्याय, **वही कारणशुद्धपर्याय है—ऐसा अर्थ है।** देखो! यह बात जरा सूक्ष्म है।

वस्तु ऐसी है कि चैतन्यपिण्ड, उसका स्वभाव और स्वभाव के साथ की परिणतिरूप स्वभाव; स्वभाव के साथ की परिणतिरूप स्वभाव। निगोद से लेकर सिद्ध तक सब आत्माओं में शुद्ध कारणपर्याय एक धारा से बह रही है, उसमें कहीं भेद नहीं। कहो, समझ में आया? यह शुद्धनिश्चय से, सहज शुद्धनिश्चय से, सहज शुद्धनिश्चय से कारणशुद्धपर्याय। व्यवहार

से कार्यपर्याय दूसरी आयेगी। कहो, समझ में आया? यह सूक्ष्म है, मोहनभाई! बहुत सूक्ष्म है।

तथा, यह उत्पाद-व्यय की पर्याय संसार में अल्प ज्ञान या ज्ञान या राग-द्वेष या मोक्षमार्ग या मोक्ष, ये सब पर्याय विषमरूप है। अर्थात् एक धारा तीन काल... एक धारा तीन काल की यह पर्याय नहीं है। इसलिए पद्मप्रभमलधारिदेव ने अन्दर से कर्म-उपाधि-विवर्जित में से निकाला है। कर्म की उपाधि से विवर्जित, जिसमें कर्म की उपाधि नहीं, ऐसी पर्याय। उस पर्याय के दो प्रकार कहे हैं। ऐसे इसे तो कर्म के निमित्त की ही अपेक्षा नहीं। यह शुद्धकारणपर्याय जो है, उसमें तो कर्म का अभाव, ऐसे निमित्त की अपेक्षा भी नहीं है। कार्यशुद्धपर्याय में तो अभी कर्म की उपाधिरहित ऐसे निमित्त के अभाव की अपेक्षा भी है। पाठ तो एक ही है, इसमें से दो निकाले हैं। '**कर्मोपाधिविवर्जितपर्यायाः**' ऐसा कहा न? '**पर्यायाः**' पर्यायें हैं।

इस आत्मा की इस प्रकार से परमपारिणामिकस्वभाव, वस्तु का स्वभाव और उसकी परिणति एकरूप अभेद, एकरूप अखण्ड, एक धारावाही परिणति अन्दर बह रही है। कहो, समझ में आया? जैसा सामान्य शक्तिरूप स्वभाव है, वैसी उसकी परिणतिरूप भी उसका स्वभाव है। सामान्य.. सामान्य.. सामान्य.. सामान्य.. ध्रुव। ऐसी उसकी परिणति अर्थात् वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. यह पारिणामिक का वर्तमान, त्रिकाल पारिणामिकस्वभाव का वर्तमान, वर्तमानरूपी परिणति वह भी एक धारा से शुद्ध है। उस वर्तमान की अन्तर एकाग्रता करने से मोक्षमार्ग और मोक्ष प्रगट होता है। कहो, समझ में आया? देखो! नीचे है।

सहजज्ञानादि स्वभाव-अनन्त चतुष्टययुक्त... त्रिकाल। **कारणशुद्धपर्याय में से...** ऐसी कारणशुद्ध निर्मल एक धारा की अवस्था में से **केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टययुक्त कार्यशुद्ध पर्याय प्रगट होती है। पूजनीय परमपारिणामिकभावपरिणति, वह कारणशुद्धपर्याय है और शुद्ध क्षायिकभावपरिणति, वह कार्यशुद्धपर्याय है।** देखो! यह पर्याय के दो भेद। इस शुद्धकारणपर्याय में उत्पाद-व्यय नहीं है। समझ में आया? इसका उत्पाद-व्यय जो नया-नया उत्पाद होता है और पुरानी पर्याय व्यय होती है, ऐसा इस शुद्धकारणपर्याय में नहीं है। क्योंकि यदि उसका अनुभव प्रगट होवे तो किसी को संसार नहीं होता, तो व्यवहारनय ही नहीं हो। जैसा उसका त्रिकाली स्वभाव है, उसकी परिणति प्रगट एक धारा से होवे तो संसार, मोक्ष, मोक्षमार्ग, नवतत्त्व, छह द्रव्य, देव-गुरु-शास्त्र कुछ नहीं रहते।

और इस प्रकार यदि परिणति सामान्य के साथ की कारणरूप एक धारा न हो... समझ में आया? कारणशुद्धपर्याय अपेक्षारहित, जिसे कर्म का निमित्त और निमित्त के अभाव की

अपेक्षा कुछ नहीं है, ऐसी एक धारा शुद्धकारणपर्याय यदि न हो तो स्वभाव पारिणामिकभाव एक अभेदरूप सामान्य और विशेष, त्रिकाल शक्ति और वर्तमान दो का अभेदपनारूप पारिणामिकभाव सिद्ध नहीं होता। कहो, समझ में आया? त्रिकाल परिणति। यह तो प्रगट नहीं, हों! वापस कोई ऐसा कहे कि इसकी इसमें प्रगटरूप से वर्तती है तथा और विषमता की पर्याय भी संसार और मोक्षमार्ग में साथ-साथ वर्तती है, ऐसा नहीं है। परन्तु प्रगट होने का यह साधन-कारण है। शुद्ध आत्मा का मोक्षमार्ग और मोक्ष की पर्याय के अनुभव का वेदन, उसके कारणरूप से वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. वर्त रहा है। कहो, समझ में आया? यह स्वभाव अनन्त चतुष्टय का स्वरूप जो त्रिकाल है, उसके साथ की पूजित पंचम भाव परिणति, **वही कारणशुद्धपर्याय है—ऐसा अर्थ है।**

यह बात तो स्पष्ट इस जगह ही निकली है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र ऐसी प्रखर-स्पष्ट बात नहीं की है। पद्मप्रभमलधारिदेव ने अन्दर से निकाला और यह वस्तु का स्वरूप है। यह त्रिकाल पंचम पारिणामिकभाव एक धारा से परिणतिरूप रहे, यह वस्तु का स्वभाव है। उसे यहाँ व्यक्त-प्रगट कहकर बाहर रखा है (प्रसिद्ध किया है)।

संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष, यह तो निमित्त की अपेक्षावाला व्यवहारनय है। इसलिए उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं है परन्तु त्रिकाल ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि स्वभाव के साथ एक धारावाही, जितनी विषम पर्यायें हैं, उन सबकी अविषम एक परिणति धारा अनादि-अनन्त वर्त रही है। कहो, समझ में आया? यह कारणशुद्धपर्याय गुण नहीं है। यह कारणशुद्धपर्याय ध्रुव त्रिकाली, सामान्य एकरूप नहीं है। सामान्य के साथ का वर्तमान... वर्तमान परिणतिरूप भाव, वह यह कारणशुद्धपर्याय है। इसका प्रगट अनुभव किसी को नहीं होता। प्रगट अनुभव में वह पूरा एक समय में आ जाए तो वह पर्याय वापस पारिणामिकभाव से कारणरूप से नहीं रहती। कहो, समझ में आया? नारणभाई! क्या कहा? क्या यह पर्याय या गुण? पर्याय कैसी? यह उत्पाद-व्ययवाली या नहीं? उत्पाद-व्यय बिना की पर्याय, और परिणति? यह किस प्रकार की व्याख्या? उत्पाद-व्यय नये-नये समय में उत्पन्न होते हैं, पुराने का व्यय होता है, वह तो पर्याय की व्याख्या होती है परन्तु यह और किस प्रकार की?

एक धारा अखण्ड परमस्वभाव जैसा सामान्य है, वैसा विशेष, जैसा त्रिकाल है, वैसा वर्तमान एक धारा से परमपारिणामिक भगवान विराज रहा है। ऐसी की ऐसी पंचम भाव की परिणति से शोभित, पूजित, अर्चित, ऐसा का ऐसा विराज रहा है। उसमें कहीं खण्ड, त्रुटि कुछ आया नहीं ऐसी पर्याय में भी, परिपूर्ण भगवान गुण से तो है, परन्तु परिणति से परिपूर्ण

भगवान अनादि-अनन्त एक धारा से बह रहा है। कहो, समझ में आया?

श्रोता : उत्पाद-व्यय सत् है....

पूज्य गुरुदेवश्री : सत् है। उत्पाद-व्यय सत् है। सत् तो उत्पाद-व्यय भी सत् है। सत् तो सब सत् है। द्रव्य सत् है, गुण सत् है, कारणपर्याय सत् है, यह उत्पाद-व्यय भी सत् है, उत्पाद सत् है, व्यय सत् है। है तो सब (सत्), परन्तु यह एकरूप सत् है, सदृश एकरूप सत् है। त्रिकाल स्वभाव और कारणरूप पर्याय सदृश एक भावरूप-एक भावरूप सत् है। तब उत्पाद-व्यय भी सत् तो है। जो नयी पर्याय का उत्पाद होता है, वह भी सत् है और व्यय भी अभावरूप परन्तु सत् है। व्यय अभावरूप, परन्तु अभाव ऐसा स्वरूप है। इस प्रकार यह कारणशुद्धपर्याय भावरूप सत् है, इसमें अभावरूप नहीं आता। कहो, समझ में आया?

जैसा आत्मा त्रिकाल शुद्धस्वभाव गुणरूप से सत् है, ऐसी कारणशुद्धपरिणति भी पर्यायरूप सत् है। उसमें असत् का या व्यय का अभावरूप स्वरूप नहीं है और समय-समय की पर्याय उत्पन्न होती है, पूर्व की अवस्था व्यय होती है, वे दोनों भी हैं सत्, परन्तु वह उत्पाद एक समय के भाव के सत्रूप है, उत्पाद एक समय के भाव के अस्तिरूप सत् है और व्यय एक समय के अभावस्वरूप सत् है। अभाव भी स्वरूप है। ऐसा अभाव, वह स्वरूप है। वह बिल्कुल तुच्छ है, ऐसा है नहीं, इसी प्रकार उत्पाद एक समय के सत्स्वरूप है। उत्पाद-व्यय जो स्वरूप है तो उसकी वाणी है और स्वरूप है, उसका ज्ञान भी है। ऐसे शुद्ध त्रिकालस्वभाव और परिणति, वह स्वरूप है, उसका ज्ञान भी है और उसकी वाणी भी है। क्या कहा, समझ में आया?

त्रिकाल शुद्ध चैतन्यस्वभाव एकरूप... यहाँ तो कहा कि सहजशुद्धनिश्चय से। वापस अकेले निश्चय से भी नहीं। **सहज शुद्ध निश्चय से,...** इतनी बात। **अनादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाले और शुद्ध ऐसे सहजज्ञान-सहजदर्शन-सहजचारित्र-सहज परमवीतरागसुखात्मक...** इतनी भाषा प्रयोग की है। स्वभाविक परमवीतराग। यह प्रगट की बात नहीं है, यह तो त्रिकाल गुण की बात है। **सहज परमवीतराग...** ऐसे शब्द कहो तो वीत-राग है। राग का अभाव बतावे, ऐसा नहीं। यहाँ तो अस्तित्व ही अकेला बताया है। भाषा तो ऐसी है, भाई! वीत-राग, ऐसा नहीं लेगा यहाँ। **सहज परमवीतरागसुखात्मक...** स्वरूप। **शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप...** त्रिकाली शक्ति का कन्द भगवान, स्वभाव का कन्द भगवान, जो स्वभाव अनन्त चतुष्टय है, उसके स्वरूप के साथ विराज रही भगवान की परिणति, भगवान की परिणति, उसके साथ विराज रही है। भगवान चैतन्य की परिणतिरहित एक समय भी रहा

नहीं है। कहो, समझ में आया?

हर समय सदृश परिपूर्ण एकरूप भाव। जैसा त्रिकाल स्वभाव है, ऐसी ही परिणति की पर्याय एकरूप सदृश एक अभेदरूप अखण्ड, जैसा सामान्य वैसा वर्तमान, जैसा सामान्य वैसा विशेष, जैसा त्रिकाल स्वभाव, वैसी एक समय की *पर्याय, यह अभेद धारावाही चैतन्य में बह रहा है। उसे यहाँ भगवान कारणशुद्धपर्याय कहते हैं। यह तो जरा सूक्ष्म है, हों! अब परन्तु यह अभ्यास करे और इसमें जरा उतरे तो (समझ में आये ऐसा है)।

यह वस्तु है, वस्तु है, तो उसकी पर्याय जो है, उसकी एक पर्याय है, उसके स्व-स्वभाव की अपेक्षा से अभेदरूप धारावाही पर्याय होना चाहिए। पर की अपेक्षावाली संसार-मोक्ष, वह तो भेद का विषय हो गया। मोक्ष भी भेद और व्यवहार का विषय हो गया। सत् शुद्धनिश्चयनय का विषय, सहज शुद्धनिश्चयनय, वह तो त्रिकाल जैसा स्वभाव.. स्वभाव.. स्वभाव.. ध्रुव सामान्य.. सामान्य.. शक्तिरूप स्वभाव अनन्त चतुष्टययुक्त जो स्वरूप, उसके साथ जो विराज रही है, वह पूजित शब्द प्रयोग किया। अर्चित शब्द का अर्थ किया। उसमें विराजित किया था। पूजित, महापूजनीय परिणति है, कहते हैं। कहो, समझ में आया? यह भगवान त्रिलोकनाथ से और मोक्षमार्ग से तथा मोक्ष की अपेक्षा भी यह पंचम भाव की परिणति वह पूजनीय है। भाई! ...भाई! हिम्मतभाई ने पूजित शब्द का अर्थ किया है, हों! संचित का अर्थ, उसमें विराजित था। कहो, समझ में आया?

जो वर्तमान में वर्तमान जो चैतन्य की अन्दर शुद्धपरिणति कारणपर्याय, वह पूजनीय है, पूजनेयोग्य है, आदरणीय है, उस ओर का झुकाव करके एकाग्रता करनेयोग्य है कि जो वर्तमान में से जो मोक्ष का मार्ग प्रगट होकर मोक्ष होता है। इसलिए मोक्ष, मोक्ष का मार्ग या मोक्ष हुए दूसरे भगवान, इन सबकी अपेक्षा भी यह पंचमभाव की परिणति पूजनीय है। कहो, समझ में आया? तब दृष्टान्त दिया था।

समुद्र का दृष्टान्त दिया था, समुद्र का। पानी है न पानी! समुद्र का पानी। दल-दल, पानी का दल। वह पानी का दल है, ऐसी ही उसकी एकरूप सपाटी ऊपर है। क्या कहा, समझ में आया? जैसे पानी का दल है न! वैसी एकरूप एक धारावाही उसकी सपाटी है। उस पर फिर विषमता, पानी के छोटे-बड़े मेलवाली लहरें उठती हैं। मेलवाली छोटी-बड़ी लहरें उठती हैं, वे ऊपर में हैं। पानी का दल और एकरूप सपाटी की धारा है।

इसी प्रकार चैतन्य का सामान्य दल एकरूप है और उसकी एक-एक समय की शुद्ध

* वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान...

कारणपरिणतिरूप पर्याय सपाटी की भाँति वर्तमान.. वर्तमान.. त्रिकाल कारणरूप पर्याय वर्त रही है और उसके ऊपर में उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक ये चार प्रकार की पर्यायें ऊपर उत्पाद-व्ययवाली वर्त रही हैं। कहो, समझ में आया? तब दृष्टान्त दिया था। उसमें लिखा है। क्या कहलाता है? ....में। कहो, समझ में आया? है न वह हरा... ? क्या कहलाता है? नक्शा। कहो, समझ में आया? ऊपर है ऊपर।

वास्तव में तो भगवान आत्मा की यह व्याख्या अलौकिक व्याख्या की है कि वस्तु जैसी सामान्य है, वैसा विशेष... वर्तमान, जिसकी भूमि नकोर-नकोर, नकोर-नक्कर, निवड़, वज्रभूमि जैसी जिसकी विशेष शुद्धकारणपर्यायरूप परिणति त्रिकाल एकधारी वर्त रही है। जिसकी एकाग्रता से मोक्षमार्ग होता है और मोक्ष होता है परन्तु वह परिणति तो एकधारा है। उस परिणति में कहीं हीनता, खण्डित, भेदभंग कुछ नहीं होता। कहो, समझ में आया?

किसी को यह त्रिकाल पारिणामिकस्वभाव और वर्तमान पर्याय वह एकरूप है, इसमें वेदान्त जैसा भास हो जाए, ऐसा है। यह क्या? एकरूप त्रिकाल ऐसी परिणति एकरूप एक धारावाही। तो एक ही रूप हो गया। समाप्त। अनादि-अनन्त मुक्त ही है, उसमें दूसरा कुछ है नहीं। यह एक ही ऐसा कूटस्थ जैसा सामान्य कूटस्थ है। ऐसी इसकी कारणपर्याय भी एक धारावाही कूटस्थ हो गयी। यह तो वेदान्त जैसा होता है - ऐसा कितनों को लगता है। बात यह है कि परन्तु ऐसा है, ऐसा जाना किसने? उस कार्यपर्याय में अर्थात् मोक्षमार्ग में ज्ञात होता है। यहाँ कार्यपर्याय तो पूर्ण को लिया है।

ऐसा अखण्ड परमस्वभावभाव सामान्य और उसका वर्तमान विशेष वर्तता.. वर्तता.. वर्तता.. समझ में आया? पर्यायदृष्टि से यह विषय नहीं है। यह तो द्रव्यदृष्टि का विषय है। शुद्धनिश्चयनय का विषय है, शुद्धनिश्चयनय का विषय है। जो त्रिकाल एक धारा से उसकी परिणति परिणम रही है। ऐसा जो पारिणामिकस्वभाव सामान्य और विशेष, त्रिकाल ध्रुव और वर्तमान, ऐसा एकरूप स्वरूप यदि न हो तो धर्मास्ति आदि जो जड़पदार्थ, उनकी उत्पाद-व्यय की एक धारावाही पर्याय और भगवान उत्तम पदार्थ जो सबको जाननेवाला, उसमें एक धारावाही पर्याय न हो तो वह द्रव्यदृष्टि का, निश्चय का विषय वह पूरा नहीं होता। कहो, समझ में आया?

जब एक जड़ जैसा पदार्थ कि उसे खबर भी नहीं। धर्मास्ति को, अधर्मास्ति को, आकाश को, काल को (खबर भी नहीं कि) हम तत्त्व हैं या नहीं। उन्हें जाननेवाला तो आत्मा है, उन्हें आत्मा प्रसिद्ध करता है कि ये जगत के तत्त्व हैं क्योंकि उनमें प्रमेयत्व है, परन्तु

प्रमाणत्व नहीं है। तो प्रमेयत्व के अकेले गुण और विशेष... एक धारावाही पर्याय सरीखी बह रही है तो भगवान आत्मा वीतराग है। वीतराग जिसका त्रिकाल स्वभाव है तो उसकी परिणति भी वीतराग धारा से शुद्ध कारणपर्याय एक धारी वर्त रही है। उसमें वीतरागपना जो शुद्धस्वभाव शक्ति सामान्य है, उसकी ऐसी परिणति भी एक धारा वीतराग (वर्त रही है)। विषमता कम-ज्यादा हो तो विषम हो जाए। त्रिकाल कारणरूप पर्यायरूप परिणति है कि उसमें एकाग्र होने से, वर्तमान-वर्तमान में एकाग्र होने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय प्रगट होकर पूर्ण पर्याय होती है। कहो, समझ में आया?

लोग कहते हैं कि क्या करना? तो यह क्या करना, यह आता है या नहीं इसमें? ऐसी चीज़ सत्ता, स्वभाव का सागर, समुद्र अन्दर भरा है, उस समुद्र की सपाटी भी एक धारा से बह रही है। ऐसे चैतन्य त्रिकाल में उसकी परिणति भी एकरूप बह रही है। परिणति। उसके श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र करना, इसका नाम मोक्षमार्ग है। यह सम्यग्दर्शन का विषय, स्वभाव चतुष्टय सहित और परिणतिसहित दोनों इकट्ठा, वह शुद्धनिश्चय का विषय है। वे दो होकर यहाँ पारिणामिकभाव कहने में आता है।

पारिणामिक कहने से परिणामे भवः पारिणामिक। यह परिणाम अर्थात् इसे कोई अपेक्षा नहीं, स्वभावभाव ही वर्त रहा है... स्वभावभाव ही वर्त रहा है। कोई अपेक्षा नहीं। जैसे सामान्य को अपेक्षा नहीं, वैसे उसकी परिणति को भी कोई अपेक्षा नहीं। वह भी स्वभावभावरूप से परिणम रही है, कहो, समझ में आया?

देखो! भाई! यह विषय जरा नया है। पण्डितों को भी जरा समझना मुश्किल पड़ता है। इसलिए कहते हैं, यह क्या? परन्तु अब अन्दर कथन है, इसलिए फिर कोई इनकार नहीं करता। मिलान कर सकने में दिक्कत आवे परन्तु यह कथन है कि **यहाँ सहज शुद्ध निश्चय से,...** यह स्वभाव के साथ की एक परिणति शुद्धनिश्चय से है। व्यवहार से यह बात दूसरी आयेगी। अर्थात् यह परिणति व्यवहार के भंग की नहीं है, क्योंकि मोक्ष की कार्यशुद्धपर्याय तो बाद में आती है और यदि इसे गुण वर्णन करें तो यहाँ तो पर्याय है। गुण तो साथ में वर्णन किये। सहजज्ञान-दर्शन-आनन्द-चारित्र और परमस्वभाववीतरागसुखात्मक, ऐसा जो शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप। देखा? शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप।

जैसे दल होता है न? यह सार.. सार.. नहीं कहते? उस लकड़ी का सार नहीं, सार? कैसा आता है? शीशम-शीशम। शीशम का सार अन्दर होता है न? कस... कस...। इसी प्रकार चैतन्य का अन्दर का शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप कस। ऐसी स्वभाव अनन्त चतुष्टय के

साथ विराज रही परिणति धारा, भगवान और भगवान की परिणति दोनों साथ रहे हैं। कभी उसका एक समय का विरह है नहीं। परिपूर्ण समय-समय में परिणति परिपूर्ण है। तुझे कहीं ढूँढ़ने जाना पड़े, ऐसा नहीं है। निमित्त की अपेक्षा नहीं, राग की अपेक्षा नहीं, वर्तमान प्रगट पर्याय की अपेक्षा नहीं... ऐसे त्रिकाल स्वभाव-परिणति की अपेक्षा करने से, आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होते हैं। इसके अतिरिक्त उसका कोई दूसरा उपाय भी नहीं है। कहो, समझ में आया?

यह अध्यात्म और आगमपद्धति के व्याख्यान में भी यह बात आयी है। सुनी है? थे? आगम और अध्यात्म की पद्धति की बात अभी कही। उसमें भी संसार अवस्था में... संसार अवस्था में... द्रव्यभावरूप कर्म की पर्याय और द्रव्यभावरूप चैतन्य की पर्याय, वह संसार अवस्था में त्रिकाल वर्त रही है, वह आगमपद्धति में; अध्यात्मपद्धति में बनारसीदास ने परमार्थवचनिका में यह डाला है। सुना है या नहीं? नारणभाई! संसारदशा में त्रिकालवर्ती। चार बोल वर्णन किये हैं। संसारदशा में त्रिकालवर्ती चार बोल वर्णन किये हैं।

एक द्रव्यरूप कर्म की पर्याय। द्रव्यरूप कर्म की पर्याय, वह संसार में त्रिकाल है। संसार में। एक भावरूप विकार पर्याय, वह भी संसार में त्रिकाल है, ये दो। देखो! वहाँ द्रव्यरूप और भावरूप कहने से भी पर्याय ली है। द्रव्यरूप कर्म पुद्गल का उदय भावपर्याय और भावरूप कर्म के निमित्त के आश्रय से अपना अशुद्ध आकार-विकार, उसे भावरूप कर्मपद्धति की बात ली है। आगमपद्धति में दो बोल लिये हैं। समझ में आया? एक द्रव्यरूप और भावरूप। द्रव्यरूप कर्म का उदयभाव, वह पर्याय और भावरूप उसके आकार से विकार की पर्याय।

आत्मा में शुद्धचेतनापद्धति के दो बोल। शुद्धचेतनापद्धति के दो बोल। जैसे दो पर्याय वे, ऐसे दो पर्याय यहाँ। शुद्धचेतनापद्धति के दो बोल। शुद्धचेतना के अभेदरूप एक जीवत्व परिणाम, द्रव्यरूप परिणाम, है तो परिणाम। जीवत्वपरिणाम। पूरे का एकरूप अभेद गिनकर जीवत्वपरिणाम लिया। वह जीवत्वपरिणाम भी संसारदशा में त्रिकाल वर्तता है और एक ज्ञान, दर्शन आदि भावरूप परिणाम, वह भी संसार-अवस्था में त्रिकाल वर्तता है। यह आगमपद्धति का तो पढ़ा गया है न? सुना है न? कहो, समझ में आया?

देखो! ये चारों ही पर्यायें संसार में त्रिकाल संसारपर्याय में वर्तती हैं। मोक्ष में उन कर्म के निमित्त का तथा निमित्त की ओर के आकार-विकार, वह मोक्ष में नहीं है। इसलिए ये चार प्रकार का वर्णन संसार अवस्था में किया है। ऐसा लिखा है कि भाई! द्रव्य और भाव, यह

संसार में सदा जानो। यह इसमें जो भावरूप लिया है, भावरूप शुद्धचेतनापद्धति, समझ में आया? उसमें यह बात समाहित हो जाती है। कहो, समझ में आया?

ऐसी वस्तु जो है, वह त्रिकाल शक्तिरूप, उसका वर्तमान-वर्तमान भावरूप अर्थात् पर्याय, हों! वह त्रिकाल भाव नहीं। उसकी एक समय की पर्याय.. पर्याय.. पर्याय.. पर्याय.. परिणति वह त्रिकाल वर्त रही है। भगवान अखण्डानन्द परिपूर्ण पर्याय और गुण से विराज रहा है। ऐसे भगवान आत्मा की प्रतीति, ज्ञान और रमणता (होवे), उसका नाम मोक्षमार्ग है। दूसरा कोई मोक्षमार्ग है नहीं। कहो, समझ में आया? लो, यह कारणशुद्धपर्याय का इतना आया।

ऐसी निधि से भरपूर भगवान, उसकी परिणति में कभी न्यूनता हुई नहीं। वह कम माने, वह कम रहनेवाला है, ऐसा कहते हैं परन्तु वर्तमान.. वर्तमान परिपूर्ण भगवान है। जो खान में अन्दर भरा है, त्रिकाल तो भरा है शक्ति तो; इसकी वर्तमान परिपूर्णता भरी है, एकाग्रता की जितनी तेरी कचास, यह उतना अन्दर प्रगट होने में अभाव। परिपूर्ण पर्याय में भरा है। सिद्धपर्याय प्रगट हुई तो शुद्धकारणपर्याय तो वहाँ ऐसी की ऐसी पड़ी है कि भाई! सिद्धदशा प्रगट हुई तो, वहाँ परिणति में कुछ कमी हुई या नहीं?

ऐसा आत्मा अपना त्रिकाल स्वभाव जो अनन्त चतुष्टय, उसके स्वरूप के साथ की परिणति विराजित-शोभित-पूजित पंचमभाव की अवस्था को भगवान आचार्य अथवा मुनिराज कारणशुद्धपर्याय है, ऐसा कहते हैं। कहो, कारणशुद्धपर्याय '**इत्यर्थः**' ऐसा इसका अर्थ है। अब कार्यशुद्धपर्याय। कहो, समझ में आया? वीरजीभाई! वीरजीभाई कहते हैं कि यह दशहरे का दिन है इसलिए... यह तो सहज रीति से अपने १५वीं गाथा आयी है। दशहरा तो अभी लोगों को कल है।

सजाया हुआ तैयार हथियार यह है। तैयार पड़े हैं। कहते हैं न कि... वे ... में हथियार थे, वे तैयार किये। रामचन्द्रजी आज दशहरे के दिन युद्ध जीतकर अयोध्या आये और भरत चक्रवर्ती भी दशहरे के दिन विजय करने निकले, ऐसा कहते हैं न? इसलिए विजयादशमी कहलाता है। आसोज महीने का नाम विजय मास कहलाता है। आसोज महीने का नाम ही विजय मास है। इसलिए इसका नाम दशहरा, परन्तु वह तो समझने जैसी बातें हैं। यह तैयार कहते हैं कि जैसे वे हथियार पड़े थे, वैसे चैतन्य भगवान की परिणति में तैयार सजी हुई परिणति-हथियार पड़ा है। है? अन्दर पड़े ही हैं।

वस्तु अन्दर एकधारा से पड़ी है। उसे ख्याल में और श्रद्धा में आवे, तब उसे व्यक्त

दिखती है। बाकी वस्तु तो ऐसी की ऐसी पड़ी है। कहो, समझ में आया? इसका पिता पूँजी रख गया परन्तु जब तक इसे ख्याल में न आवे, तब तक तो कार्यकर्ता, ट्रस्टी आदि होवे, उसे ख्याल होवे कि हाँ, मैं अब अधिपति हूँ।

इसी प्रकार चैतन्यस्वभाव वस्तु का स्वभाव, यह गीत। देखो, यह समझने जैसा है। मोहनभाई! कहते हैं कि पैसा नहीं, स्त्री, पुत्र, नहीं, शरीर नहीं, कर्म नहीं, पुण्य-पाप नहीं, वर्तमान प्रगट हुई पर्याय नहीं। यह सब बाहर का। एकरूप धारावाही, एकरूप सपाटी चैतन्य त्रिकाल विराजता है। एकरूप समुद्र की सपाटी भगवान ज्ञान-आनन्द के समुद्र की एकरूप सपाटी, एक धारा बह रही है, उसे पूजनीय कहा जाता है। पूजित यह पूजित, वह पूज्य है तो फिर दूसरा सब व्यवहार से पूजनीय कहलाता है। निश्चय से तो यह पूजनीय है कि जिसके आधार से केवलज्ञान प्रगट होता है। फलरूप कार्यपर्याय प्रगट होती है, फलरूप कार्यपर्याय प्रगट होती है। वह फलरूप नहीं, वह तो वस्तुरूप कायम है। फलरूप की अब व्याख्या करते हैं।

सादि-अनन्त,... देखो! यह फल की व्याख्या (करते हैं)। केवलज्ञानादि तो सादि-शुरुआत हुई है। यह कारणपर्याय शुरु ही है और यह तो अनादि-अनन्त एक धारावाही है। सादि केवलज्ञान आदि जो अनन्त चतुष्टय है, उनकी शुरुआत होती है परन्तु अनन्त हैं। फिर उनका अन्त नहीं आता। काल बताते हैं। उसमें था कि अनादि-अनन्त, यह काल बताया था। कारणशुद्धपर्याय अनादि-अनन्त यह काल बताया था और शुद्धनिश्चय, वह उसका नय बताया था। यहाँ नय बाद में आयेगा। .....भाई! इसमें नय बाद में आयेगा।

सादि-अनन्त, अमूर्त,... अनन्त चतुष्टय फलरूप कार्यपर्याय भी अमूर्त है। उसे कोई रंग, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है। यह विशेषण अनादि और सादि इतना बदला है। **अतीन्द्रियस्वभाववाले...** यह केवलज्ञानादि जो फलरूप प्रगट होते हैं, वह अतीन्द्रियस्वभाव है। वह भी अतीन्द्रियस्वभाव है। वह भी कर्म उपाधिरहित है। भले निमित्त था और कहा, परन्तु वह वर्तमान कर्म उपाधि नहीं है। और वह कारणशुद्धपर्याय त्रिकाल कर्म उपाधि नहीं है। कारणशुद्धपर्याय को त्रिकाल कर्म उपाधि नहीं है और कार्यशुद्धपर्याय को वर्तमान कर्मोपाधि का निमित्तपना नहीं है। इतना दोनों में अन्तर है।

अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्धसद्भूतव्यवहारनय से,... यह नय लिया। उसमें सहज शुद्धनिश्चयनय से लिया था। पहले लिया था। बाद में यह लिया। **शुद्धसद्भूतव्यवहार से,...**

शुद्धपर्याय है; सद्भूत, अपनी पर्याय है और व्यवहार, त्रिकाल का वह भेद है। त्रिकाल का वह भेद है। शुद्धसद्भूत अपनी पर्याय है और व्यवहार अर्थात् त्रिकाल में से वह भेद है। कारणपर्याय त्रिकाली है और यह जो केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि, वह प्रगट हुई नयी (पर्याय) है, इसलिए उसे व्यवहार कहा है।

केवलज्ञान... शुद्धसद्भूतव्यवहार से **सादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाले केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसुख-केवलशक्तियुक्त..** इसमें वीर्य लिया। त्रिकाल में चारित्र और आनन्द लिया था। समझ में आया? यहाँ केवलशक्तियुक्त अर्थात् वीर्य। वीर्य प्रगट हुआ। प्रगट हुआ, यह कार्य की बात है। ऐसे **केवलशक्तियुक्त फलरूप अनन्त चतुष्टय के साथ की...** यह फलरूप जो प्रगट हुआ है। **(अनन्त चतुष्टय के साथ तन्मयरूप से रहनेवाली) जो परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव की शुद्धपरिणति,...** अर्थात् कि सब पर्यायें जो क्षायिक हो गयी हैं, उनका अभेदरूप एक धारावाही, एक धारावाही **परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव की शुद्धपरिणति, वही कार्यशुद्ध-पर्याय है।** कहो, इसमें जितने सब गुण क्षायिक हो गये, उन्हें अभेद वर्णन करके एक शुद्ध क्षायिकभाव की परिणति कहकर उसे कार्यशुद्धपर्याय कहते हैं। समझ में आया?

मुनि ने कितनी बात निकाली है! जंगल में रहकर ऐसे सिद्ध के साथ गम्मत करते थे। सिद्ध अर्थात् आत्मा, हों! अन्दर आनन्द के साथ रमते-रमते बाहर रमणता की। बाहर प्रसिद्ध किया की बाहर कि देख भगवान, तू ऐसा है।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, केवलज्ञान का कारण शुद्धकारणपरिणति त्रिकाल एकरूप है न? भगवान और भगवान की रानी दोनों एक साथ विराज रहे हैं। उन्हें कहीं विरोध नहीं है। केवलज्ञान बाद में कहे... त्रिकाल शुद्ध भगवान आत्मा और शुद्धकारणपरिणतिरूप रानी। शुद्धस्वभाव त्रिकाल राजा और उसकी परिणतिरूपी रानी त्रिकाल परिणम रहे हैं। त्रिकाल एक धारावाही है।

चरणानुयोग में तो कहते हैं, स्त्री! तू मेरी कुछ नहीं है। मेरी शुद्ध अनुभूतिरूपी स्त्री है, वह तो प्रगट हुई परिणति स्त्री की बात की। चरणानुयोग में (आता है), हे स्त्री! तू शरीर को रमानेवाली है। जब आज्ञा माँगते हैं (उस प्रसंग में प्रवचनसार चरणानुयोग चूलिका में यह कथन है)। मेरी परिणति को रमानेवाली तू नहीं है। मेरी शुद्धपरिणतिरूपी स्त्री प्रगट हुई है

इसलिए आज्ञा दे। मैं दीक्षित होऊँगा। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि वह परिणति तो प्रगट हुई है, यह तो त्रिकाल शुद्धपरिणति रहित एक समय भी रहा नहीं, ऐसी कारणपरिणति की एकाग्रता का भान होने पर जहाँ पूर्णदशा प्रगट हुई, उसे यहाँ क्षायिकभाव की शुद्धपरिणति कहते हैं। इसका नाम कार्यशुद्धपर्याय है। चतुष्टय तो लिये। चार तो लिये परन्तु इसके अतिरिक्त की जितनी पर्याय प्रगट हुई, उसे अभेद गिनकर... अभेद गिनकर **परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव की शुद्धपरिणति,...** (कहा)।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह मूल वस्तु है। अनन्त चतुष्टय मूल है न ? दोनों में यह वर्णन किया है।

श्रोता : पर्याय नहीं.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, पर्याय नहीं। यह मूल है। त्रिकाल अन्त:तत्त्वस्वरूप है। त्रिकाल अन्त:तत्त्वस्वरूप तत्त्व है। उसके साथ की पर्याय। पश्चात् उसकी एक समय की पर्याय लेना। वह तो इकट्ठा आया परन्तु वह तो अन्त:तत्त्वस्वरूप। त्रिकाल स्वरूप के साथ की जो पूजित परिणति। वह शक्तिरूप जो चार गिने। यहाँ तो अनन्त चतुष्टय की बात की है। दो में अनन्त चतुष्टय की प्रधानता वर्णन करने को। अनन्त चतुष्टय के साथ में रही हुई, परन्तु इसकी एक समय की पर्याय तो वापस अभेद में आ जाती है। कारणशुद्धपर्याय में ज्ञान, दर्शन, चारित्र एक-एक समय की पर्याय में अभेद में आ जाता है। यहाँ तो अभेद वर्णन करके कारणशुद्धपर्याय में सबकी पर्याय की एकता कर डाली है, यहाँ भी चार लिये। उसके साथ भी दूसरी सब पर्यायें साथ में रही हुई गिन लेना। चार के साथ दूसरी ली न ? वे तो हैं, परन्तु इसके अतिरिक्त। **परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव की शुद्धपरिणति, वही कार्यशुद्धपर्याय है।**

देखो ! इस स्वभावपर्याय के दो भेद। कहो, समझ में आया ? पर्याय के दो भेद : एक स्वभावपर्याय और एक विभावपर्याय। स्वभावपर्याय के दो भेद : एक कारणशुद्धपर्याय और एक कार्यशुद्धपर्याय। उसमें कारणशुद्धपर्याय त्रिकाली है, कार्यशुद्धपर्याय सादि-अनन्त है। कारणशुद्धपर्याय शुद्धनिश्चयनय का विषय है, कार्यशुद्धपर्याय शुद्धसद्भूतव्यवहारनय का विषय है। कहो, समझ में आया ? वस्तु है तो इसके ज्ञान में आती है और वाणी भी ऐसी होती है। इसलिए यहाँ कहा कि इस स्वभावपर्याय के जो दो भेद लिये थे, उसमें इस प्रकार से दो पूरे किये। वही दूसरी स्वभावरूपपर्याय... स्वभावपर्याय का भेद है न ? वह तीसरा लेंगे।

परन्तु इस प्रकार जो दो भेद कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय कहा था, वह पूरा हुआ। उसको कारण और कार्य कुछ लाना पड़ता नहीं है, वह तो त्रिकाली... अब कहेंगे यह। उसे कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय ऐसा नहीं, वह तो पहले आ गयी है। उसकी यह बात... त्रिकाल एकरूप है परन्तु यह जो स्वभाव की कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय कही, उसकी व्याख्या यहाँ पूरी होती है। कहो, समझ में आया?

अथवा, पूर्व सूत्र में कहे हुए... सूक्ष्म ऋजुसूत्र में कहाँ? **परिसमन्तात्...** आया था न? '**परिसमंतात भेदं गच्छति पर्याय।**' आगम प्रमाण से स्वीकार करनेयोग्य स्वभावपर्याय छह द्रव्य और साधारण अर्थपर्याय है वह। वह भी स्वभावपर्याय है परन्तु उसे कारण-कार्य कुछ लागू नहीं पड़ता। ऐसे छहों द्रव्यों को साधारण है। **पूर्व सूत्र में कहे हुए...** यहाँ नय प्रयोग नहीं किया। **सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय के अभिप्राय से,...** अर्थात् एक-एक समय की पर्याय को लक्ष्य में लेनेवाला सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय। **छह द्रव्यों को साधारण...** देखो! यहाँ नय उतारा है। उसमें नय नहीं उतारा था। साधारण बात की थी। वाणी अगोचर, यह साधारण बात की। उसमें तीन में नय उतारे। पहले में कारणशुद्धपर्याय में सहजशुद्धनिश्चयनय उतारा। दूसरे में उतारा शुद्धसद्भूत -व्यवहार, तीसरे में उतारा सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय का अभिप्राय। भाई! इसमें तीनों में नय उतारा। ऐसी तो पहले बात कह गये हैं, परन्तु वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान... एक ऐसी आगमगम्य सूक्ष्म बात कोई अर्थपर्याय है कि जो **छह द्रव्यों को...** साधारण है। यह पहले बात की। यह तो जीव की बात हुई। कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय तो जीव में है और यह जो है, वह तो छहों द्रव्यों को साधारण अर्थात् सबको है। यह तो संसार जीव में भी है, संसार की विकारी व्यंजनपर्याय के समय भी है। संसारी दूसरी अर्थविकारीपर्याय, उस समय भी यह है और त्रिकाल सिद्ध में भी है तथा परमाणु में भी एक परमाणु के समय और स्कन्ध के समय भी है।

छह द्रव्यों को साधारण और सूक्ष्म—ऐसी वे अर्थपर्यायें शुद्ध जानना... लो। स्वभावपर्याय का एक भेद यह भी जानना। आत्मा की अपेक्षा से कारण और कार्यपर्याय लेना। छह द्रव्य की साधारण अपेक्षा से इस अर्थपर्याय को शुद्ध जानना। **(अर्थात्, वे अर्थपर्यायें ही शुद्धपर्यायें हैं)।** वे छह द्रव्यों के लिये साधारण हैं। जीव के लिये वह है। कहो, समझ में आया? मूल तो नारक से शुरु किया है। जीव का अधिकार है न? भाई! मूल तो जीव अधिकार है। इसलिए जीव में से कारण-कार्य सिद्ध करके पश्चात् साधारण एक व्याख्या कर डाली। बाकी मूल अधिकार जीव का है। इसलिए कारण और कार्य कहने के बाद कहा, छहों द्रव्यों को साधारण एक अर्थपर्याय है, जो आगमगम्य है, षड्गुण हानि-वृद्धियुक्त है, उसे भी शुद्ध अर्थपर्याय कहा जाता है। **(इस प्रकार) शुद्धपर्याय के भेद संक्षेप में कहे।** लो, पूरा हुआ। तुम्हारा एक घण्टा पूरा हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१६ श्री नियमसार, गाथा-१५ प्रवचन - ४१४
दिनांक - १०-०१-१९५५

श्री नियमसार, जीव अधिकार, इसकी १४वीं गाथा का अन्तिम कलश है। २६वाँ कलश।

क्वचिल्लसति सद्गुणैः क्वचिदशुद्धरूपैर्गुणैः,
क्वचित्सहजपर्ययैः क्वचिदशुद्धपर्यायकैः।
सनाथ-मपि जीव-तत्त्व-मनाथं समस्तैरिदं,
नमामि परिभावयामि सकलार्थसिद्धयै सदा।।२६।।

देखो! इस १४वीं गाथा के अन्तिम उपसंहार में तीन श्लोक कहते हैं, उसमें दो तो कहे जा चुके हैं। अन्तिम लाईन एक ही है न?

देखो! कहते हैं, यह जीवतत्त्व कैसा है?—कि **क्वचित् सद्गुणों सहित विलसता है,...** भगवान आत्मा-जीव पदार्थ स्वभाव ज्ञायक क्वचित् अर्थात् किसी समय सद्गुणों अर्थात् केवलज्ञानादि पर्यायसहित भासित होता है। विलसता है अर्थात् **दिखाई देता है;... दिखाई देना; दिखना; झलकना; आविर्भूत होना; प्रगट होना।** इतने अर्थ किये हैं। भगवान आत्मा एक समय में जो पूर्ण ज्ञायकस्वभाव है, उसकी पर्याय में क्वचित् पर्याय शब्द से यहाँ गुण लिये हैं। सद्गुण अर्थात् केवलज्ञानादि गुण, क्वचित् किसी समय अन्दर पर्याय में झलकते हैं।

क्वचित् अशुद्धरूप गुणों सहित विलसता है;... क्वचित् अर्थात् किसी समय, अशुद्धगुण अर्थात् मति और श्रुतज्ञानादि विभावगुण, इनसे वह जीवतत्त्व पर्याय में दिखता है। समझ में आया? **क्वचित् अशुद्धरूप गुणों सहित विलसता है;...** अर्थात् कि जब ऐसे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि विभावगुणों का लक्ष्य जाता है, तो वह उस समय आविर्भाव मानो मति और श्रुत के विभावगुणरूप अशुद्धगुणरूप दिखायी देता है। **क्वचित् सहज पर्यायों सहित विलसता है...** क्वचित् इसकी षट्गुण हानि-वृद्धि जो अगुरुलघुगुण की जो पर्याय है, जो षट्द्रव्य को, छहों द्रव्यों को सामान्यरूप से है, ऐसी एक आत्मा में षट्गुणहानिवृद्धिरूप जो पर्याय है, जो अनादि-अनन्त सामान्य अर्थपर्यायरूप है, इस प्रकार से भी विलसता अर्थात् दिखायी देता है।

और क्वचित् अशुद्ध पर्यायों सहित विलसता है। किसी समय अशुद्ध पर्याय अर्थात् व्यंजनपर्याय—मनुष्य, देव, नारकी, पशु आदि की व्यंजन अर्थात् प्रदेश गुण की आकृति विकारी पर्याय, इस प्रकार से आत्मा पर्याय में दिखायी देता है अथवा ऐसी पर्याय आविर्भूत को प्राप्त होती है। प्रगट होती है, ऐसा दिखायी देता है। चार बातें की। समझ में आया? **इन सबसे सहित होने पर भी,...** देखो! पर्याय का विषय तो है, व्यवहारनय का विषय है। यह केवलज्ञानादि पर्याय शुद्धगुणरूप, मतिज्ञानादि पर्याय अशुद्धगुणरूप, षट्गुणहानिवृद्धिरूप पर्याय सहज पर्यायरूप और व्यंजन पर्यायरूप से अशुद्ध पर्याय-इन **सबसे सहित होने पर भी,...** आत्मा की पर्याय में यह व्यवहारनय का विषय है, विद्यमान है, वह नहीं है - ऐसा नहीं है। देखो! इस प्रकार चारों व्यवहारनय का विषय है। केवलज्ञानादि, मति-श्रुतज्ञानादि, अगुरुलघु आदि षट्गुणों की (षट्गुणीहानिवृद्धि की) पर्याय, वह भी ऋजुसूत्र की वर्तमान सहज पर्याय, वह वर्तमान नय का विषय है और अशुद्ध पर्याय व्यंजनपर्याय भी वर्तमान नय का विषय आत्मा की पर्याय में है। पर्यायरूप से विद्यमान विषय है।

(इन सबसे सहित होने) **पर भी, जो इन सबसे रहित है...** अकेला एक समय में ज्ञायक परमात्मतत्त्व, जो कि केवलज्ञानादि पर्यायरहित त्रिकाल तत्त्व है, मतिज्ञानादि गुण विभावरहित तत्त्व है और अगुरुलघु की षट्गुण वृद्धि (हानि) एक समय में पर्याय हो, उस रहित भी एक जीवतत्त्व एकरूप है और अशुद्ध व्यंजनपर्यायरहित प्रदेशगुण की आकृतिरूपी विभाव पर्याय से भी रहित है। **ऐसे इस जीवतत्त्व को...** देखो! एक समय में ज्ञायक त्रिकाल द्रव्य-गुण और शुद्धकारणपर्यायसहित का जीवतत्त्व लिया है। वह **इन सबसे रहित है...** देखो! है और नहीं।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ये चार तो प्रगट रूप से।

इन सबसे रहित है... एक जीवतत्त्व। ज्ञायकतत्त्व। एक समय में पूर्ण द्रव्य, गुण और पर्याय से शुद्ध, पर्याय अर्थात् कारणशुद्धपर्याय से शुद्ध अभेद एकरूप तत्त्व, इन पर्यायों में चार प्रकार से दिखायी देता है। केवलज्ञानादि पर्याय, मतिज्ञानादि पर्याय, सहज अगुरुलघु पर्याय और अशुद्ध व्यंजनपर्याय, तथापि इन चारों पर्यायरहित जीवतत्त्व, एकरूप अखण्ड ज्ञायकतत्त्व है, वह पर्याय से रहित है। **इन सबसे रहित है—ऐसे इस जीवतत्त्व को मैं...** ऐसे जीवतत्त्व को मैं। **सकल अर्थ की सिद्धि के लिए...** सकल आत्मा की मोक्षपर्याय निर्मल आनन्द अमृत

के अनुभव की पर्याय, उसकी **सिद्धि के लिए सदा नमता हूँ,...** निरन्तर उस ज्ञायकभाव की ओर मेरी रुचि और परिणमन चलता है। समझ में आया?

एक समय में, सेकेण्ड का असंख्य भाग, उसमें आत्मा जीवतत्त्व पूर्णानन्द पड़ा है। ऐसा जीवतत्त्व; ये चार प्रकार की पर्यायें व्यवहारनय का वर्तमान विषय, ये पर्यायें, पर्याय में होने पर भी जिस स्वभाव में त्रिकाल में इनका अभाव है, ऐसा जो जीवतत्त्व, उसे **मैं सकल अर्थ की सिद्धि के लिए...** ऐसा कहना चाहते हैं कि मोक्ष की सिद्धि इस अन्तर ज्ञायकतत्त्व के अवलम्बन से होती है। इसके अतिरिक्त हो नहीं सकती। ऐसी सिद्धि के लिए सदा, निरन्तर एक समय का विरह पड़े बिना। मति या अज्ञानादि भले विभाव हो, केवलज्ञान तो साधकदशा में है नहीं परन्तु ख्याल में है कि प्रगट होनेवाला है और सहज अगुरुलघु षट्गुणहानिवृद्धि पर्याय में वर्तती है, वह आगम प्रमाण से स्वीकार करनेयोग्य है और अशुद्धपर्याय का ख्याल आता है कि विभावरूप व्यंजनपर्याय है।

यह सब होने पर भी उस समय, उस क्षण में सदा निरन्तर मैं ऐसे जीवतत्त्व में नमता हूँ, झुकता हूँ, उन्मुख होता हूँ, परिणमता हूँ, भाता हूँ, एकाग्र होता हूँ। कहो, समझ में आया? नमता हूँ, नमन करता हूँ, उन्मुख होता हूँ, अन्तर परिणमन करता हूँ। एक समय के विरह बिना साधकस्वभाव में ज्ञायक चैतन्यतत्त्व की ओर श्रद्धा-ज्ञान की रमणता में उसे किसी समय विरह और अन्तराल नहीं पड़ता। समझ में आया?

ऐसे इस जीवतत्त्व को मैं सकल अर्थ की सिद्धि के लिए सदा नमता हूँ, भाता हूँ। मैं ऐसी भावना करता हूँ। यह १४वीं गाथा पूर्ण हुई। अब १५वीं गाथा।

णरणारयतिरियसुरा पज्जाया ते विहावमिदि भणिदा।
कम्मोपाधिविवज्जियपज्जाया ते सहावमिदि भणिदा।।१५।।

तिर्यञ्च, नारकि, देव, नर पर्याय हैं वैभाविकी।
पर्याय कर्मोपाधि वर्जित हैं कही स्वाभाविकी॥१५॥

लो, यह १५वीं गाथा। लोग इन्तजार करते थे, वह आज आयी। पहले अन्वयार्थ,

'**नरनारकतिर्यक्सुराः पर्यायाः**' देखो! वहाँ १४वीं गाथा में पर्याय के दो भेद कहे थे। दूसरे पद में। समझ में आया? १४वीं गाथा में। '**पज्जाओ दुवियप्पो**' पर्याय दो प्रकार की। स्व-पर अपेक्षित और निरपेक्षित, ऐसे दूसरे पद में दो प्रकार कहे थे। उसमें से स्व-पर अपेक्षित पर्याय का यह पहला पद है। **मनुष्य, नारक, तिर्यञ्च और देवरूप पर्यायें, वे**

विभावपर्यायें कही गई हैं;... जो वहाँ स्व-पर अपेक्षित कहे थे, उन्हें यहाँ विभावपर्याय कहकर उसका वर्णन किया है। क्योंकि उसमें व्यंजनपर्याय में स्व-पर्याय अपनी योग्यता भी है और कर्म के निमित्त की उपस्थिति है, इसलिए उसे स्व-पर अपेक्षित व्यंजनपर्याय, विभाविक पर्याय को स्व-पर अपेक्षित कहने में आया है। **कर्मोपाधि रहित पर्यायें,...** यह दूसरे पद का पहला शब्द है। '**कर्मोपाधिविवर्जितपर्यायाः**' **कर्मोपाधि रहित पर्यायें,...** इसमें से यह सिद्धान्त पद्मप्रभमलधारिदेव ने इस शब्द में से निकाला है। मूल वस्तु इसमें से निकाली है।

कर्मोपाधि रहित पर्यायें, वे स्वभावपर्यायें कही गयी हैं।... '**निरपेक्षः**' १४वीं गाथा में अन्तिम बोल जो 'निरपेक्ष' था। वह निरपेक्ष पर्याय, कर्म उपाधिरहित पर्याय को निरपेक्ष पर्यायरूप से कही गयी है। उसमें कर्म के वर्तमान निमित्त की अपेक्षा नहीं, ऐसी स्वभाविक पर्याय कहने में आयी है। भगवन्तों ने कहा है, मुनियों ने कहा है, तदनुसार कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं भी कहता हूँ और पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि हमें परम्परा से इसका जो अर्थ मिला है, उसी की टीका और व्याख्या मैं करता हूँ।

अब, व्यंजनपर्याय जो पहला पद है, उसकी व्याख्या पहले न करके, पहली व्याख्या स्वभावपर्याय की करते हैं क्योंकि स्वभाव का भान होवे, उसे व्यंजनपर्याय का यथार्थ भान कहा जाता है; नहीं तो व्यंजनपर्याय का भी वह व्यवहारज्ञान यथार्थ नहीं कहलाता।

टीका : — यह स्वभावपर्यायों तथा विभावपर्यायों का संक्षेप कथन है। देखो! भाषा ऐसी ली है वापस। '**संक्षेपोक्ति**' थोड़ा कथन है। विस्तार तो वह यथार्थरूप से स्वयं ज्ञानगम्य से अधिक विचार लेना। संक्षेप कथन यह है। स्वभावपर्याय और विभावपर्याय का संक्षिप्त कथन है।

वहाँ, स्वभावपर्यायों और विभावपर्यायों के बीच... दो के अन्दर में। **प्रथम स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही जाती है,...** स्वभावपर्याय जो निरपेक्ष पर्याय, जो भेदरूप पर्याय। '**परिसमंतात भेदं गच्छति**' आया था न! वह स्व-पर अपेक्षारहित पर्याय अर्थात् अकेली निरपेक्ष पर्याय अर्थात् स्वभावपर्याय अर्थात् कर्मोपार्जित के निमित्त की अपेक्षा रहित पर्याय अर्थात् सामान्य आत्मा त्रिकाल है, उसके भेदरूप पर्याय, उसकी विशेषरूप पर्याय... **स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही जाती है, कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय।** ऐसे दो भेद हैं। स्वभावपर्याय के दो भेद—एक, कारणशुद्धपर्याय; दूसरी, कार्यशुद्धपर्याय। अब वह कारणशुद्धपर्याय कौन?

सामान्य जो आत्मा एक समय में द्रव्य और गुण से शुद्ध ध्रुव एकरूप है, उसका एक

अंश विशेष। '**परिसमंतात भेदं गच्छति इति पर्यायः**' जो आत्मा एक समय में द्रव्य, गुण से शुद्ध ध्रुव... ध्रुव.. ध्रुव... है, उसकी एक समय की विशेष, एक समय का भेद, सामान्य एक समय का अंश जो कारणपर्यायरूप से कारणशुद्धपर्यायरूप से कहने में आवे, वह पर्याय निरपेक्ष पर्याय है, सामान्य त्रिकाल द्रव्य-गुण की अपेक्षा से वर्तमान अंश... अंश... अंश... अंश... अंश... है सदृश, है ध्रुव, है निश्चयनय का विषय। सेठी! तथापि वह पर्याय सामान्य जो द्रव्य है और गुण है, वह सामान्य सदृश,... सामान्य सदृश, उसका विशेष सदृश।

कारणस्वभावपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, कारणस्वभावपर्याय कहो या कारणशुद्धपर्याय कहो, वह उसका अंश है। वह अंश और कार्यशुद्धपर्याय का स्वभाविक प्रगट अंश है। प्रगट अंश... प्रगट अंश, वह भी निरपेक्ष है, वह भी भेदरूप है, वह भी कर्म के निमित्त की उपस्थिति उसमें नहीं और वह भी एक अंशरूप है। उस स्वभावपर्याय के दो अंश हैं : एक कारणशुद्धपर्याय, एक कार्यशुद्धपर्याय। उस अंश में कारणशुद्धपर्याय की पहले व्याख्या चलती है।

यहाँ सहज... स्वभाविक शुद्ध निश्चय से,... आत्मा एक समय में सामान्य द्रव्य और गुण से जो शुद्ध है, स्वभाव है, स्वभाविक है, सहज है। उसके साथ रहा हुआ एक समय की ध्रुव सदृश पर्याय स्वभाविक है, शुद्ध है। निश्चयनय का निश्चयदृष्टि का वह विषय है। द्रव्यार्थिकनय का वह विषय है, अभेददृष्टि का वह ध्येय है। वह **सहज शुद्ध निश्चय से, अनादि-अनन्त,...** परमपारिणामिकभाव जो शक्तिस्वभावरूप, जिसमें से केवलज्ञानादि अनन्त... अनन्त... अनन्त... पर्यायें आविर्भाव / प्रगटपने को प्राप्त होती है, ऐसा जो द्रव्य-गुणस्वभाव, उसके साथ एक पर्यायरूप अंश स्वभाव, कारणशुद्धपर्याय, वह अनादि-अनन्त है, अनादि-अनन्त। जिसे आगे पारिणामिकभाव की परिणति कहने में आता है। पारिणामिकभाव की परिणति, पारिणामिकभाव की पर्याय, पारिणामिकभाव का अंश, पारिणामिक सामान्य भाव की भेदरूप विशेष पर्याय। ओहोहो! समझ में आया?

अनादि-अनन्त, अमूर्त,... उसमें मूर्तपना नहीं। समझ में आया? **अतीन्द्रियस्वभाववाले..** जो पर्याय शुद्ध ध्रुव, विशेष स्वभाव अंश, जो सामान्य अभेद का अंशरूप भेद परन्तु द्रव्यदृष्टि से तो सब तीनों अभेद हैं। निश्चयदृष्टि से तीनों अभेद हैं। ऐसे **अतीन्द्रियस्वभाववाले...** वह इन्द्रियस्वभाव से गम्य नहीं और वह स्वयं अतीन्द्रियस्वभावस्वरूप है। वह किसके साथ आता है, ऐसा कहते हैं। **अतीन्द्रियस्वभाववाले और शुद्ध ऐसे सहजज्ञान...** देखो! सहजज्ञान। त्रिकाल भाव स्वभाविक... स्वभाविक... स्वभाविक... त्रिकाल ज्ञान। **सहजदर्शन...** स्वभाविक

दर्शन त्रिकाल। **सहजचारित्र...** स्वभाविक चारित्रस्वरूप त्रिकाल और **सहज परमवीतरागसुखात्मक...** और उस आत्मा में, परमपारिणामिकभाव में स्वभाविक परमवीतराग-रागरहित सुखात्मक-सुखस्वरूप, आनन्दस्वरूप। चार बोल हुए। स्वभाविक ज्ञान, स्वभाविक दर्शन, स्वभाविक चारित्र, और स्वभाविक परमवीतराग आनन्दस्वरूप।

शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप... एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में-एक समय में-जो **शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप...** परमपारिणामिकभावस्वरूप। इस जीव का अन्तःतत्त्वस्वरूप, शुद्ध अन्तःतत्त्व, अन्तरभाव, अन्तरस्वभाव, अन्तर पारिणामिकभावस्वरूप **जो स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप,...** वह त्रिकाल अन्दर स्वभाव अनन्त चतुष्टय। ऊपर कहा न? ज्ञान-दर्शन -चारित्र और आनन्द। ऐसे **स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप,...** ऐसा जो भाव, जो त्रिकालभाव, त्रिकाल परमपारिणामिकभाव, **उसके साथ की जो पूजित...** सेठी! **उसके साथ की...** किसके साथ की? **शुद्धअन्तःतत्त्व -स्वरूप जो स्वभाव-अनन्त चतुष्टय...** एक समय में पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण स्वभाविक। यह तो मुख्यरूप से चार लिये। ऐसे अनन्त गुण लेना। अनन्त गुण, परन्तु मुख्य तत्त्व ऐसा जो त्रिकाल भाव, **उसके साथ की जो पूजित...** लो। **उसके साथ की जो पूजित...** परम पूजित, परम पूजनेयोग्य, परम आदरणीय, परम उपादेय, परम अंगीकार करनेयोग्य **पंचम भावपरिणति...** देखो! यह जैनदर्शन, वस्तुदर्शन, आत्मदर्शन की विशेषता। ऐसी बात वीतरागमार्ग के अतिरिक्त जीवतत्त्व का यह स्वरूप अन्यत्र कहीं तीन काल-तीन लोक में नहीं हो सकता। अन्यत्र धर्मास्ति, अधर्मास्ति भी नहीं हो सकते, परन्तु ऐसा एक आत्मा, उसका **सहज शुद्ध निश्चय से, अनादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाले और शुद्ध ऐसे सहजज्ञान-सहजदर्शन...** स्वभाविक आनन्द और स्वभाविक चारित्र, ऐसा **शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप...** भाव... भाव... भाव... कि **जो स्वभावभाव...** स्वभावभाव धारक आत्मा, स्वभावभाव। परन्तु यह उसका भाव दोनों अभेद है। आधार और आधेय में भेद नहीं कि आत्मा आधार और स्वभावभाव आधेय, (ऐसा नहीं है) कहने में यह सब अभेद है। ऐसा स्वभाव निरुपाधि त्रिकाल स्वभाव, ऐसे **अनन्त चतुष्टय का स्वरूप, उसके साथ की जो...** एक समय की **पूजित पंचम भावपरिणति...** ऐसे समय-समय करते अनादि-अनन्त। अनादि-अनन्त। ओहोहो!

यह पंचम भावपरिणति। परिणति अर्थात् कि पंचम भाव के साथ तन्मयरूप से रही हुई सामान्य द्रव्य-गुण के साथ अंशरूप से तन्मयपने, सदृशपने, ध्रुवपने अनादि-अनन्त। वह सिद्ध में भी होती है, निगोद में होती है, मोक्षमार्ग में होती है, अज्ञान में होती है और केवलज्ञान

होवे तो भी यह पर्याय तो अनादि-अनन्त ही है। केवलज्ञान हो गया, इसलिए कारणपर्याय का अभाव हो या उसका सदृशता का विशेष भाव न रहे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? प्रवीणभाई, बहुत सूक्ष्म, भाई!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचमभाव पारिणामिक। इन चार भाव से रहित। उदयभाव... समझ में आया? उपशमभाव, क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव, इन चार भावों से रहित पंचम भाव है। उदय अर्थात् पुण्य और पाप, राग और द्वेष आदि विकल्प, वह उदयभाव है। उनकी अपेक्षा पंचम भाव में नहीं है। उपशमभाव-सम्यग्दर्शन, चारित्र इत्यादि। जिसे उपशम—नयी धर्म पर्याय, प्रगट नयी पर्याय, उस त्रिकाल भाव को उसकी अपेक्षा नहीं है। क्षयोपशमभाव : किसी प्रकृति का क्षय और किंचित् उपशम—ऐसा मिश्रभाव, उस मिश्रभाव की पर्याय की अपेक्षा भी पंचम भाव को नहीं है तथा क्षायिकभाव - वर्तमान क्षायिक केवलज्ञानादि भाव की भी पंचम भाव अपेक्षा नहीं है। अरे! पंचम भाव की परिणति को भी चार भाव की अपेक्षा नहीं है। भाई!

श्रोता : क्षायिकभाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षायिकभाव पर है। समझ में आया? क्षायिकभाव। यहाँ तो निरपेक्ष कहेंगे, परन्तु पंचम भाव में एकरूप भाव की अपेक्षा से... अपने पहले आया था कि चारों ही भाव अपेक्षित हैं। यहाँ उस केवलज्ञान की पर्याय को बाद में निरपेक्ष कहेंगे क्योंकि उसमें वर्तमान कर्म के निमित्त की अपेक्षा नहीं है, परन्तु पंचम भाव को तो चारों ही भावों की अपेक्षा नहीं है। समझ में आया? यह विषय जरा ऐसा है।

एक समय में पंचम भाव शक्ति का पिण्ड भगवान अनन्त-अनन्त चतुष्टय से भरपूर और अनन्त स्वभाव शक्ति का पिण्ड, ऐसा पंचम भाव, उसकी परिणति-उसकी पर्याय-उसकी अवस्था, उसका विशेष भाव, वह पंचम भाव **(उसके साथ तन्मयरूप से रहनेवाली जो पूज्य ऐसी पारिणामिकभाव की परिणति), वही कारणशुद्धपर्याय है...** वही कारणशुद्धपर्याय है। **ऐसा अर्थ है।** यह बात अपने तीसरी गाथा चलते हुए कही जा चुकी है। (संवत्) २००० के वर्ष में यह बात बहुत विस्तार से कही गयी है। है?

यह धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल, ये चार पदार्थ हैं, वे मात्र पारिणामिकभाव से हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, और काल। उनके द्रव्य, गुण और पर्यायें तीनों अकेले पारिणामिकभाव से है। उन धर्मास्ति आदि की जो पर्याय और चारों द्रव्यों का उत्पाद-व्यय

समय-समय में होता है, वह एकरूप पारिणामिकभाव त्रिकाल है। पारिणामिकभाव की पर्याय उत्पाद-व्ययरूप प्रगटरूप, चार द्रव्यों में एकरूप प्रगट उत्पाद-व्यय की पर्याय सदृश, उन गुणरूप से सदृश नहीं, प्रगटरूप से उत्पाद-व्यय-पूर्व की अवस्था का अभाव, नयी अवस्था का उत्पाद, ऐसा अनादि-अनन्त चार द्रव्यों में पारिणामिकभाव की पर्याय एकरूप है।

ऐसी पर्याय आत्मा के संसार पर्याय लो तो विकार पर्याय है, उसमें भी विभिन्न और बहुत भेद पड़ते हैं। निगोद की पर्याय, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चोइन्द्रिय इत्यादि। संसार पर्याय में भी अनेक प्रकार उत्पाद-व्यय के विभिन्न और अनेक प्रकार पर्यायें पड़ती हैं। मोक्षमार्ग की पर्याय में भी अनेक प्रकार पर्याय में भिन्नता पड़ती है। जो संसार अनादि-सान्त, ऐसी पर्याय की भी अनेकता है। जो मोक्षमार्ग सादि-सान्त शुरुआत होकर अन्त आवे, उसकी भी विविधता है। इसी तरह क्षयोपशम की, क्षायिक इत्यादि की। और मोक्षपर्याय जो सादि-अनन्त है, वह भी एकरूप है परन्तु उसका अनादि-अनन्त में बहुत भंग पड़ गये। एकरूप की पारिणामिकपर्याय जैसा चार द्रव्य तो प्रगट उत्पाद-व्ययरूप से है, वैसा आत्मा में उत्पाद-व्ययरूप से सरीखी पर्याय एकरूप अखण्ड धारावाही धारा नहीं रही। समझ में आया? प्रवीणभाई! समझ में आया या नहीं?

इसलिए दूसरे चार अजीव द्रव्यों में इस पारिणामिक की पर्याय एकरूप अनादि -अनन्त, उत्पाद-व्ययरूप से है। इसी प्रकार ये जाननेवाली ऐसी पर्याय एकरूप से अखण्ड प्रगट में नहीं है। समझ में आया? प्रगट में नहीं। प्रगट में तो विषमता है। संसार, मिथ्यात्व, अज्ञान, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग के बन्धन में भी मिथ्यात्व के असंख्य भंग, व्रत के भी भंग, प्रमाद, कषाय के भंग, उसमें भी फिर मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसमें सम्यग्दर्शन किसी को फिर चारित्र विशेष होता है, उसके भी प्रकार तथा केवलज्ञान सादि-अनन्त, तो अनादि -अनन्त एकरूप पर्याय चार में है, वैसी आत्मा में प्रगट में नहीं रही। और प्रगट में यदि एकरूप होवे तो यह संसार, बन्ध, मोक्षमार्ग और मोक्ष नहीं हो सकता और यदि एकरूप पर्याय उसमें न हो तो परमपारिणामिकभाव सामान्य और विशेष का सदृश जो त्रिकाल चाहिए, वह निश्चयनय का विषय पूरा नहीं होता। समझ में आया?

सामान्य एकरूप स्वभाव है, वैसा विशेष भी भेदरूप पर्याय एकरूप परमपारिणामिक की परिणति न हो तो निश्चयनय का जो सामान्य और विशेष एकरूप परमपारिणामिकभाव, वह खण्ड और अधूरा रह जाता है। इसलिए एक-एक जीवद्रव्य का ऐसा अनादि-अनन्त

स्वभाव है कि सामान्य द्रव्य-गुण के साथ ध्रुवरूप, सदृश, पारिणामिकभाव की परिणति अनादि-अनन्त एकरूप सदृश रहती है। समझ में आया? तीसरी गाथा में तो थे। उस दिन यह बात थोड़ी आयी थी। कहो, समझ में आया? समझ में आता है? बहुत सूक्ष्म बात, भाई!

पंचम भाव की परिणति... कि जो कारणपर्याय विशेष,... विशेष। पर्याय का दृष्टान्त दिया था, तब (संवत्) २००० में भी दिया था। तीसरी गाथा चली तब दिया था। उसका नक्शा भी (बनाया था)। कहते हैं, भगवान आत्मा जैसे एक समय में समुद्र-सागर पानी के दल से भरा हुआ और अनेक-अनेक शक्ति से भरपूर, वह समुद्र सामान्य है, उसके ऊपर एक प्रकार की सपाटी का अंश कायम वर्तता है। सपाटी का अंश ऊपर। सपाटी समझे? सपाटी, क्या कहते हैं? नहीं, नहीं। सपाटी। लहर के नीचे की सपाटी। सामान्य दलरूप पानी होता है, उसके ऊपर अंश एकरूप (होता है)। फिर उसमें लहर उठती है। ऊपर पानी का एक सरीखा लेबिल। ....सादी भाषा में समझ में आये। समझ में आया? सीधा एक अंश, एक अंश ऐसा सीधा सामान्य जल से भरा हुआ समुद्र, उसका एक अंश ऐसे सीधा।

इसी प्रकार आत्मा ज्ञानादि अनन्त गुण का समुद्र भरा हुआ है, अनन्त गुण का पिण्ड है। उसमें एक समय की सीधी-सपाटी अनादि-अनन्त ध्रुव पर्याय पड़ी हुई है। ओहोहो! समझ में आया? और उसके ऊपर ये चार बोल हैं—उदय, उपशम, क्षायिक और क्षयोपशम। उदय है, वह पुण्य-पाप के विकार की हिलोरें हैं, हिलोरें। हिलोरें अर्थात् तरंग। ऊपर पुण्य-पाप की तरंग हैं। क्षयोपशम भी उस जाति की किंचित् शुद्धि और किंचित् अशुद्धि की तरंग है। उपशम भी किंचित् शुद्धि की तरंग और क्षायिक पूर्ण शुद्धि की तरंग ऊपर है। वह सपाटी ऐसे एकरूप त्रिकाल है, उसके ऊपर की ये चार तरंगें हैं। उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक तथा नीचे सपाटी और नीचे पूरा सामान्य दल। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म, भाई! डॉक्टर आये थे। कहो, समझ में आया?

एक समय, सेकेण्ड के असंख्य भाग में। देखो! यह विज्ञान का विज्ञान। यह केवलज्ञानी का विज्ञान! विज्ञान का विज्ञान अर्थात् वह सच्चा विज्ञान नहीं कहते। यह विज्ञान यह क्या है, इसे जानने का यह ज्ञान। समझ में आया? एक समय में भगवान द्रव्य-गुण के साथ पारिणामिकभाव की शुद्ध परिणति जो ध्रुवरूप, जो उत्पाद-व्यय की अपेक्षारहित, जिसे १४वीं गाथा में अन्तिम शब्दों में निरपेक्ष कहा, उस निरपेक्ष पर्याय के दो भेदों में से एक भेद। निरपेक्ष पर्याय के, स्वभाव पर्याय के, दो शुद्धपर्याय के दो भेद में से यह एक भेद है। यह अनादि-अनन्त निश्चयनय का विषय है। समझ में आया?

स्वरूप, उसके साथ की जो पूजित पंचम भावपरिणति... किसी को ऐसा लगे कि ग्रन्थकार ने-टीकाकार ने घर का डाला है, अन्यत्र कहीं नहीं इसलिए (तो) ऐसा नहीं है। यह ग्रन्थ नियमसार है। नियम अर्थात् मोक्षमार्ग की पर्याय। मोक्षमार्ग की पर्याय। निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और रमणता। यह पर्याय का ग्रन्थ है। पर्याय का विषय भले द्रव्य है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन पर्याय है, अवस्था है। सम्यग्ज्ञान पर्याय है, अवस्था है। सम्यक्चारित्र भी धर्म पर्याय है। मूलचन्दजी! तीन आये या नहीं? ....आये या नहीं? कहो, समझ में आया? ये तीन पर्याय है। इस पर्याय का आश्रय द्रव्य है परन्तु तीन पर्याय है। यह पर्याय का व्याख्यान है, इसलिए पर्याय की स्पष्टता इसमें आ गयी है। इसमें पूरी पर्याय की व्याख्या है। देखो! आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, छह आवश्यक, समझ में आया? समाधि, भक्ति इत्यादि निर्मल पर्यायें, निर्विकल्प कैसी है, उनका पूरा वर्णन बारह अधिकारों में है। इसलिए यह पर्याय का अधिकार जो अन्दर में गुप्तरूप से था, वह हमको-मुनियों को गुरु की ओर से मिला है। उन्होंने यह नियमसार में टीका द्वारा स्पष्ट किया है।

यह पर्याय का अधिकार है न? धर्म, वह क्या है? सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र, वह पर्याय है, अवस्था है, नयी प्रगट होती है। वह कहीं अनादि की पर्याय नहीं है। वह पर्याय नयी प्रगट होती है, इसलिए पर्याय अधिकार में पर्याय के बहुत वर्णन इतने सब रखे हैं। यहाँ भी रखा है। आगे भी समकिती जीव की पर्याय पाने को समकिती जीव की पर्याय निमित्त, और भगवान की वाणी का निमित्त, ऐसे सब पर्याय की स्पष्टता के अधिकार इस नियमसार में आ गये हैं। इसलिए इसमें किसी को शंका करनेयोग्य नहीं है कि यह क्या? पंचम भाव की परिणति, वह दूसरे किसी शास्त्र में विशेष स्पष्ट नहीं है। नहीं है, ऐसा नहीं कहते, हों! स्पष्ट नहीं है। समझ में आया? और इस जगह ग्रन्थकार, टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि ने डाली है, तो कहीं उनके घर की कही हुई है, यह बात ऐसी है नहीं। कितने ही ऐसा कहते हैं कि यह तो उन्होंने अपने घर का डाला है। घर का सच्चा, परन्तु आत्मा के घर का। घर का अर्थ कल्पना की हुई है, ऐसा नहीं है।

यह परमपारिणामिकस्वभाव... त्रिकाल एकरूप है। ....है या नहीं इसमें? समझ में आया या नहीं? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जो भगवान एक समय में परमस्वभाव, ज्ञायकभाव, आनन्दकन्द, आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... परम वीतराग आनन्द का भरा हुआ, उस आनन्द के साथ शुद्धपर्याय, वह शुद्धचारित्र के साथ की शुद्ध पर्याय।

पहले में उपयोग की ज्ञान-दर्शन की पर्याय का वर्णन किया। स्वभाविक

कार्यस्वभावज्ञानोपयोग, कारणस्वभावदर्शनोपयोग, स्वरूपश्रद्धानमात्र कारणदृष्टि – ऐसे पर्याय की व्याख्या चैतन्यगुण के कारण से कही। यहाँ सामान्य पर्याय की व्याख्या साथ में नहीं लेना। एक जो अनन्त गुण का पिण्ड है, उसके एक समय में सब गुणों का ध्रुव अंश... ध्रुव अंश... ध्रुव अंश... अनादि-अनन्त है। समझ में आया ? इसलिए कहते हैं कि... कि किसी को कहा था, कि देख भाई ! इसमें... कुछ है नहीं ? साथ में तो कर्मोपाधि विवर्जित पर्याय है। पाठ में नहीं तो नया निकाला है ? कर्मोपाधि विवर्जित, उस पर्याय के दो भेद लिए हैं। उनमें पहला भेद यह कारणस्वभाव ध्रुव का लिया गया है कि जो आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण स्वभावभाव, स्वभावभाव अनन्त चतुष्टय पिण्ड के साथ विशेष भाव, एकरूप भाव, अंशरूप अनन्त। अनादि-अनन्त ऐसी पंचम भाव की परिणति। क्यों ?—कि विशेष... करना है, श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र विशेष पर्याय में प्रगट करना है न या केवलज्ञान। तो उस विशेष के अंश के... होवे सामान्य होवे तो इतने सामान्य, वह कायम एकरूप नहीं... विशेष.. विशेष... विशेष... विशेष का कारण विशेष। मुख्य विशेष... मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र विशेष कहो, या पर्याय कहो। केवलज्ञान, वह मोक्षमार्ग का फल विशेष। एक विशेष को प्रगट होने में शुद्धकारणपर्याय... विशेषता है। विशेष ऐसा अनादि-अनन्त एक कारणशुद्धपर्यायरूप ध्रुवपर्याय में उसमें पड़ी हुई है। उसे ही न माने, उसे वस्तु की खबर नहीं है। उसने आत्मा द्रव्य-गुण-पर्याय से कैसा है, उसे विशेष कैसे प्रगट हो विशेष के जोर में, (इसकी खबर नहीं)। समझ में आया ? कारण कि सामने विशेष है। भाई ! क्या कहा ? ऊपर ऐसे सपाटी। सामान्य स्वभाव अनन्त... अनन्त... गुण से भरपूर है, उसे ऊपर की सपाटी का विशेष... है। ऐसे ....कारणपर्याय, कारणपर्याय के अवलम्बन से कार्यपर्याय प्रगट होती है। केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि, आनन्द आदि परमानन्द पर्याय और मोक्षमार्ग की पर्याय भी उसके ही अवलम्बन से प्रगट होती है और पूर्ण होने के पश्चात् भी समय-समय का केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त चारित्र, अनन्त वीर्य, वह सब समय-समय का वापस नया-नया होता है। सिद्ध में भी नया-नया कार्य होता है। पर्याय कार्य है। सिद्ध भी कार्य है। नया-नया कार्य और कारण भी वहाँ न हो विशेषरूप से, वह कार्य हो नहीं सकता। इसलिए सिद्ध में भी सादि-अनन्त जो कार्यपर्याय उत्पन्न हुआ करती है, उसका कारण अनादि-अनन्त पड़ा है। सेठी ! कहो, समझ में आया ? भारी विषय, भाई !

द्रव्यानुयोग में भी व्यवहाररत्नत्रयरहित, चैतन्य के निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान और रमणता मोक्षमार्ग, उसका भी कारण द्रव्य-गुण और पर्याय का कारणशुद्धपर्याय। विशेष ध्रुव, ऐसी

अनादि-अनन्त पंचम काल की परिणति, पंचम भाव की अवस्था, पंचम भाव की ध्रुवदशा और पंचम भाव का एक अंश भेदरूप पर्याय, परन्तु वह त्रिकाल निश्चयनय का विषय है। वह पर्यायनय का विषय नहीं है। यह पारिणामिकभाव की पर्याय व्यवहारनय का विषय नहीं है। समझ में आया? यह तो त्रिकाल स्वरूप का विषय है। ऐसी चीज़ कारणशुद्धपर्याय है, ऐसा इसका अर्थ है। ऐसे द्रव्य-गुण और पर्याय तीन की अभेद प्रतीति, ज्ञान में और रमणता में लेना, यही मोक्ष का मार्ग है। बाकी सब समझने जैसा है। कहो, समझ में आया? समझने जैसा अर्थात् व्यवहार से विकल्प आवे, निमित्त हो, उसे जाननेयोग्य है, वह तो व्यवहार... निश्चय से निरपेक्ष आत्मा।

दूसरी बात (यह कि) यह निरपेक्ष पर्याय, और बाद में कहेंगे उसमें भी केवलज्ञान आदि भी निरपेक्ष पर्याय है। पहले १३वीं गाथा में कही, वह सापेक्ष पर्याय-उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक जो चार प्रगट पर्यायें हैं, उन्हें सापेक्ष कही थी और ये विभावभाव पर्याय है। यहाँ कहते हैं कि दोनों को हम निरपेक्ष (कहते हैं) १४वीं गाथा का अन्तिम शब्द निरपेक्ष है। निरपेक्ष की यह व्याख्या है और निरपेक्ष के भी प्रकार जहाँ-जहाँ जैसे हैं, वैसे उन्हें समझना चाहिए। समझ में आया?

एक कर्म की पर्याय कर्मवर्गणा में होती है, वह भी पर्याय एक निरपेक्ष है। उसके द्रव्य -गुण में नहीं-परमाणु के द्रव्य-गुण में नहीं, तथापि कर्मरूप पर्याय भी ऐसा ही कोई वस्तु का स्वभाव है, वह कर्मरूप दशा होना, वह भी एक कर्म की निरपेक्ष पर्याय है। स्वतन्त्र स्वयंसिद्ध की अपेक्षा से। द्रव्य-गुण में अपेक्षा नहीं है।

आत्मा में होनेवाले पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति, शुभ और अशुभ विकल्प, वे स्वयंसिद्ध की अपेक्षा से निरपेक्ष हैं। क्या कहा, समझ में आया? निरपेक्ष हैं। पारिणामिकभाव की वास्तव में वह भी एक विकारी प्रगट पर्याय है। उदयभाव, वह भी एक पारिणामिकभाव की प्रगट पर्याय है। यह अप्रगट की बात है और केवलज्ञान प्रगट पर्याय शुद्ध की बात है, परन्तु निमित्त की अपेक्षा से उसे राग-द्वेष का उदयभाव कहा है। उसकी स्वयं की निश्चय की अपेक्षा से वह पर्याय निरपेक्ष और पारिणामिकभाव की पर्याय प्रगट विकार को, संसार को कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

पारिणामिकपर्याय निरपेक्षपना... और ....मोक्ष का मार्ग निश्चय होना, निश्चयमोक्षमार्ग आत्मा की शुद्धकारणपर्याय और कारणपरमात्मा के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (होता है), वह भी निरपेक्ष मोक्षमार्ग है। यह तो अपने पहले आ गया है। इसमें आ गया।

निरपेक्ष मोक्षमार्ग है। राग भी एक अपेक्षा से निरपेक्ष, कर्म की पर्याय भी एक निरपेक्ष है, और यह... क्यों निरपेक्ष, अपेक्षा है। ....की अपेक्षा, पर्याय की अपेक्षा, द्रव्य-गुण में नहीं और स्वयंसिद्ध उसका स्वभाव है। राग से होता हो तो सबमें होना चाहिए। परन्तु वह परमाणु उस काल में कर्मरूप पर्याय होने की स्वयं की स्वयंसिद्धता है, इसलिए कर्मरूप पर्याय होती है। ऐसे उसके निमित्त के आकार अपने में पुण्य-पाप का विकार होना, वह भी अपनी स्वयंसिद्धपर्याय की अपेक्षा से निरपेक्ष है। अनन्य मोक्षमार्ग भी व्यवहार की-निमित्त की अपेक्षा नहीं रखता। इसलिए निश्चयमोक्षमार्ग भी निरपेक्ष है। ओहोहो! फिर केवलज्ञान कार्यरूप परिणति कर्म के निमित्त की उपस्थिति वर्तमान नहीं है, इसलिए वह निपेक्ष अर्थात् त्रिकाल शुद्धपर्याय, इसलिए निरपेक्ष। ओहोहो! निरपेक्ष के कितने अर्थ! समझ में आया? यहाँ तो जरा सूक्ष्म बात है। यह वस्तु अन्तर में इसे ख्याल में लिये बिना क्या अपेक्षा है, यह समझ में नहीं आता। कहो, समझ में आया? यह कारणशुद्धपर्याय अत्यन्त निरपेक्ष है। अब इसे सिद्ध करने के लिए दूसरी बात की थी।

इस जगत में एक संसारपर्याय सामान्यरूप से तो अनादि-अनन्त है। संसारपर्याय कभी किसी जीव में नहीं हो ऐसे सब... करेंगे? अनादि-अनन्त संसार। एक जीव की बात नहीं है। सामान्य जीव लें तो संसारपर्याय अनादि-अनन्त है। एक बात। यह उसमें से कोई व्यक्ति अपना भाव करके मोक्ष का मार्ग प्रगट करे, इस अपेक्षा से उसे अनादि-सान्त संसार कहा, परन्तु संसार में-दुनिया में से अनादि-अनन्त संसारपर्याय कभी चली जाए, ऐसा बननेवाला नहीं है।

दूसरी बात। मोक्ष, सिद्धगति की पर्याय भी अनादि-अनन्त है। किसी दिन मोक्ष, जगत में नहीं था और सिद्धगति नहीं थी, ऐसा भी नहीं है कि भाई! पहले संसार था और अब सिद्धपरमात्मा तो कभी मोक्षरूप नहीं थे।—ऐसा नहीं है। सिद्धगति भी अनादि-अनन्त है। आहाहा! सामान्यरूप से सिद्धगति अनादि-अनन्त है और व्यक्तिगत स्वयं स्वरूप का साधन करके नया प्रगट करे, उसके लिए सिद्धगति सादि-अनन्त है।

संसार और मोक्षपर्याय दोनों अनादि-अनन्त हैं। ऐसे केवलज्ञान का उपयोग भी जगत में अनादि-अनन्त है। है या नहीं? कि दुनिया में पहले कभी केवलज्ञान नहीं था? केवलज्ञानोपयोग, केवलदर्शनोपयोग, शुद्धकारण। समझ में आया? अथवा शुद्धकार्यदृष्टि, परमावगाढ़समकित, परमयथाख्यात्चारित्र, ऐसा अनादि-अनन्त जगत में किसी दिन नहीं था, ऐसा नहीं है। अनादि-अनन्त जगत में है। ऐसे एक ओर संसारपर्याय, एक ओर मोक्षपर्याय,

एक ओर केवलज्ञानादि उपयोगपर्याय प्रगट। यह प्रगट बात चली। वह संसार पर्याय प्रगट, मोक्षपर्याय प्रगट, केवलज्ञान उपयोगरूप प्रगट, ऐसे आत्मा में अनादि-अनन्त अप्रगटरूप से पर्याय... समझ में आया? कि जिसे कारण है, उसकी खबर नहीं, तथापि कारणरूप पर्याय अनादि-अनन्त है। ध्यान रखना।

जैसे संसार अनादि-अनन्त है, परन्तु व्यक्तिगत और भान होने के पश्चात् उसे अनादि-सान्त संसार हो जाता है। मोक्ष अनादि-अनन्त है परन्तु व्यक्तिगत जब करे, तब उसे मोक्ष की गति सादि-अनन्त हुई। ऐसे आत्मा में त्रिकाल द्रव्य और गुण शुद्ध है, ऐसी एक शुद्ध कारणपर्याय अनादि-अनन्त कारण है परन्तु जिसे खबर पड़े, तब उसे यह कारण, अनादि-अनन्त है। उसके ख्याल में सादि-अनन्त आ जाता है। क्या कहा? भाई! समझ में आया? क्या कहा, समझ में आया? क्या कहा?

जैसे पहले संसार और सिद्ध दो बोल लिये। उसमें वापस दो लिये। एक अनादि-सान्त संसार और एक सिद्ध सादि-अनन्त। ऐसे आत्मा में शुद्धकारणपर्याय अनादि-अनन्त है। अनादि-अनन्त। अभव्य को, भव्य को, निगोद को, सबको अनादि-अनन्त है, परन्तु जब श्रद्धा और ज्ञान में कारण को कारण बनाता है, तब उसका ख्याल आवे, वह सादि-अनन्त है। वस्तु अनादि-अनन्त है। समझ में आया? एक व्यक्ति को अनादि-अनन्त ख्याल आवे, ऐसा नहीं है। एक व्यक्ति को अनादि-अनन्त ख्याल आवे, ऐसा नहीं है। क्या कहा, समझ में आया? समुच्चय अनादि-अनन्त कारणपर्याय पड़ी है, और उसका ख्याल करनेवाला भी सामान्यरूप से अनादि-अनन्त है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म विषय, भाई!

एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में परमपारिणामिकभाव के साथ की पंचम भाव की परिणति जगत में अनादि-अनन्त है और उसका ख्याल करनेवाले भी अनादि-अनन्त हैं। उसका ख्याल करनेवाले भी सामान्यरूप से अनादि-अनन्त हैं। सामान्यरूप से तो अनादि-अनन्त हैं। समझ में आया? परन्तु प्रत्येक में अनादि-अनन्त कारणपर्याय पारिणामिकभाव की परिणति होने पर भी एक व्यक्तिगत कहो तो उसका ख्याल करनेवाला सादि-अनन्त होता है। उसकी कारणपर्याय अनादि-अनन्त है, परन्तु उसके ख्याल में आवे कि ओहो! यह द्रव्य-गुण और पर्याय त्रिकाल शुद्ध है, ऐसी प्रतीति आदि का ख्याल आया, तब ख्याल में कारणपर्याय आयी, उसे ख्याल में सादि-अनन्त, परन्तु वस्तुरूप से अनादि-अनन्त है। कहो, समझ में आया?

देखो ! इस प्रकार पंचम भाव, स्वभावभाव भगवान आत्मा अनन्त गुण के आनन्द का कन्द है। जैसे छोटी पीपर में चौंसठ पहरी चरपराहट, सोलह आना चरपराहट, पूरी चरपराहट, पूर्ण चपरपराहट भरी हुई है तो प्रगट होती है। इसी प्रकार भगवान आत्मा में सोलह आना— पूर्ण पूरा रुपया, वह चौंसठ अर्थात् पूरा रुपया अर्थात् पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण चारित्र, उसके साथ पूर्ण सदृश कारणशुद्धपर्याय। समझ में आया ? जैसे शक्तिरूप छोटी पीपर में पड़ी है परन्तु फिर भी उसे विशेष रूप प्रगट होती है, वहाँ उसका विशेष अंश है। विशेष किस प्रकार कहना चाहता हूँ ? भाई ! कि रेत है। ध्यान रखना रेत-रेत। बेलु समझते हो ? रेत ? रेत में स्निग्धता की अन्दर शक्ति है, परन्तु बाह्य प्रगट आविर्भाव प्राप्त करने की योग्यता की सपाटी की पर्याय रेत में अभी नहीं है। क्या कहा समझ में आया ? ऐई ! हिम्मतभाई ! परन्तु छोटी पीपर में चरपराहट पड़ी है परन्तु उसमें बाह्य में व्यक्त होने की योग्यता भी वहाँ नजदीक में पड़ी है। परमाणु में स्निग्धता पड़ी है। रसगुण, रसगुण जो पड़ा है... ऐई ! हिम्मतभाई ! यह नया आया है। यह तो आते-आते आवे वह ठीक। जैसे रसगुण परमाणु - कंकर में पड़ा है तो उसकी स्निग्धता की व्यक्त वर्तमान सपाटी की निकटता उसमें नहीं है। निकटता नहीं है। समझ में आया ? नारणभाई !

इसी प्रकार छोटी पीपर में जो चरपराई अन्दर पड़ी है, परन्तु प्रगट होने की योग्यता है। रसगुण तो समस्त परमाणुओं में है, परन्तु चरपराहट वर्तमान विशेषरूप सामर्थ्य वह छोटी पीपर में है, कि उससे विशेषरूप चौंसठ गुणी प्रगट होने की उसकी योग्यता से प्रगट होती है। समझ में आया ? नहीं तो परमाणु में तो रसगुण की अपेक्षा से सबमें चिकनाहट है। कोई कंकर को पीसता है ? उसके निकट में नहीं है। उसके समीप में चरपराहट प्रगट हो, ऐसी योग्यता नहीं है। छोटी पीपर में निकट में चरपराहट प्रगटे, ऐसी योग्यता है, भाई ! बराबर है न ? इसी प्रकार भगवान आत्मा सामान्यरूप से तो त्रिकाल ध्रुवरूप है, उसकी विशेष पर्याय त्रिकाल नजदीक में कार्यरूप प्रगटे, ऐसा साधन अन्दर पड़ा है। ऐसे आत्मा में भेद नहीं है। उसमें- जड़ में भेद है, भाई ! एक में नजदीकरूप से है और एक में दूर, ऐसे भेद हैं। इसमें भेद नहीं।

ऐसा यह भगवान आत्मा जो कि अनादि-अनन्त द्रव्य-गुण और पर्याय से विशेषरूप से शुद्ध है। उसकी नजदीकता तो सब आत्मा में पड़ी है। किसी में नहीं हैं, ऐसा नहीं है। उसमें दो भेद पड़ गये। पुद्गल है वह, पुद्गल है वह। यह भगवान आत्मा अखण्ड ज्ञायक है। भाई ! अखण्ड ज्ञायक है। पुद्गल में पूरण-गलन भेद पड़कर एक में नजदीक और एक में दूर आ गया है परन्तु भगवान आत्मा अखण्ड अभेद चैतन्यतत्त्व है, उसमें सामान्यरूप से

जैसे शुद्धता है, वैसी उसकी विशेष शुद्धता का अंश भी अनादि-अनन्त है। उसमें किसी को नजदीक और दूर, ऐसा है नहीं। वह स्वयं प्रगट करने को नजदीक-दूर होता है, वह तो बाह्य पर्याय की बात हुई। परन्तु उसकी नजदीकता विशेष में न हो और फिर से किसी को अमुक को नजदीक होने का काल आवे, तब विशेष नजदीक होता है। ....शुद्धकारणरूप विशेष पर्याय, ऐसे आत्मा में नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया?

इसलिए यहाँ भगवान पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि। मुनि भी भगवान हैं न? परमेश्वर हैं न? पंचपरमेष्ठी में शामिल हैं। णमो लोए सव्व साहूणं। गणधरदेव वहाँ महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं। ये पद्मप्रभमलधारिदेव जब टीका करते थे, तब गणधरदेव जहाँ णमो लोए सव्व साहूणं (बोलते हैं), तब लोए सव्व साहूणं में पद्मप्रभमलधारिदेव शामिल हो जाते थे। पद्मप्रभमलधारिदेव को भी गणधर नमस्कार करते थे। णमो लोए सव्व साहूणं। भगवान! तू भी पंच परमेष्ठी में मुनि परमेष्ठी है। टीका करते समय भी जब कोई मुनि-गणधर वहाँ शास्त्ररचना करते हों या णमो पाँच नवकार का स्मरण का विकल्प उठा हो तो भगवान णमो लोए सव्व साहूणं में परमेष्ठी आ जाते हैं। ग्यारहवीं प्रतिमा धारक श्रावक पंचम गुणस्थान में निर्मलतावाले परमेष्ठी पद में नहीं आता। पंचम गुणस्थान की निर्मल शुद्धि, जो सम्यग्दर्शन की शुद्धि, उससे पहली प्रतिमा की शुद्धि, दूसरी की, तीसरी की, ग्यारहवीं, निर्मल आनन्दकन्द की शुद्धि परन्तु ग्यारह प्रतिमा शुद्धि की जो निर्मल शुद्धि हुई, वे पंच परमेष्ठी में नहीं मिलते और जहाँ तीन कषाय का नाश होकर छठवाँ और सातवाँ, छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान हजारों बार आने की योग्यता हो गयी (तो) णमो लोए सव्व साहूणं। लोक में सर्व सन्तों, साधकों... सर्व अर्थात् दूसरे सब उल्टे-सीधों की बात नहीं है, हों! यह तो ऐसा स्वरूप साधे, उसकी बात है। और कोई कहे दूसरे सब आ जायें (तो ऐसा नहीं है)। ऐसे स्वरूप के साधनेवाले ऐसे सन्तों को गणधर भी, णमो लोए सव्व साहूणं में नमस्कार करते हैं। वह यहाँ भगवान पद्मप्रभमलधारिदेव ने यह टीका की है। कहो, समझ में आया?

वही कारणशुद्धपर्याय है... कहो, यह व्याख्या निरपेक्ष पर्याय के दो भेद में से एक निरपेक्ष पर्याय, कारणशुद्धपर्याय, त्रिकाल पर्याय, पंचम भाव की विशेषरूप-भेदरूप, सामान्य के साथ विशेष अंशरूप रही हुई, यह विशेष व्यवहारनय का विषय नहीं। निश्चयनय का त्रिकाली ध्रुव विषय, उसे भगवान पंचम भाव की परिणति और उसे कारणशुद्धपर्याय कहते हैं और पूजित कहकर ग्रन्थकार पूजनीय कहते हैं क्योंकि नजदीक में तेरा आधार है। तेरे आधार से यह कार्य होता है। तेरा आधार है। ऐसा कहकर पूजितभाव वर्णन किया है। कहो, समझ में आया? इस १५वीं गाथा की बहुत दिनों से लोग जिज्ञासुरूप से इन्तजार कर रहे थे। उस कारणशुद्धपर्याय की व्याख्या एक आयी। अब कार्यशुद्धपर्याय की व्याख्या (आयेगी)....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१७ **श्री समयसार, गाथा-३२० प्रवचन - ४५०**
दिनांक - २०-०८-१९७०

(समयसार) गाथा ३२० जयसेनाचार्य की टीका। अधिकार जरा सूक्ष्म परम रहस्यमय था। रहस्यमय था। तुम्हारे में क्या कहते हैं? थोड़ा सूक्ष्म है परन्तु सुने तो सही, क्या चीज़ है? वास्तविक बारह अंग और सिद्धान्त का सार यह है कि ज्ञायक चिदानन्द अपना आत्मा ध्रुव परमपारिणामिकभाव तत्त्व लक्षण के सन्मुख होकर श्रद्धा-ज्ञान करना, वह सम्पूर्ण बारह अंग का सार है। इसकी सब फिर टीकायें और विस्तार है। समझ में आया?

देखो! अपने यहाँ आये, विवक्षित-एकदेशशुद्धनयाश्रित यह भावना... कौन सी भावना? जो चैतन्यस्वरूप ज्ञायकभाव, उस ओर की एकाग्रता, ऐसी जो भावना अर्थात् निर्मल दशा, वह एकदेश शुद्धनयाश्रित है, क्योंकि व्यक्तरूप पर्याय है न? व्यक्त / प्रगटरूप मोक्ष का मार्ग-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से अनुभव में आया; अतः वह एकदेश शुद्ध है। वह निर्विकार-स्वसंवेदनलक्षण क्षायोपशमिकज्ञानरूप होने से,... ज्ञान की प्रधानता से कथन किया है। ऐसे तीन भाव लिये थे। यहाँ तो अकेला क्षयोपशमज्ञान लिया।

त्रिकाल जो भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप, उस ओर की एकाग्रता से पर्याय में ज्ञान का जो विकास हुआ, वह क्षायोपशमिकज्ञानरूप होने से एकदेश व्यक्तिरूप है। एक अंश प्रगटरूप है, एक अंश प्रगटरूप है। चाहे तो मोक्ष प्रगट हो तो भी एक अंश प्रगटरूप है। पर्याय अंश है, खण्ड है, अंश है, भेद है। एक समय की दशा, वह क्या चीज़ है। ऐसा होने से... तो भी ध्रुव के स्वभाव के आश्रय से ऐसी निर्मल पर्याय प्रगट हुई, ध्रुव चैतन्य भगवान की अन्तर्दृष्टि, ध्येय करके... दूसरी ओर से दृष्टि को समेटकर... समझ में आया? यह भी नास्ति से कथन है। अपने चैतन्य ध्रुवज्ञायक में दृष्टि लगाना और उस ओर का ज्ञान करना और उसमें लीन होना, वह मोक्ष का मार्ग है। शुभ-अशुभभाव कहीं मोक्ष का मार्ग नहीं है। समझ में आया?

ऐसी प्रगटदशा शक्ति में से निर्मल व्यक्तता प्रगट हुई तो भी, तो पण, तथापि - तो भी कहते हैं न तुम्हारे? यहाँ हिन्दी में तथापि है। तथापि ध्याता पुरुष ऐसा भाता है.. परन्तु सम्यग्दृष्टि आत्मा का ध्यान करनेवाला आत्मा किसे भाता है? त्रिकाल चीज़ को भाता है।

समझ में आया? भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त सुख सागर का सरोवर, सुख सागर का उछलता समुद्र। सुख सागर ऐसी चीज़ जो त्रिकाली है, उसमें अन्तर में एकाग्र होकर स्वभाव को ध्येय बनाकर जो पर्याय निर्मलदशा एक अंश प्रगट हुई, परन्तु वह ध्यान करनेयोग्य नहीं। ध्यान में उसे ध्येय बनाने योग्य नहीं। नन्दकिशोरजी! आहा! ध्याता पुरुष-अपने शुद्धस्वरूप का ध्यान करनेवाला आत्मा। सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र, ये तीनों ध्यान हैं। क्या कहा?

श्रोता : सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों ध्यान हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान है। वह ध्यान जिसे प्रगट हुआ, वह ध्यानी किसे ध्याता है। समझ में आया? आहाहा! अनन्त सुखसागर का नीर प्रभु! सागर का नीर होता है न, सागर का पानी होता है न!

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं, नहीं। तुम्हारे सागर की बात नहीं। यह निज सागर, अनन्त सागर नीर। समझ में आया? ऐसा प्रभु, ध्यान करनेवाला धर्मी किसे ध्याता है? किसे ध्येय बनाता है? वह निमित्त को-भगवान को ध्येय नहीं बनाता - ऐसा कहते हैं। आहाहा! दया, दान का विकल्प बीच में आवे, उसे ध्याता ध्येय नहीं बनाता। सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव, एक समय की निर्मल मोक्षमार्ग की पर्याय जो प्रगट हुई, उसे भी ध्येय नहीं बनाता। आहाहा! समझ में आया? बारह अंग का निचोड़-सार यह है।

ध्याता पुरुष ऐसा भाता है - ऐसे ध्येय की भावना करता है। कैसा ध्येय? जो आत्मा सकलनिरावरण... है। आहाहा! रागादि तो उदयभाव है परन्तु शास्त्र में क्षयोपशम, क्षायिकभाव तो सावरण कहने में आया है। पण्डितजी! क्या कहते हैं? नियमसार में है और सावरण है, वह आवरण की अपेक्षा का अभाव हुआ न? कितनी अपेक्षा है न? पंचास्तिकाय में लिया है न? चार भाव कर्मकृत। पंचास्तिकाय में लिया है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने मूल पाठ में लिया है कि केवलज्ञान खण्डरूप एक समय की पर्याय है, उसमें आवरण के अभाव की अपेक्षा रह गयी तो उस केवलज्ञान को विभावज्ञान, विभावभाव कहने में आता है। आहाहा! विभाव अर्थात् विशेषभाव, भाई! विभाव अर्थात् विशेष भाव। वह सामान्य भाव नहीं। आहाहा!

कहते हैं, सकलनिरावरण... चार भाव को भी चार आवरणवाले कहे हैं। नियमसार में चार भाव को (आवरणवाले कहा है)। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक चार आवरणवाले क्योंकि एक में आवरण का निमित्त है और तीन में आवरण के आंशिक अभाव का कारण है

तो वह अपेक्षित भाव हो गया। इसलिए उन्हें आवरणवाला कह दिया है। भगवान आत्मा सकलनिरावरण, त्रिकाल निरावरण, जिसे आवरण है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ निश्चय से आत्मतत्त्व किसे कहते हैं - यह बात चलती है। निश्चय से, सत्य से, यथार्थ से, वास्तविक रीति से ध्यान करनेवाला धर्मी जीव किसे आत्मा मानता है और किसे ध्येय बनाता है, उसकी बात चलती है। आहाहा!

सकलनिरावरण... दूसरे आवरणवाले हैं, उसमें आया, भाई! चार भाव आवरणवाले हैं - ऐसा उसमें आया न? यहाँ नहीं, उसमें (नियमसार, गाथा ४१) आया। त्रिकाल भगवान सत्व जो ज्ञानस्वभावभाव, ध्रुवभाव, अनादि-अनन्त एकरूप भाव, त्रिकाल भाव सकल निरावरण (भाव है)। चार भाव आवरणवाले हैं, वे ध्येय में लेने योग्य नहीं हैं। ओहोहो! समझ में आया?

ऊपर कहा न? एकदेश निर्मल आनन्द प्रगट हुआ। सुखानन्द, लो! तुम्हारे यहाँ सुखानन्द धर्मशाला है न? मुम्बई में नहीं? ऐई! चन्द्रकान्तभाई! जाते हो या नहीं? वहाँ सुखानन्द धर्मशाला है या नहीं? है। सुखानन्द धर्मशाला भगवान आत्मा है। सुख और आनन्द के स्वभाववाली धर्मशाला आत्मा है। ऐसा ध्रुव आत्मा का आश्रय करके, ध्येय बनाकर जो वीतरागी निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, शान्ति, आनन्द आदि जो प्रगट हुए, वे धर्मी का ध्येय नहीं तथा केवलज्ञान धर्मी का ध्येय नहीं-ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

समयसार में आता है। उपाय-उपेय का कहा था, पीछे-अन्त में उपाय-उपेय का (अधिकार आता है न?) लो, वह याद आ गया। वहाँ उपाय तो मोक्ष का मार्ग है, उपेय तो मोक्षमार्ग का फल, ऐसा सिद्धपद है। वहाँ ऐसा लिया है। समयसार, उपाय-उपेय। उपाय, मोक्ष का कारण और उपेय, मोक्षरूप दशा। उसे वहाँ ध्येय और साधन कहने में आया है। पंचास्तिकाय में आ गया - व्यवहारसाधन-साध्य, भिन्न साध्य-साधन। भिन्न साध्य-साधन कहो तो भी निर्मल वीतरागी पर्याय साधन और पूर्ण वीतरागी दशा पूर्ण मोक्ष, वह साध्य। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि साध्य वह नहीं। दूसरे अर्थ में है। वह तो प्रगट करने की अपेक्षा से वहाँ साध्य कहा गया है परन्तु प्रगट किसके आश्रय से होता है? आहाहा! ध्याता पुरुष सकल निरावरण भगवान आत्मा। ध्रुव निरावरण पिण्ड चैतन्यबिम्ब, परमसुख सागर का समुद्र है, उसमें बिलकुल आवरण और आवरण के अभाव की अपेक्षा ध्रुव में नहीं है।

अखण्ड... देखो! केवलज्ञानादि पर्याय भी खण्ड है-अंश है। प्रवचनसार में पर्याय अंश है - ऐसा आता है न? पर्याय अंश है.. पर्याय अंश है, अंशी नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो अभी.. समकित.. भगवान की प्रतिमा से, सम्मेदशिखर की यात्रा करने से समकित होगा (- ऐसा मानते हैं)। कहते हैं कि समकित का ध्येय तो धर्मी को पूर्णानन्द प्रभु वह ध्येय है। वहाँ से समकित प्राप्त होता है। सेठ!

कहते हैं कि अखण्ड है। भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु, महा अस्तिरूप स्वभाव, निश्चय-वास्तविक यथार्थ आत्मा जो ध्रुव है, वह अखण्ड है, उसमें खण्ड है नहीं। आहाहा! वह धर्मी का ध्येय है, समकिती ज्ञानी का वह ध्येय है। आहाहा! अखण्ड के सामने खण्ड का निषेध (किया है)। यह आगे कहेंगे। एक.. अखण्ड में अभेद आ गया। समझ में आया? एक.. पर्याय तो अनेक है। वस्तुरूप से भगवान ध्रुव एक है। समझ में आया? तुम्हारे में क्या कहते हैं? खेलने का आता है न? ताश का इक्का, हुकम का इक्का, हुकम का इक्का हो, वह जीत जाता है - ऐसा आता है न? हम तो.. गल्ला, रानी, बादशाह, इक्का, उसमें आता है न?

मुमुक्षु : यह तो हुकम का इक्का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इक्का भी चढ़ जाये ऐसा है परन्तु हुकम का इक्का तो पूरा। बादशाह से भी इक्का ऊँचा होता है, उसमें आता है न? हम मामा के घर में छोटी उम्र में सब खेलते थे। सब थोड़ा-थोड़ा किया है। मामा थे न, वहाँ यह रखते। गृहस्थ थे, सब रखते और खेलते, इक्का, दुक्की, छोटी उम्र की बात है, हों! आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, गुलाम, वह पर्याय गुलाम है। आहाहा! यह भगवान आत्मा बादशाह और इक्का है। एक भगवान पूर्ण स्वरूप एक जिसे दृष्टि में आया है, वह उसका ध्यान करता है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सकल निरावरण कहकर आवरणवाले चार पर्याय का निषेध किया। अखण्ड कहकर एक अंश पर्याय का निषेध किया। एक कहकर अनेक पर्याय का निषेध किया। निषेध किया नहीं परन्तु उसमें आ गया।

प्रत्यक्षप्रतिभासमय... आहाहा! भगवान आत्मा कैसा है? एक समय की पर्याय-अवस्थारहित चीज़ प्रत्यक्ष प्रतिभास है, वह स्वरूपप्रत्यक्ष ही वस्तु है। नियमसार में, स्वरूपप्रत्यक्ष - ऐसा शब्द लिया है। ध्रुव, वह स्वरूप प्रत्यक्ष है। समझ में आया? परन्तु किसे? जिसने मति और श्रुतज्ञान की पर्याय से अपने द्रव्य को प्रत्यक्ष कर लिया है - ऐसे समकिती को ध्येयरूप से प्रत्यक्ष प्रतिभासमय द्रव्य है। गजब बात यह!

मुमुक्षु : सबके लिये नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबके लिये नहीं। सबके लिये कहाँ ? इसलिए तो यह बात चलती है उसकी कहाँ बात है ? जिसे सम्यक् ख्याल में ही यह चीज़ आयी नहीं कि प्रत्यक्षप्रतिभास यह चीज़ है - ऐसा दृष्टि में आये बिना (ध्यान किसका करे ?) समझ में आया ? ध्याता, ध्यान करता है तो ध्याता को उस चीज़ का ख्याल है कि यह चीज़ प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है शोभालालजी ! थोड़ा सूक्ष्म है, हों ! परन्तु सुने तो सही.. !

मुमुक्षु : सुनना तो पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनना पड़ेगा। इतनी थोड़ी दरकार कम है उसको (सेठ को)। यह समझे बिना तीन काल में कहीं उद्धार नहीं है। लाख यात्रा करे, भक्ति करे, पूजा करे, दया करे, दान करे, ये सब शुभभाव हैं और वहाँ दृष्टि है तो मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं **प्रत्यक्षप्रतिभासमय...** इसका अर्थ यह हुआ कि पर्याय में, वर्तमान दशा में समकिती को मति-श्रुतज्ञान के द्वारा आत्मा प्रत्यक्ष हुआ है, उसे यह प्रत्यक्षप्रतिभा -समय है - ऐसा ध्येय करता है। आहाहा ! गजब बात भाई ! समझ में आया ? यह बारहवें दिन भागवत कथा पूरी होती है।

मुमुक्षु : भागवत् कथा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्म भागवत् नियमसार में आता है न ! भागवत् शास्त्र ! नियमसार की टीका में है। पद्मप्रभमलधारिदेव ने (कहा है)। यह भागवत शास्त्र है। भगवान का कहा हुआ भागवत। समझ में आया ?

कहते हैं कि भगवान आत्मा.. आहाहा ! **प्रत्यक्षप्रतिभासमय...** भाषा तो ऐसी है कि जानी हुई चीज़ त्रिकाली दृष्टि में आ गयी है। प्रत्यक्षप्रतिभासमय है न ? क्या कहते हैं ? अन्तर जो ध्रुवचीज़ है, उसकी निर्मल पर्याय वह ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. वह ध्रुव, ध्रुव में लक्ष्य में गया है। ऐसा कहते हैं। **प्रत्यक्षप्रतिभासमय..** प्रत्यक्ष का भास ध्रुव में होता है, भाई ! आहाहा ! वस्तु जो प्रत्यक्षप्रतिभासमय है, प्रतिभास अर्थात जो ध्रुव है, ऐसे भाव में ध्रुवभाव में ध्रुव का प्रतिभास आ गया। ऐई ! यह टीका..

प्रत्यक्षप्रतिभासमय... यह वस्तु वस्तु में प्रत्यक्षप्रतिभासमय वस्तु ध्रुव है। उसे मतिज्ञान और श्रुतज्ञानी जीव, चाहे तो आठ वर्ष की बालिका हो.. समझ में आया ? परन्तु सम्यग्दृष्टि हो

तो उस सम्यग्दृष्टि का ध्येय प्रत्यक्षप्रतिभासमय द्रव्य पर दृष्टि है। आहाहा! मानो कि वस्तु प्रत्यक्ष ही है - ऐसी पड़ी है। प्रत्यक्ष है - ऐसी चीज़ पड़ी है। समझ में आया? इसी प्रकार मति-श्रुतज्ञान में यह ध्रुव वस्तु प्रत्यक्ष पड़ी है - ऐसा दृष्टि में आया, प्रत्यक्षप्रतिभास को ध्येय बनाया। परोक्षज्ञान का ध्येय नहीं, यह प्रत्यक्ष केवलज्ञान का भी ध्येय नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : परोक्ष ज्ञान का तो ध्येय नहीं, प्रत्यक्ष केवलज्ञान का भी ध्येय नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ध्येय नहीं। ध्रुव में ध्रुव का प्रतिभास हो गया - ऐसी चीज़ है। ऐसा कहते हैं। क्योंकि ज्ञान में मति और श्रुतज्ञान में.. क्योंकि उसमें प्रत्यक्ष नाम का त्रिकाल गुण है, प्रकाश नाम का। आत्मा में प्रकाश नाम का गुण त्रिकाल है, वह सैंतालीस शक्ति में आता है। बारहवीं शक्ति प्रकाशशक्ति। उस गुण का कार्य क्या? कि गुण ही प्रत्यक्षप्रतिभासमय है।

आहाहा! ए..! भाई! सीखने योग्य तो यह है। शिविर अर्थात् क्या? सबेरे पूछा था। फिर हिम्मतभाई ने कहा - छावणी, एकत्रित होते है वह। फिर कहा - शिविर अर्थात् क्या कहलाता होगा, अपने को कुछ पता नहीं। ऐई! पण्डितजी! शिविर को क्या कहते हैं? शिक्षण शिविर!

मुमुक्षु : शिक्षण शिविर में दिया जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु शिविर का अर्थ क्या?

मुमुक्षु : आप कहो महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ कहाँ इस शब्द के अर्थ की खबर है? यह तो हमारे पण्डितजी जानें।

मुमुक्षु : (पण्डितजी) - शिविर में शिक्षण का मुकाम, कैम्प

पूज्य गुरुदेवश्री : ...शिविर का कैम्प। शिविर का कैम्प यहाँ हुआ है।

मुमुक्षु : शिविर कैम्प में आत्मा की भागवत कथा चलती है..

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु है। सच्ची भागवत.. आहाहा! देखो! बात ऐसी भी चली कि पर्याय है, परिणमन है परन्तु वह पर्याय ध्यान किसका करती है? ध्रुव का। ध्रुव, ध्रुव का ध्यान क्या करे? अभी तो कोई पर्याय है ऐसा माना नहीं, ध्रुव क्या है? उसका पता नहीं। उसे तो यह होता ही नहीं। पर्याय में, अवस्था में ध्रुव प्रतिभासमय प्रत्यक्ष जो चीज़ है - ऐसा ज्ञान में आया। वह चीज़ प्रत्यक्ष ही है। परन्तु इस पर्याय में प्रत्यक्ष हुई, प्रत्यक्ष वस्तु ही ऐसी है।

समझ में आया ? प्रकाश नाम का गुण है। स्वसंवेदन प्रकाश। आहाहा! सन्तों की कला और रीति, कथनपद्धति अलौकिक है।

मुमुक्षु : ध्रुव में ध्रुव का भास हुआ न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव में ध्रुव का भास हुआ। उस प्रत्यक्ष में भास हुआ तो ध्रुव में ध्रुव का भास है - ऐसा माना। आहाहा! क्या कहा ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : बराबर नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आया ? थोड़ा कठिन तो है।

मुमुक्षु : पर्याय में ध्रुव का भास हुआ या ध्रुव में ध्रुव का भास हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में भास हुआ, उसकी यहाँ बात नहीं है। वस्तु प्रत्यक्ष भासमय ध्रुव चीज़ ऐसी है। प्रत्यक्षप्रतिभासमय द्रव्य है - ऐसा लेना है न ? यह द्रव्य निजात्म, निज परमात्मद्रव्य के सब विशेषण चलते हैं। आहाहा! भगवान निजपरमात्मा, देखो! परमात्मद्रव्य निज परमात्मा। त्रिकाल परमस्वरूप भगवान ध्रुव नित्यानन्दनाथ-वह कैसा है ? प्रत्यक्षप्रतिभासमय है, वह वस्तु ऐसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रतिभास है, वह बाहर में आता है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में.. जैसे अपनी पर्याय में एक चीज़ प्रत्यक्ष होती है न ? ऐसे ध्रुव में वह चीज़ प्रत्यक्ष ही है। ज्ञान प्रतिभासमय है। ज्ञान में दूसरी चीज़ प्रतिभासित होती है। प्रति पर भासती है। समझ में आया ? ज्ञान की पर्याय में। तो यह ध्रुव है, वह प्रतिभासमय त्रिकाल है। यह वस्तु सम्यग्दृष्टि का विषय है। समझ में आया ? परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि, वह परमभाव ऐसा है - ऐसा जानता है। आहाहा! नन्दकिशोरजी! वहाँ तुम्हारे गाँव में ऐसा व्याख्यान-ब्याख्यान नहीं चलता कभी। वहाँ चलता है ? कहाँ गये राजनकुमारजी! वहाँ तो ऐसी बात चलती नहीं। कोई एकाध आया हो, बस! शिक्षण शिविर में चले। आहाहा!

मुमुक्षु : यह नहीं चलती।

पूज्य गुरुदेवश्री : शहर में एकाध दिन जाए तो कहे यह क्या लगायी है, महाराज ने यह क्या लगायी है यह बात ? कुछ अध्यास नहीं, पामर साधारण प्राणी। हमको ये कहते हैं तू पामर नहीं। तू तो भगवान का भगवान है। आहाहा! भाई! तुझे पता नहीं। समझ में आया ?

अनन्त सिद्ध परमात्मा और संख्यात अरिहन्त, तीर्थंकर वे तो तेरी एक ज्ञान की पर्याय में समा जाते हैं। समझ में आया ? ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड ध्रुव है, वह तेरे भगवान का

भगवान तू है। आहाहा! प्रकाशदासजी! यह साहेब की व्याख्या चलती है। आहाहा! क्या हो? ... आहाहा!

भाई! साहेब तो यह है। जो भगवान अन्दर प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है अर्थात् ज्ञान प्रत्यक्ष.. यह तो नियमसार में आता है न? कि कारणसमयसार को जाननेवाला ज्ञान त्रिकाल उसमें पड़ा है, यह आता है या नहीं? कारणसमयसार जो है, उसे जानने का ज्ञान भी उसमें त्रिकाल पड़ा है, वह कारणसमयसार को जानता है। ऐसे ध्रुव में दो भेद पाड़ दिये हैं। है? कारणसमयसार.. आहाहा! भगवान कारण अर्थात् यहाँ जो परमार्थ द्रव्य कहते हैं, वह कारणसमयसार। उसे क्या कहते हैं! कारणसमयसार में एक ऐसा ज्ञान है कि जो अपने को पूर्ण जानता है। ध्रुव, हों! आहाहा! समझ में आया? ...नियमसार में भी कहाँ हो यह कुछ (याद नहीं होता)। यह तो हिन्दी है। मैंने तो गुजराती पड़ा हो। वह है।

उपयोग की बात चलती होगी। उसमें उपयोग की व्याख्या में होगा न? यहाँ है, यह रहा। यह कारणज्ञान की व्याख्या है। ११-१२ गाथा। यह तो नया है न? क्या कहते हैं? कारण ज्ञान, त्रिकाली ज्ञान, ध्रुव ज्ञान। कैसा है **कारणज्ञान भी वैसा ही है। काहे से? निजपरमात्मा में विद्यमान सहज दर्शन...** त्रिकाली दर्शन, त्रिकाली चारित्र, देखो! आत्मा में त्रिकाली चारित्र पड़ा है। समझ में आया? और **सहजसुख और सहज परमचितशक्तिरूप निजकारणसमयसार के स्वरूपों को युगपद जानने में समर्थ होने से वैसा ही है।** आहाहा! देखो! यह बात थोड़ी सूक्ष्म है। त्रिकाल जो ध्रुवज्ञान है, वह अपने ज्ञान को जानता है - ऐसा त्रिकाल पड़ा है। त्रिकाल ध्रुव को जानता है - ऐसा ज्ञान है।

मुमुक्षु : सच्ची रीति से जाने...

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची रीति से जानने का स्वभाव पड़ा है न? पर्यायरूप से जाना, तब स्वरूप त्रिकाल जाननेवाला है - ऐसा निर्णय हुआ। समझे न? नियमसार की १०-१२ गाथा है। सहजज्ञान... **निजकारणसमयसार के स्वरूपों को युगपद जानने में समर्थ होने से...** क्या कहा?

कहते हैं कि ध्रुव-ध्रुव कारणपरमात्मा अथवा यहाँ जो निजपरमात्मा निजद्रव्य (कहा वह), उसमें ज्ञान है, दर्शन है। कैसा? कि जो ज्ञान अपने को त्रिकाल जाने, युगपत जाने - ऐसा ज्ञान अन्दर पड़ा है। ध्रुव, ध्रुव को जाने - ऐसा ज्ञान पड़ा है - ऐसा कहते हैं। गजब बात है। समझ में आया? सहजकारणज्ञान भी परमात्मा को, निजपरमात्मा को। देखो! यहाँ अपने

आता है न ? निज परमात्मद्रव्य, उसके ये सब लक्षण हैं। निजपरमात्मद्रव्य। उस निजपरमात्मा में विद्यमान। कौन विद्यमान ? **सहजदर्शन, सहजचारित्र, सहजसुख और सहजपरम -चित्शक्तिरूप निज कारणसमयसार के स्वरूपों को युगपद् जानने में समर्थ होने से...** यहाँ पर्याय की बात नहीं है। आहाहा! पर्याय की बात नहीं। यह तो ध्रुव का ऐसा लक्षण है।

मुमुक्षु : ध्रुव में ऐसी शक्ति पड़ी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं को त्रिकाल युगपद् जाने - ऐसा ही स्वभाव ही है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय प्रगट होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो प्रगट पर्याय है। समझ में आया ? त्रिकाल ज्ञान ध्रुव है, वह ध्रुव को बराबर जानता है - ऐसा कहते हैं। ऐसा वह पड़ा है। आहाहा! ब्रह्म उपदेश, आता है न भाई! ...उसमें ही यह है। देखो... ११-१२ पूरी होती है न ? फिर तेरहवीं गाथा। बारहवीं गाथा में यह ब्रह्म उपदेश किया - ऐसा कहते हैं। **इस प्रकार संसाररूपी लता का नूर छेदने को कुठाररूप...** है। हथियार को क्या कहते हैं ? कुठार।

परमपारिणामिक स्वभाव संसार को छेदने के लिये कुठार के समान है, उसका अर्थ कि छेदनेवाली पर्याय नहीं। संसार छेदनस्वरूप ही उसका है। समझ में आया ? भगवान ध्रुवज्ञायकभाव, जिसे यहाँ निष्क्रिय कहा था, निष्क्रिय कहा था, जिसमें परिणमन नहीं, मोक्षमार्ग नहीं, जिसमें मोक्ष नहीं - ऐसा ध्रुवस्वरूप, कहते हैं, वह अपने में अपने को त्रिकाल जाने - ऐसा इसमें स्वभाव पड़ा ही है। अपने को-ध्रुव को ध्रुव जाने - ऐसा स्वभाव त्रिकाल पड़ा है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : कर्म हल्के हों तब जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म-फर्म की यहाँ बात ही नहीं। कर्म उसके घर में (रहे), वे तो परद्रव्य हैं। वे स्वद्रव्य में कहाँ आये हैं ? आहाहा! पर्याय की बात नहीं, वहाँ फिर कर्म की बात तो कहीं रह गयी। आहाहा! भगवान आत्मा... देखो, कहते हैं न **अनाथ मुक्तिसुन्दरी का नाथ** - उसकी भावना करनी चाहिए। वह त्रिकाल भगवान मुक्तिसुन्दरी का नाथ! आहाहा! उसका अनुभव करना चाहिए। नियमसार में बहुत सरस परमपारिणामिकभाव का बहुत वर्णन किया है, बहुत।

यहाँ कहते हैं **प्रत्यक्षप्रतिभासमय...** ओहो! लो, अभी तो उसी-उसी में बहुत बाकी है।

मुमुक्षु : माल निकले न!

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें है या नहीं? यहाँ कहते हैं निजपरमात्मा त्रिकाली द्रव्य। एक समय की वर्तमान अवस्था के पीछे जो ध्रुव चीज़ पड़ी है, उसकी बात चलती है क्योंकि धर्मी का ध्येय वह है और धर्मी को सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, वह द्रव्य की दृष्टि से प्रगट हुआ है। समझ में आया? आहाहा! **प्रत्यक्षप्रतिभासमय...** किसे प्रतिभास हुआ? यह द्रव्य प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है, स्वरूपप्रत्यक्ष ही है। वस्तु, वस्तुरूप से अन्दर स्वरूपप्रत्यक्ष है। ऐसे मति और श्रुतज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष होकर आत्मा का अनुभव हुआ तो कहते हैं कि प्रत्यक्षप्रतिभासमय ध्रुव है, वह मेरा ध्येय है। आहा! भारी कठिन काम, जगत को...। विपिनभाई! ऐसा सुनने को मिला नहीं।

अकेला भगवान, जिसके ज्ञान की पर्याय में ध्येयरूप से ध्रुव भगवान है। कहते हैं कि वह तो प्रत्यक्षप्रतिभासमय वस्तु ही है। अनादि-अनन्त प्रत्यक्ष प्रतिभास वस्तु ही ऐसी है। आहाहा!

अविनश्वर... है। ठीक! प्रत्यक्ष के अतिरिक्त का परोक्षपना, उसका निषेध किया। समझ में आया? अथवा एक समय की पर्याय जो केवलज्ञान की प्रत्यक्ष पर्याय है, उसका भी निषेध हो गया। आहाहा! **अविनश्वर है...** भगवान ध्रुवस्वरूप त्रिकाल अविनश्वर है। पर्याय तो नाशवान है। केवलज्ञान की पर्याय भी नाशवान है। यह बात! यहाँ तो केवलज्ञान की पर्याय, वह एक समय रहती है, दूसरे समय में उसका नाश होता है। पर्याय है न? **उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्।** केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, दूसरे समय उस पर्याय का नाश होता है, दूसरे समय दूसरा केवलज्ञान उत्पन्न होता है। ओहोहो!

केवलज्ञान नाशवान है। सदृश रहता है, इस अपेक्षा से कूटस्थ कहा है। यहाँ तो त्रिकाल की अपेक्षा से तो उसे नाशवान कहा है। समझ में आया? ऐसी की ऐसी केवलज्ञान की पर्याय प्रगट हुई, ऐसी की ऐसी सदृशरूप रहती है। पर्याय वह की वह नहीं, परन्तु वैसी की वैसी, वैसी की वैसी रहती है, इस अपेक्षा से कूटस्थ कहा है। है तो नाशवान। एक भगवान ध्रुवस्वरूप अविनाशी है। आहाहा! यहाँ तो अभी शरीर और पर नाशवान है, यह अन्दर बैठता नहीं। आहाहा! यह नाशवान पदार्थ है - ऐसा बैठता नहीं। राग नाशवान है, यह इसे बैठता नहीं। पर्याय नाशवान कैसे बैठे? आहाहा! बैठाकर बैठावे। भगवान स्वयं बैठावे तो बैठे। समझ में आया? निश्चय गुरु तो यह आत्मा है। निश्चय देव और निश्चय.. तीर्थ एक

ध्रुव आत्मा है। इस तीर्थ में स्नान करो ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! गजब मार्ग, भाई!

अविनश्वर... कभी नाश नहीं होता। उसमें पलटना नहीं होता – ऐसा कहते हैं। ध्रुव में पलटना कैसा? परिणमन कैसा? परिणमन है, वह तो नाशवान है। आहाहा! समझ में आया? शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण। दूसरे में परमपारिणामिकभाव ऐसा शब्द आता है, भाई! परमपारिणामिक। यहाँ शुद्ध पर जोर देकर त्रिकाल शुद्ध वह परिणम.. भव्य-अभव्य जीव। शुद्धपारिणामिक सहजभाव, परमभाव। केवलज्ञानादि भी अपरमभाव है। समझ में आया? आहाहा!

नियमसार की ५० वीं गाथा में कहा न! क्षायिक समकित भी परस्वभाव है, परस्वभाव है, परद्रव्य है, परस्वभाव है। गजब बात है! ५० वीं गाथा में लिया, भगवान! तेरा स्वभाव तो त्रिकाल, वह तेरा स्वभाव है। आहाहा! एक समय की क्षायिक समकित की पर्याय, परस्वभाव है। नियमसार में है, इसमें नहीं। नियमसार ५० गाथा है न? परस्वभाव, हों! परभाव नहीं।

यहाँ तो पहले परस्वभाव। पूर्वोक्तस्वभाव परस्वभाव है। वे चार भाव परस्वभाव है। क्षायिक समकित परस्वभाव है। आहाहा! यह तो कोई दिगम्बर सन्त! कहते हैं कि चारित्र – पर्याय परस्वभाव है। सम्यग्दर्शनपूर्वक अनुभव में वीतरागी चारित्रपर्याय प्रगट हुई, वह भी परस्वभाव है।

मुमुक्षु : किसकी अपेक्षा से?

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल की अपेक्षा से। राग की अपेक्षा से तो स्वभाव है परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से परस्वभाव है और परद्रव्यं-उसे परद्रव्य कहा। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकभगवान, वह स्वद्रव्य और निर्मल पर्याय, मोक्ष का मार्ग, वह पर्याय परद्रव्य है। परस्वभाव और परद्रव्य। आहाहा! और हेय। तीन बोल लिये। **शुद्धान्तस्तत्त्वस्वरूपं स्वद्रव्यमुपादेयम्।** भगवान आत्मा... देखो! सहज.. बहुत ऊँचा कहा **शुद्ध-अन्तस्तत्त्व-स्वरूप इस स्वद्रव्य का आधार सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण (-सहज परम-पारिणामिकभाव जिसका लक्षण है ऐसा) कारणसमयसार है।** आहाहा! त्रिकाली भगवान, जिसमें मोक्ष की परिणति भी नहीं—ऐसा भगवान ध्रुव, कहते हैं कि शुद्धपारिणामिकभाव और उसके अतिरिक्त धर्म की एक समय की पर्याय, सच्चे धर्म की पर्याय, हों! वह भी परस्वभाव, परद्रव्य और हेय है। वह हेय है, उपादेय नहीं। आहाहा! सेठ! कभी ऐसा सुना नहीं।

मुमुक्षु : आठ वर्ष हो गये, आपके पास पहली बार सुना।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है, किसी समय नहीं था इस गाथा में? पहले पढ़ा गया है। समझ में आया? यह तो अगम्यगम्य की बातें हैं।

कहते हैं, अत:तत्त्व स्वद्रव्य जिसे यहाँ पारिणामिकभाव कहते हैं। पारिणामिकपरम - भावलक्षण। पारिणामिक, शुद्धपारिणामिक ऐसा कहा है। क्योंकि अशुद्ध पारिणामिक का निषेध करना है न! शुद्धपारिणामिकपरमभाव। दूसरा, परमभाव। केवलज्ञानादि, क्षायिक समकित आदि अपरमभाव है। परमभाव भगवान ध्रुव है। आहाहा! निजपरमात्मद्रव्य। अपना निजपरमात्मद्रव्य त्रिकाली। देखो! निज-अपना परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ। सम्यग्दृष्टि उसे अपना ध्येय बनाकर ऐसा जानता है और मानता है। यह मैं हूँ। समझ में आया? हमेशा निर्णय तो पर्याय करती है परन्तु पर्याय निर्णय करती है कि 'यह मैं हूँ।' समझ में आया?

निजपरमात्म। देखो, कितने विशेषण पहले आये थे। पहले आया था न? सर्वविशुद्धपारिणामिक परमभावग्राहक शुद्ध उपादानभूत शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से जीव कर्तत्व-भोक्तृत्व से रहित है और बन्ध-मोक्ष के कारण और परिणाम से शून्य है। दूसरे पृष्ठ पर आया है। समझ में आया? पन्ना है न? समझ में आया? जब पढ़ा जाये तब पता होता है या नहीं? तो ऐसे कैसे भूल जाते हैं? सब भूल गये। पन्ना भूल गये। समझ में आया?

मुमुक्षु : भूल से दूसरा पन्ना रखा गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु भूल से कैसे रखा गया? वापस यह कोई बारम्बार नहीं आता। समझ में आया? ऐसा निजपरमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ',... वही मैं हूँ। सम्यग्दृष्टि अपने को ध्येय... वही मैं हूँ-ऐसा विशेषण है।

परन्तु ऐसा नहीं भाता... नास्ति से बात करते हैं। अनेकान्त है। परन्तु सम्यग्दृष्टि ऐसी भावना नहीं करता कि 'खण्डज्ञानरूप मैं हूँ।' मैं पर्यायरूप हूँ - ऐसी भावना नहीं करता। समझ में आया? 'खण्डज्ञानरूप मैं हूँ।' ऐसी भावना नहीं करता। आहाहा! साधारण पामर का-अज्ञानी का तो कलेजा काँप जाये। हाय. हाय.. ऐसा मार्ग! यह वीतराग ऐसा एकान्त कहते हैं? यह तो एकान्त है... एकान्त है.. एकान्त है.. अरे! सुन तो सही। एकान्त ही कहा जाता है न!

मुमुक्षु : सम्यक् एकान्त ही होय न!

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यक् एकान्त ऐसी स्वद्रव्य की दृष्टि बिना, ध्येय हुए बिना

सम्यग्दर्शन कभी तीन काल में होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? और सम्यग्दर्शन हुआ तो भी ध्येय तो वह का वही है। फिर शास्त्र में आता है या नहीं? अव्रत का त्याग करके व्रत करे, वह तो स्वरूप का अनुभव हुआ है, उसमें अव्रत के त्याग का अर्थ कि स्वरूप में स्थिरता विशेष हुई है, तब अव्रत का त्याग होकर व्रत के विकल्प की भूमिका में ऐसा आता है। वह आनन्द में स्थिर है तो व्रत कब आवे? समाधिशतक में आता है न? पूज्यपादस्वामी। इष्टोपदेश में है। अव्रत छोड़कर व्रत लेना, उसका अर्थ क्या?

मुमुक्षु : फिर तो दोनों छोड़ने योग्य हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ने योग्य - ऐसा नहीं, वह चीज़ ही मुझमें नहीं। व्रत और अव्रत का विकल्प मुझमें है ही नहीं। मेरी पर्याय में नहीं तो द्रव्य में तो है ही नहीं। आहाहा! ऐसी दृष्टि होने के बाद अनुभव के आनन्द के स्वाद में विशेष स्थिर होकर आनन्द की विशेष दशा हुई, तब अव्रत का त्याग हुआ और तब व्रत के विकल्प की भूमिका उसे उत्पन्न होती है परन्तु आनन्द में विशेष आया है, उस भूमिका में व्रत का विकल्प उत्पन्न होता है। समझ में आया? अव्रत है तो नरकादि में जायेगा। व्रत से स्वर्ग में जायेगा। वह (व्रत) छाया है, (अव्रत) वह धूप है - ऐसा आता है न?

मुमुक्षु : वह....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।

मुमुक्षु : खण्डरूप...

पूज्य गुरुदेवश्री : खण्डरूप पाँच ज्ञान है न? पर्याय है, वह खण्डरूप है। पर्याय है न पर्याय? राग-बाग नहीं। एक समय की पर्याय वह खण्डरूप है। वह शुद्ध केवलज्ञान की पर्याय भी खण्डरूप है। भगवान त्रिकाल अखण्ड है। समझ में आया? खण्डज्ञान भी भाता नहीं तो फिर शुभराग को भावे और निमित्त को प्राप्त करने की भावना हो, वह ज्ञानी को ऐसा होता नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : ऐसी भावना बारम्बार सम्यग्दृष्टि भाता है तो वह आत्मा को ही सम्मत करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसको सम्मत करता है ध्रुव को। ध्रुव दृष्टि में आया, वही सम्मत करता है। दृष्टि वहाँ पड़ी है तो बारम्बार वहाँ ही दृष्टि जाती है।

मुमुक्षु : प्रत्येक समय..

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्येक समय में है दृष्टि, परन्तु यहाँ बात करनी है न! नियमसार में गाथा आती है। कि पंचाचार निर्मल पालनेवाले मुनि पंचम गति के कारण पंचम भाव का स्मरण करते हैं - ऐसा श्लोक आता है। क्या कहा? निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चारित्र-तप और वीर्य-निर्मल वीतरागी वीर्य - ऐसे पंचाचार पालनेवाले धर्मात्मा पंचमगति का कारण, पंचमभाव का स्मरण करते हैं। ऐसा पाठ है। स्मरण करते हैं, इसका अर्थ परिणति बारम्बार वहाँ ही ढली है। आहाहा! समझ में आया? कथन तो ऐसा ही आवे न, कथन दूसरा किस प्रकार आवे? बाकी तो समकिती के ध्येय में ध्रुव पर दृष्टि पड़ी है और परिणमन हुआ है। समझ में आया? वह परिणमन निरन्तर चालू है। उसका नाम ध्रुव को ध्याता है - ऐसा कहने में आता है। भाषा में उपदेश तो उपदेश की पद्धति से आता है। भाषा जड़, भाव कहना अन्तर के.. समझ में आया?

निजपरमात्मद्रव्य, 'वही मैं हूँ', परन्तु ऐसा नहीं भाता कि 'खण्डज्ञानरूप मैं हूँ।' मैं मतिज्ञान और श्रुतज्ञानरूप हूँ - ऐसी भावना ज्ञानी की नहीं होती। आहाहा! **ऐसा भावार्थ है।** लो, ऐसा भावार्थ है। सम्पूर्ण गाथा का यह भावार्थ है। **यह व्याख्यान, परस्पर सापेक्ष ऐसे आगम-अध्यात्म के..** आगम और अध्यात्म से मिलाकर यथार्थरूप कहा - ऐसा कहते हैं। आगम की भाषा क्या है और अध्यात्म की भाषा क्या है, इन दोनों को मिलाकर कहने में आया है। मोक्ष का मार्ग आगमभाषा से उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक कहा। मोक्ष का मार्ग अध्यात्मभाषा से शुद्धात्म-अभिमुख परिणाम और शुद्धोपयोग कहा। दोनों में विरोध नहीं है। दोनों अपेक्षा लेकर बात की है। समझ में आया?

तथा नयद्वय... द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय के अभिप्राय से अविरुद्धपूर्वक कहने में आया है। क्योंकि पहले कहा था कि जो चार भाव हैं, वे पर्यायरूप हैं। त्रिकाली भाव द्रव्यरूप है - ऐसे दो को मिलाकर बात की थी। पर्याय नहीं - ऐसा नहीं; पर्याय, पर्याय में है। समझ में आया? देखो! यहाँ कहते हैं। (**तथा नयद्वय के (द्रव्यार्थिक..)** त्रिकाली द्रव्य ध्रुव और वर्तमान पर्याय चार भावरूप दोनों को मिलाकर **अभिप्राय के अविरोधपूर्वक ही कहा गया है..** उसमें कोई विरोध है नहीं। आचार्य स्वयं सिद्ध करते हैं। समझ में आया? सूक्ष्म तो है, भाई!

मुमुक्षु : काम तो पर्याय से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, काम तो पर्याय से है परन्तु पर्याय का ध्येय कहाँ? इसकी बात है। दो बात की है कि चार भाव पर्यायरूप है, पारिणामिक ध्रुवरूप है। भावना भानेवाला ध्रुव

की भावना करता है, पर्याय की भावना नहीं करता क्योंकि मोक्षमार्ग तो पर्याय है। आहाहा! **नयद्वय के (द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनय के) अभिप्राय के अविरोधपूर्वक ही कहा गया होने से सिद्ध है (निर्बाध है),..** उसमें किसी अंश में भी आगम से और अध्यात्म से विरोध नहीं है - ऐसा आचार्य स्वयं कहते हैं। **ऐसा विवेकी जानें।** आहाहा! देखो! एक शब्द में कह दिया, ऐसा विवेकी जानें। राग से पृथक् होकर ध्रुव की दृष्टि करने से विवेकी को उसकी सब खबर पड़ती है। समझ में आया? विवेकी जाने, हों! संस्कृत टीका में है। पहले से कर्ताकर्म उठाया है। आत्मा कर्ताकर्म नहीं, विकार का कर्ता और विकार का भोक्ता ध्रुव नहीं, यहाँ से उठाया था न? समझ में आया? क्या कहते हैं? विकार आया न पहले?

मुमुक्षु : फिर ऐसा आया कि जाननेवाला तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जाननेवाला दूसरा, वह जाननेवाला दूसरे अर्थ में कहा है। अपने को जानता है, वह जाननेवाला, यह तत्त्व चलेगा अपने अब।

मुमुक्षु : वह विवेकी जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; वही विवेकी जानता है। अलौकिक मार्ग है, भाई! कर्ता-कर्म उड़ा दिया यहाँ तो जानना - ऐसा कहा। जानने का अर्थ ऐसा कि पर्याय में उसका ज्ञान होता है। उसे जाने ऐसा कहा है सहजरूप परिणमन की पर्याय में उस प्रकार का ज्ञान होता है। समझ में आया? जानो-ऐसा कहा। वहाँ क्या जानने जाता है? वह जानने की ऐसी पर्याय प्रगट होती है। राग आवे तो उसे जाने ऐसा कहना, उपशम हो तो उसे जाने ऐसा कहना, क्षयोपशम-क्षायिक हो तो उसे जाने ऐसा कहना। कहना अर्थात् उसे जाने।

मुमुक्षु : जानता नहीं और कहना।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञात नहीं - ऐसा नहीं। जानने की अपनी पर्याय में वह आया है। इतनी व्यवहार की अपेक्षा से जाने ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? सब बात आयी। लो, बारहवाँ दिन पूरा हुआ।

यह बारहवाँ दिन है, पूरा हो गया। ऐसा कभी नहीं चला, ऐसा व्याख्यान बाहर नहीं आया, ऐसा स्पष्टीकरण पहले नहीं हुआ। आहाहा!

निष्क्रिय भगवान आत्मा अर्थात् सिद्ध की पर्याय से भी रहित भगवान आत्मा.. आहाहा! ऐसी बात की है, वह आगम और अध्यात्म से यथार्थरूप से विवेकी जानते हैं - ऐसा कहते हैं। जिसे विवेक नहीं, वह जान नहीं सकता।

मुमुक्षु : विवेकी अर्थात् साधक?

पूज्य गुरुदेवश्री : साधक, ज्ञानी, समकिती। यहाँ तो सम्यग्दृष्टि जानता है - ऐसा लेना है न? अज्ञानी को पता ही कहाँ है (कि) क्या वस्तु है? समझ में आया? अपनी दृष्टि में ध्रुव